तीन भाष्य

(हिन्दी विवेचन)

-: विवेचनकार :-

पूज्य आचार्यदेव श्रीमद् विजय रत्नसेनसूरीश्वरजी म.सा.

तीन-भाष्य

h **ग्रंथकार** h

पूज्य आचार्य श्रीमद् देवेन्द्रसूरीश्वरजी म.

h **भावानुवादकर्ता** h

जैन शासन के महान् ज्योतिर्धर, परम शासन प्रभावक
पू.आचार्यदेव श्रीमद् विजय रामचंद्रसूरीश्वरजी म.सा. के
तेजस्वी शिष्यरत्न, बीसवीं सदी के महान् योगी,
प्रशांतमूर्ति पूज्यपाद पंन्यासप्रवर
श्री भद्रंकरविजयजी गणिवर्य के
कृपापात्र अंतिम शिष्यरत्न, मरुधररत्न,
जैन हिन्दी साहित्य दिवाकर पूज्य आचार्य देव
श्रीमद् विजय **रत्नसेनसूरीश्वरजी महाराजा**

127

-: प्रकाशक :-
दिव्य संदेश प्रकाशन
C/o. सुरेन्द्र जैन, Office No. 304, 3rd Floor,
बे व्यु बिल्डींग, विंग-ईस्ट बे, डॉ. एम.बी. वेलकर स्ट्रीट,
कालबादेवी, मुंबई-400 002.
Mobile : 8484848451 (only whatsapp)

आवृत्ति : तृतीय • **मूल्य :** 150/- रुपये • **प्रतियां :** 1500
विमोचन स्थल : नमिनाथ जैन मंदिर, कर्जत, महाराष्ट्र
विमोचन तारीख : दि. 27-3-2022, रविवार

आजीवन सदस्य योजना

आजीवन सदस्यता शुल्क - 3000/- रु.

- आप जैन धर्म के रहस्य-जैन इतिहास-जैन तत्त्वज्ञान-जैन आचार मार्ग, प्रेरणादायी कथाएँ आदि का अध्ययन करना चाहते हों तो आज ही आप दिव्य संदेश प्रकाशन मुम्बई की आजीवन सदस्यता प्राप्त कर लें। सदस्य बनते ही अध्यात्मयोगी निःस्पृह शिरोमणि स्व. पूज्यपाद पंन्यासप्रवर **श्री भद्रंकरविजयजी गणिवर्य**श्री एवं उन्हीं के चरम शिष्यरत्न प्रवचन प्रभावक परम पूज्य ***आचार्यदेव श्रीमद् विजय रत्नसेनसूरीश्वरजी म.*** सा. द्वारा लिखित उपलब्ध 10 पुस्तकें दी जाएगी और **अर्हद् दिव्य संदेश** मासिक तथा भविष्य में हिन्दी भाषा में प्रकाशित पुस्तकें (Open Book Exam साधु–साध्वी उपयोगी पुस्तके एवं पुनः मुद्रित पुस्तकों को छोडकर) घर बैठे प्राप्त होंगी। आप आजीवन सदस्यता शुल्क मुंबई या बैंगलोर के पते पर दिव्य संदेश प्रकाशन-मुंबई के नाम से चैक व ड्राफ्ट से भेजें।

प्राप्ति स्थान

1. **चेतन हसमुखलालजी मेहता**
   भायंदर (M.S.)
   M. 9867058940
2. **प्रवीण गुरुजी**
   C/o. श्री आत्म कमल लब्धिसूरि जैन पुस्तकालय
   श्री आदिनाथ जैन टेंपल,
   चिकपेठ, बेंगलोर-560 053.
   M. 9036810930
3. **राहुल वैद**
   C/o. अरिहंत मेटल कं.,
   4403, लोटन जाट गली,
   पहाड़ी धीरज, सदर बाजार,
   दिल्ली-110 006.
   M. 9810353108
4. **चंदन एजेन्सी**
   607, चीरा बाजार,
   मुंबई-400 002.
   M. 9820303451

आजीवन सदस्यता शुल्क

Rs. 3000/- भिजवाने का पता एवं पुस्तक-प्राप्ति-स्थान :

(1) दिव्य संदेश प्रकाशन

C/o. सुरेन्द्र जैन, Office No. 304, 3rd Floor, बे व्यु बिल्डींग,
विंग-ईस्ट बे, डॉ. एम.बी. वेलकर स्ट्रीट, कालबादेवी,
मुंबई-400 002. Mobile : 8484848451 (only whatsapp)

(2) दिव्य संदेश प्रचारक

प्रकाश बड़ोल्ला, 52, 3rd Cross, शंकरमट रोड, शंकरपुरा,
बैंगलोर-560 004. Tel. (O.) 4124 7478 M. 8971230600

प्रकाशक की कलम से...

नमस्कार महामंत्र के अजोड साधक, बीसवीं सदी के महान् योगी, अध्यात्मयोगी निःस्पृह शिरोमणि **पूज्यपाद पंन्यासप्रवर श्री भद्रंकरविजयजी गणिवर्य** श्री के कृपा पात्र चरम शिष्यरत्न प्रवचन प्रभावक, मरुधररत्न, गोडवाड के गौरव **पूज्यपाद आचार्यदेव श्रीमद् विजय रत्नसेनसूरीश्वरजी म.सा.** के द्वारा हिन्दी भाषा में आलेखित **127वीं पुस्तक तीन भाष्य (हिन्दी विवेचन)** का तृतीय आवृत्ति का प्रकाशन करते हुए अत्यंत ही हर्ष हो रहा है ।

आज से लगभग 40 वर्ष पूर्व पूज्य श्री की साहित्य यात्रा का मंगल प्रारंभ हुआ था ।

अपने उपकारी गुरुदेवश्री की दूसरी स्वर्गारोहण तिथि के पावन प्रसंग पर वि.सं. 2038, वैशाख सुदी 14 के शुभ दिन अपने ही प्राण प्यारे गुरुदेव को भावभरी श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए **'वात्सल्य के महासागर'** नाम की पहली पुस्तक का प्रकाशन किया था, जो दादावाडी जैन संघ बाली की ओर से प्रकाशित हुई थी । उसके बाद घाणेराव निवासी **श्रीमान् शांतिलालजी देवराजजी चेन्नाई** के विशिष्ट सहयोग से स्वाध्याय संघ-मद्रास से पूज्य श्री द्वारा आलेखित हिन्दी साहित्य का प्रकाशन जारी रहा ।

पूज्यश्री ने अपने उपकारी गुरुदेवश्री के नमस्कार महामंत्र, मैत्री आदि भावना आदि विषयक साहित्य का भी हिन्दी अनुवाद किया और ऐसी 25 पुस्तकों का भी प्रकाशन ओर से होता रहा । राजस्थान व गुजरात के विविध क्षेत्रों में प्रभावक चातुर्मास दरम्यान भी पूज्य श्री की साहित्य यात्रा जारी रही । बडे बडे संघों में चातुर्मास संबंधी बडी जवाबदारियों को वहन करते हुए भी उनकी कलम अबाध गति से आगे बढती ही गई ।

वि.संवत् 2050 में पूज्य पंन्यासजी म.सा. का मुंबई आगमन हुआ । मुंबई के प्रवेश द्वारा समान कोंकण शत्रुंजय थाणा तीर्थ में

पूज्यश्री का चिरस्मरणीय ऐतिहासिक चातुर्मास हुआ । पूज्य श्री के हिन्दी एवं राजस्थानी भाषा में हुए प्रभावक प्रवचनों का आम जनता पर गहरा प्रभाव पडा । पूज्यश्री की प्रेरणा से थाणा संघ में 109 सिद्धितप आदि अमृतपूर्व तपश्चर्याएं संपन्न हुई । थाणा संघ का पूज्यश्री के साथ धनिष्ट रिश्ता जुड़ गया । उसी थाणा संघ में पूज्यश्री की प्रेरणा से सामुदायिक वर्षीतप भी हुए ।

पूज्यश्री के थाणा चातुर्मास दरम्यान हिन्दी साहित्यरसिक गोडवाड के कार्यकर्ताओं ने मिलकर **'दिव्य संदेश प्रकाशन'** ट्रस्ट की स्थापना की । इस ट्रस्ट का मुख्य उद्देश्य स्व. अध्यात्मयोगी **पूज्य पंन्यासप्रवर श्री भद्रंकरविजयजी गणिवर्य** श्री एवं उनके चरम शिष्यरत्न प्रवचन प्रभावक **पूज्य आचार्यदेव श्रीमद् विजय रत्नसेनसूरीश्वरजी म.सा.** द्वारा आलेखित हिन्दी साहित्य का हिन्दी भाषी क्षेत्रों में प्रचार-प्रसार करना है । पूज्य श्री द्वारा आलेखित हिन्दी पुस्तकों के प्रकाशन के साथ प्रतिमास पूज्यश्री के प्रवचन-चिंतनों को प्रकाशित करनेवाला **'अर्हद् दिव्य संदेश'** मासिक का भी प्रकाशन हो रहा है ।

इस ट्रस्ट की स्थापना के बाद आज तक **200 पुस्तकों** का प्रकाशन हो चुका है ।

पूज्यश्री के द्वारा आलेखित 100वीं पुस्तक बीसवीं सदी के महान् योगी का भव्य विमोचन दीपक ज्योति जैन संघ-कालाचोकी में पूज्य श्री के चातुर्मास हेतु प्रवेश के पावन प्रसंग पर पूज्य वर्तमान **गच्छाधिपति आचार्यदेव श्रीमद् विजय हेमभूषणसूरीश्वरजी म.सा.** की तारक निश्रा में भव्य समारोह के साथ संपन्न हुआ था ।

उसके बाद भी इस ट्रस्ट के माध्यम से पूज्य श्री के साहित्य का प्रकाशन जारी रहा ।

आज से ठीक 14 वर्ष पूर्व इस पुस्तक की प्रथम आवृत्ति का प्रकाशन हुआ था । हिन्दी भाषा क्षेत्र में इस पुस्तक की मांग को देखकर इसका पुन: प्रकाशन कर रहे है ।

हमें आत्म विश्वास है कि यह प्रकाशन मुक्ति पथगामी आत्माओं को सन्मार्ग की यह बताएगा ।

निवेदक : दिव्य संदेश प्रकाशन ट्रस्ट-मुंबई.

आचार धर्म का दिव्य प्रकाश

लेखक : गुर्जरसाहित्यकार पू.आचार्यदेव श्रीमद् विजय राजरत्नसूरीश्वरजी म.सा.

प्रसिद्ध चिंतक शेखसादी के बचपन की यह घटना है। एक बार वह अपने पिता के साथ पहली बार नमाज पढने के लिए मस्जिद में गया था। उसने देखा कि सैकडों लोग नमाज पढने में लीन थे, सभी के नेत्र बंद थे।

नमाज पूरी होने के बाद घर आने पर शेखसादी ने बाल सहज कुतुहल से अपने पिता को कहा, `पिताजी ! नमाज पढते समय सभी बिरादर आंखें बंद करके खुदा की बंदगी में लीन थे, परंतु दूसरी पंक्ति में अंतिम छौर पर रहे तीन व्यक्ति तो कुछ भी नहीं कर रहे थें, वे तो ऐसे ही बैठे हुए थें।

बालक के मुख से इन वचनों को सुनकर खिन्न हुए पिता ने उसे ठपका देते हुए कहा, `तूं नमाज पढने के लिए मस्जिद में नहीं गया होता तो अच्छा रहता। घर पर रहकर कम से कम इस प्रकार दूसरों के दोष देखने की गलत आदत का शिकार तो नहीं बनता। नमाज के माध्यम से तू अल्लाह को देखने के लिए गया था या दूसरों के दोष देखने ?'

शेखसादी ने प्रौढवय में अपने इस जीवन प्रसंग को याद करते हुए लिखा कि तब से मैं मस्जिद में पराई पंचायत करने की प्रवृत्ति को सदा के लिए भूल गया। शेखसादी को जो पदार्थ पाठ अपने पिता की ओर से सीखने को मिला, वह पदार्थ पाठ जैन शास्त्रग्रंथों के माध्यम से खूब सरलता से सीखने को मिलता है।

सार्थ भाष्यत्रय के शास्त्र ग्रंथ की बात करे तो चैत्यवंदन भाष्य की सातवीं गाथा में छट्ठे त्रिक का ***निर्देश करते हुए स्पष्ट लिखा हैं, 'तिदिसिनिरिक्खणविरइ'*** अर्थात् जिन मंदिर में प्रभुदर्शन के लिए जाए तब अपनी दृष्टि प्रभु पर स्थिर होनी चाहिये, इसके सिवाय अन्य तीन दिशाओं में दृष्टिपात नहीं करना चाहिये। जहां तहां दृष्टि डालने का ही निषेध हो गया तो फिर दूसरों के दोष देखना, किसी की निंदा आदि करने का तो सहज निषेध हो जाता है।

यह तो एक उदाहरण मात्र हैं, बाकी तो जिन दर्शनादि अनुष्ठान के विचार, उच्चार और आचार के स्तर को गौरव प्रदान करनेवाली ऐसी कई विधियाँ चैत्यवंदन भाष्य में प्रस्तुत है, उसी प्रकार गुरु-वंदना और पच्चक्खाण

के अनुष्ठान को अद्‌भुत बनानेवाली कई बातें गुरुवंदन भाष्य और पच्चक्खाण भाष्य में रखी हुई है।

चैत्यवंदन भाष्य में 63 गाथाओं में चौबीस द्वार और 2055 स्थानों के माध्यम से जिन मंदिर संबंधी विधि का स्पष्ट उल्लेख किया गया है। उस भाष्य की 19वीं गाथा में प्रणिधान त्रिक का वर्णन है। उस त्रिक की प्ररुपणा दो प्रकार से की गई है। उसमें दूसरे प्रकार के लिए कहा है-**'मणवयकाएगत्तं'** अर्थात् मन, वचन और काया की एकाग्रता तल्लीनता।

प्रभु दर्शन के प्रसंग में हम अपनी काया को मुद्रा आदि के द्वारा दर्शन योग में जोड दे और वचन को सूत्रोच्चार द्वारा दर्शन क्रिया में जोड दे तो लोकदृष्टि से तो अपना अनुष्ठान परिपूर्ण हो जाएगा, परंतु यह प्रणिधान Red Signal द्वारा जागृतकर तन और वचन के साथ मन के उपयोग का भी अनुसंधान अवश्य करना चाहिये, तभी दर्शनादि योग तत्त्वदृष्टि से यथार्थ बनता है। मन चंचल बनकर जहां तहां भटकता रहे तो वे दर्शनादि योग उतने अंश में क्षति युक्त रहते है। एक सज्झाय में भी कहा है-

'कर ऊपर तो माला फिरती, जीभ फरे मुखमांहि।
चित्तडुं तो चिहुं दिशिए डोले, इन भजने सुख नांहि।'

मन को भक्ति में लयलीन बनानेवाले इस प्रणिधान त्रिक का मार्गदर्शन तो मुझे लगता है कि अपने जिन भक्ति के अनुष्ठान को एक नहीं बल्कि सोलह शणगार से सजा दे, ऐसा है।

चैत्यवंदन भाष्य में दशत्रिक में से पांचवा त्रिक हैं-**'अवस्थात्रिक'** इस अवस्था त्रिक की प्रथम छद्मस्थ अवस्था के भी तीन प्रभेद हैं-जन्मावस्था, राज्यावस्था और श्रमणावस्था।

श्री जिनमंदिर में विराजमान तारक परमात्मा के परिकर में अंकित पुष्पमाला धारकों के आलंबन से प्रभु की राज्यावस्था का चिंतन करने का भाष्यकार फरमाते है। इस चिंतन का दिग्दर्शन करानेवाली 'प्रवचन सारोद्धार' ग्रंथ की वृत्ति में लिखा है- ***'हस्ती, अश्व, स्त्री आदि महावैभव और सुखवाला साम्राज्य भी छोडकर जिस प्रभु ने श्रमण अवस्था का स्वीकार किया हैं, ऐसे अचिंत्य महिमा युक्त प्रभु का दर्शन भी महा पुण्यशाली प्राणी ही प्राप्त कर सकता है।'***

चिंतन की यह शैली हमें वैराग्यमय जीवन जीने का एक आदर्श प्रदान करती है। पुण्योदय के कारण भले ही ढेरसारी भोग सामग्री मिली हो, फिर

भी हमें जलकमलवत् अलिप्त ही रहना चाहिये। ***'जीवन वह्यां करे जलनी जेम, आपणे रहीए कमलनी जेम'*** यह हमारा आदर्श सूत्र होना चाहिये।

चक्रवर्ती अथवा राजाधिराज के अनुपम ऐश्वर्य को तृण की भांति छोडकर तीर्थंकर परमात्माओं ने जगत् को अलिप्तता का आदर्श प्रदान किया है। परंतु इससे भी अधिक आश्चर्यकारक बात तो यह है कि निकाचित भोग कर्म को खपाने के लिए प्रभु ने राज्य स्वीकार किया। राज सत्ता के भोग दरम्यान भी अंतर से अनासक्त रहकर प्रभु ने जगत् को अलिप्तता का आदर्श दिया है। काजल की कोटडी में रहकर भी सर्वथा बेदाग रहने जैसी अशक्य प्राय: यह साधना है।

इस महाकठिन साधना पर आफरिन बनकर **'अरिहंत वंदनावलि'** के गुर्जर भक्ति स्तोत्र में भी कहा है-

''मूर्च्छा नथी पाम्या मनुजना, पांच भेदे भोगमां,
उत्कृष्ट जेनी राज्यनीतिथी, प्रजा सुख चेनमां,
वली शुद्ध अध्यवसायथी जे, लीन छे निज भावमां,
एवा प्रभु अरिहंतने, पंचांग भावे हुं नमुं ॥''

अवस्थात्रिक के अन्तर्गत राज्यावस्था का चिंतन हमें इस आदर्श के अभिमुख बनाता है।

क्षायिक गुणों के धारक श्री तीर्थंकर परमात्मा गुणों की दृष्टि से सर्वश्रेष्ठ हैं, यह निर्विवाद बात है। वे ही तीर्थंकर परमात्मा शासन की रक्षादि के लिए शासनरक्षक देव-देवी की भी स्थापना करते हैं, यह भी निर्विवाद बात है। इसीलिए मध्यम और उत्कृष्ट चैत्यवंदन (देववंदन) में ***'वेयावच्चगराणं'*** पाठ और चतुर्थ स्तुति रुप वे अथवा अन्य सम्यग्दृष्टि देवताओं का उचित स्मरण शास्त्रकार भगवंतों को भी अभिमत है। चैत्यवंदन-भाष्य की 50वीं गाथा में ***'इह सुराइ सरणिज्जा'*** शब्द इस बात के द्योतक है। इसका सूचितार्थ यह है कि अन्यत्र भी सम्यग्दृष्टि देवता सर्वथा उपेक्षणीय नहीं है। योग्यता की दृष्टि से भले ही वे चौथे गुणस्थानक में रहे हो, फिर भी भौतिक सामर्थ्य और शासन रक्षा के अधिकारी होने के नाते वे श्रावक-श्राविका तथा साधु-साध्वीजी को भी आराधना-समाधि में सहायक बन सकते हैं। शासन के अग्रणी पूज्य सूरिवरों की सूरिमंत्र की साधना में उनको दिया गया उचित स्थान, इस बात को सिद्ध करता है।

हाँ, यह विवेक जरुरी है कि त्रिस्तुतिक परंपरावत् उसका सर्वथा निषेध अनावश्यक है तो उसका अतिरेक भी अनावश्यक है। सम्यगदृष्टि देवों के प्रति

अपना दृष्टि बिंदु कैसा निर्भ्रांत होना चाहिये, इसके लिए मेरी गुरु परंपरा के शिरताज पूज्यपाद युग दिवाकर **आ. श्री विजय धर्मसूरीश्वरजी म.** ने मुंबई के एक संघ को, श्रावक-श्राविकाओं को मार्गदर्शन के रूप में दी गई सूचनाओं को यहां अंकित करने का मन हो जाता है।

उन्होंने लिखा, 'श्री तीर्थंकर देव श्री जिनशासन के राजा हैं, जबकि अधिष्ठायक देव-देवी शासन के रक्षक है अतः भक्ति में श्री तीर्थंकर देवों को ही प्रधानता देनी चाहिये। सर्व प्रथम तीर्थंकर परमात्मा के दर्शनादि करके बाद में अधिष्ठायकादि के दर्शन करना। श्री तीर्थंकर परमात्मा की पूजा नौ अंगो से होती हैं, उस प्रकार अधिष्ठायक की नौ अंगों से पूजा नहीं होती है। अधिष्ठायक आदि अपने साधर्मिक है। साधर्मिक के परस्पर मिलने पर प्रणाम किया जाता है, उसी प्रकार देव-देवी को भी साधर्मिक के नाते प्रणाम करना चाहिये। अपने दाहिने अंगुठे से उनके कपाल पर तिलक करना चाहिये। देव-देवी के पास मात्र समाधि में सहायक बनाने के सिवाय अन्य कुछ भी मांगना नहीं चाहिये।'

'चैत्यवंदन भाष्य' की पूर्वोक्त पंक्ति यह संदेश सुनाती है कि सम्यग्दृष्टि देव स्मरणीय जरुर हैं, परंतु उनका स्मरण आराधना और समाधि में सहायक बनने के लिए है।

अब **'गुरुवंदन भाष्य'** की विशेषताएं देखेंगे। सामान्य व्यक्ति जिसे चंद क्षणों की सामान्य क्रिया समझता है, उस गुरुवंदना के लिए इस भाष्य में 41 गाथाओं में 22 द्वार और 492 स्थान बतलाए है।

इसमें **'आयारस्स उ मूलं'** जैसी सर्वकालीन सुभाषित गाथा है तो **'माय पिय जिट्ठभाया'** जैसी विवेक भरपूर गाथा भी है। इस भाष्य की एक गाथा का विचार वैभव 100 टंच के सोने जैसा मूल्यवान् है।

गुरुवंदन भाष्य की **'गुरु विरहंमि ठवणा'** इस तीसवीं गाथा में निर्देश है कि-**'सामायिक आदि धर्मानुष्ठान साक्षात् गुरु न हो तो स्थापना गुरु (स्थापनाचार्य) के सामने करना चाहिये।'**

इस गाथा से यह स्पष्ट होता है कि साक्षात् जिनेश्वर देव की अनुपस्थिति में स्थापना जिन अर्थात् जिन मूर्ति आदि की सेवा भक्ति सफल मानी जाती है तो साक्षात् गुरु की अनुपस्थिति में स्थापना गुरु की वंदना-सेवा सफल ही मानी जाती है।

काल के कषपट्ट पर 'स्थापना' का यह विचार १०० टंच के सोने जैसा है इसे समझाने के लिए निम्न चार प्रसंग संक्षेप में लिखता हूँ।

1) अभी अभी हिंदी सामयिक (प्रायः श्रमण भरती) के मुख पृष्ट पर समाचार थे कि तेरापंथ के आचार्य श्री महाप्रज्ञजी की अनुमति पूर्वक उनकी और उनके दो पूर्वज गुरुदेवों की मूर्ति स्थापना तेरापंथी के स्थान में कराई गई। ख्याल रहे कि स्थानकवासी और तेरापंथ की परंपरा का जन्म मुख्यतया मूर्ति विरोधी, स्थापना विरोधी की भूमिका के ऊपर ही हुआ है।

2) वि.सं. 2061 में मुंबई के निकटवर्ती पीयूषपाणि विहारधाम में हम दर्शन कर रहे थे, तभी स्थानकवासी महासती वृंद ने विहारकर आते ही जिनमंदिर में प्रवेश किया, सभी ने मस्तक झुकाकर दो हाथ जोडकर श्री जिनप्रतिमा को नमस्कार किया और उसके बाद वे उपाश्रय में पधारें।

3) वि.सं. 2062 में एक तेरापंथी महासती ने मुझे वार्तालाप में कहा, `ध्यान में आलंबन के लिए एक छोटी सी जिनमूर्ति साथ में रखने के लिए हमारे आचार्यश्री ने अनुमति दी है।'

4) स्थानकवासी परंपरा में पैदा हुए प्रख्यात प्रज्ञाचक्षु पंडित सुखलालजी ने **`मेरा जीवनवृत्त'** आत्म कथानक पुस्तक के पृष्ठ नं. 70 पर अपना एक जीवन प्रसंग लिखा है। उसका सारांश यह है कि **`जिनमंदिर में पढाई जाती पूजा के समय भक्तिरस में कैसी अलौकिकता है ?'** का अनुभव हुआ। उनके नेत्र आर्द्र हो गए। उसके बाद उनके मूर्ति विरोध के संस्कार दूर हो गए।

मूर्ति निषेध की परंपरावाले वर्ग में आए सुखद परिवर्तन के लिए ये चार उदाहरण सक्षम है कि काल की कसौटी में **`स्थापना-निक्षेप'** सो टंच का सोना सिद्ध हुआ है। इस सत्य को सिद्ध करने वाली `गुरुवंदन भाष्य की 30वीं गाथा हमारे लिए पठनीय ही नहीं नमस्करणीय भी है।

48 गाथा प्रमाण ***`पच्चक्खाण भाष्य'*** में 9 द्वार और 90 उत्तरभेदों के माध्यम से `पच्चक्खाण और उसके आगारों का विस्तृत वर्णन किया गया है।

लोक व्यवहार में कहीं ***`मुझे कंदमुल का पच्चक्खाण हैं',*** तो कहीं ***`मुझे आयंबिल का पच्चक्खाण है।'*** शब्द प्रयोग सुनते है। पहले वाक्य में पच्चक्खाण का अर्थ ***`त्याग'*** और दूसरे वाक्य में पच्चक्खाण का अर्थ ***`स्वीकार'*** करते है। तो वास्तव में पच्चक्खाण का क्या अर्थ है त्याग या प्रतिपत्ति (स्वीकार) ? इसका उत्तर बहुत ही मजे का है। पच्चक्खाण का मूल संस्कृत ***`प्रत्याख्यान'*** होता है। इसकी व्युत्पत्ति प्रति + आ + ख्यान = प्रति प्रतिकूलता से, आ + निश्चित मर्यादापूर्वक, ख्यान = कहना। `विराधना को

प्रतिकूल हो, इस प्रकार समय आदि की निश्चित मर्यादापूर्वक जो आलापक-पाठ बोलते हैं, उसे प्रत्याख्यान कहते है । इस व्याख्या के अनुसार **'पच्चक्खाण'** शब्द का अर्थ उपरोक्त दोनों वाक्यों में सुसंगत होगा ।

'पच्चक्खाण भाष्य' में भी कई विशेषताएं रही हुई हैं-

'पच्चक्खाण भाष्य' की दूसरी गाथा में दश प्रकार के पच्चक्खाणों में से **'संकेत पच्चक्खाण'** का निरुपण है ।

आहार की छूट होने पर भी आहार सिवाय के समय में आराधक आत्मा विरति का लाभ प्राप्त कर सके, इस हेतु संकेत पच्चक्खाण का निरुपण है । वर्तमान में खूब प्रचलित **'दीपक एकासना'** का अनुष्ठान भी इसी संकेत पच्चक्खाण का प्रकार है । अधिक से अधिक समय त्याग में व्यतीत हो, शास्त्रकारों का यह आशय इस प्रकार के पच्चक्खाणों में प्रतिबिंबित होता है । यह देख अपना मस्तक बहुमान से झुक जाता है ।

पच्चक्खाण भाष्य की 26वीं गाथा में **'गुरु अब्भुट्ठाणेणं'** आगार का वर्णन है । कोई व्यक्ति एकासना कर रहा हो । उस समय कोई अनिवार्य वस्तु 10 हाथ दूर पडी हो और वहां कोई व्यक्ति मौजुद न हो तो वह व्यक्ति उस वस्तु के बिना चला देगा परंतु उस वस्तु को लेने के लिए खडा नहीं होगा । क्योंकि वह जानता हैं कि इस प्रकार खडे होने में एकासने का भंग है ।

इसी परिस्थिति में यह आगार कहता हैं कि `गुरु महाराज पधारे तो गुरु विनय हेतु वह व्यक्ति खडा हो जाय तो भी उसका व्रत भंग नहीं होता है । जिनशासन में गुरु तत्त्व के विनय का कितना महत्त्व दिया है-वह इस निरुपण से सिद्ध होता है ।

26 वीं गाथा में सिर्फ सर्व विरतिधरों के लिए **'पारिट्ठावणीय'** आगार बतलाया है । इसमें शास्त्रकार भगवंतों की उच्चतम विवेक दृष्टि के दर्शन होते है ।

एक साधु उपवासी हो तो भोजन के एक कण को भी वापरने का विचार नहीं करेगा, परंतु उसी दिन अन्य श्रमणों के लिए लाई गई गोचरी बढ गई हो और परठने के संयोग खडे हो गए हो तो जीव हिंसा के महादोष से बचने के लिए गीतार्थ गुरुदेव उस उपवासी श्रमण को भी बढा हुआ आहार वापरने की आज्ञा कर सकते है । ऐसे संयोगों में आहार लेने पर भी इस आगार के कारण उपवास का भंग नहीं होता हैं ।

गुरु के पक्ष में जीव हिंसा के दोष से बचने का विवेक दिखाई देता है तो शिष्य के पक्ष में **`अच्छा हुआ, खाने को मिला गया ।'** ऐसा लेश भी

विचार न आए-वह अनासक्त भाव का विवेक दिखाई देता है। गुरु-शिष्य में विवेक पैदा करानेवाली शास्त्रकार महर्षि की वह विवेक दृष्टि सचमुच वंदनीय है।

'निशीथ' भाष्य में से उद्धृत पच्चक्खाण भाष्य की 40वीं गाथा में सात बार विगई शब्द का प्रयोग किया गया है, परंतु सब जगह उसका अर्थ भिन्न भिन्न है।

उस गाथा में दूध-दही के अर्थ में, विकार के अर्थ में और दुर्गति के अर्थ में विगइ शब्द का प्रयोग किया गया है। उसका पूरा अर्थ श्रमण-श्रमणी के अंतस्तल में विराग की गंगा बहानेवाला है।

'दुर्गति से भयभीत जो श्रमण या श्रमणी निष्कारण विगई या विगइगत अर्थात् नीवियाते द्रव्य का उपयोग करती है उसे ये विगइयां जबरदस्ती दुर्गति में धकेल देती हैं, क्योंकि विगइ में विकार पैदा करने का स्वभाव हैं।'

शब्दों के माध्यम से संवेग-रंग के तरंग पैदा करनेवाली चित्तहर रचना किसे आश्चर्य चकित नहीं करती है।

यह तो इन तीन भाष्यों की झलक मात्र है। उसके यथार्थ बोध के लिए तो इस समग्र ग्रंथ का अध्ययन जरुरी है। थोडे से शब्दों में कहना हो तो कह सकते है कि इन तीन भाष्यों में **'आचार धर्म का प्रकाश'** दिखाई देता है।

जिस प्रकार इन भाष्यों में आचारों का वर्णन हैं, इसी प्रकार इसके कर्ता भी आचार संपन्न महर्षि है।

तपागच्छ के अलंकार, परम विद्वान, संविग्न शिरोमणि **पूज्य प्रवर आचार्य श्री देवेन्द्रसूरीश्वरजी महाराज** इसके कर्ता है। श्रमण भगवान महावीर प्रभु की अस्खलित मूल परंपरा के वाहक और वारस ! तपागच्छ का **'तपा'** नाम- करण जिस पुण्य प्रतापी पूर्वाचार्य के कारण हुआ, ऐसे शासन शिरताज **पूज्य सूरिपुरंदर आचार्य श्रीमान् जगच्चन्द्रसूरीश्वरजी म.** के वे प्रथम पट्टधर थे। प्रखर विद्वत्ता के कारण उन्होंने श्राद्ध दिन कृत्य, सिद्ध पंचाशिका वृत्ति, वंदारुवृत्ति, सुदर्शना चरित्र, सटीक पांच नव्य कर्म ग्रंथ, चैत्यवंदनादि तीन भाष्य, धर्मरत्न प्रकरण बृहद्वृत्ति, सिद्धदंडिका, सिरि उसह-वद्धमाणस्तव, चत्तारि अट्ठ दसदोय गाथा विवरण आदि अनेक ग्रंथों का सर्जन किया था। इसके साथ ही विरल वैराग्य के कारण परम संविग्नता द्वारा अपने गुरुदेव के उत्तरदायित्व को अच्छी तरह से निभाया था। उनके लघु गुरुबंधु **पू. आ. विजय चंद्रसूरीश्वरजी म.सा.** तत्कालीन शिथिलाचारी

के वर्ग में आ गए थे, उन्होंने उनसे भी दूर रहकर अपनी शुद्ध आचार-निष्ठा का दृढ़ता से पालन किया था ।

विक्रम की 13 वीं सदी के उत्तरार्ध में और 14वीं सदी के पूर्वार्ध मे जैन शासन को दीप्तिमंत रखनेवाले इन आचार्य भगवंत के वैराग्य और व्याख्यान का इतना अधिक प्रभाव था कि वि.सं. 1302 में उज्जयिनी नगरी के श्रेष्ठी जिनचंद्र के पुत्र वीरधवल ने प्रारंभ हुए लग्न महोत्सव को छोडकर परिवार की संमति के साथ मानव सुंदरी के बदले संयम सुंदरी का स्वीकार किया था। सिर्फ अकेले नहीं, उन्होंने अपने छोटे भाई भीमसिंह को भी संयमी बनाया था । वो ही वीरधवल `पूज्यश्री के प्रथम पट्टधर **पू.आ. श्री विद्यानंदसूरिजी** बने थे, जिन्होंने **'विद्यानंद'** व्याकरण की रचना की थी ।

पू.आ. श्री देवेन्द्रसूरीश्वरजी म.सा. के दूसरे प्रधान पट्टधर थे, पू. **आ. श्री धर्मघोषसूरीश्वरजी म.सा.** । सर्पदंश निवारण के लिए हुई वनस्पति विराधना के प्रायश्चित्त रुप में जिन्होने आजीवन छ विगई का त्याग किया था । संघाचार-भाष्य और यमक स्तुतियों का सर्जन किया था तो अपने परम भक्त सुकृतसागर मंत्रीश्वर पेथडशाह के माध्यम से अनुपम शासन प्रभावना के कार्य करवाए थे । अपने **गुरुदेव देवेन्द्रसूरीश्वरजी म.सा.** के धर्मवारसे को चिरकाल तक दीपाया था ।

श्रीमान् देवेन्द्रसूरीश्वरजी म.सा. की शिष्य परंपरा की तरह उनकी ग्रंथ परंपरा भी यशस्वी बनी है । उनके द्वारा विरचित तीन भाष्य और पाँच कर्मग्रंथ के अध्यापन की परंपरा आज भी जैन संघ में प्रचूर प्रमाण में दिखाई देती है ।

हिन्दी भाषी विशाल जैन जनता भी इस परंपरा में सम्मिलित हो सके इसके लिए अर्थ और विवेचन सहित इस ग्रंथ का निर्माण किया है-प्रभावक प्रवचनकार और **हिन्दी साहित्यकार श्री रत्नसेनविजयजी गणिवर** ने (वर्तमान में **आचार्य श्रीमद् विजय रत्नसेनसूरीश्वरजी म.सा.**) । निरर्थक विस्तार के आडंबर को छोडकर उन्होंने अभ्यासीवर्ग को सरलता रहे, इसी दृष्टि से प्रमाणोपेत विवेचनशैली अपनाई है-इसमें उनकी कार्य कुशलता के प्रत्यक्ष दर्शन होते है । प्रारंभ में उन्होंने 45 आगम, उनके मूल श्लोक प्रमाण, वृत्ति श्लोक प्रमाण निर्युक्ति आदि का प्रमाण भी बतलाया है । सर्व विरतिधर को द्रव्यस्तव की सामग्री का अभाव होने पर भी अमुक अपेक्षा से उन्हे भी द्रव्यस्तव किस मर्यादा में होता हैं, वह भी बतलाते है । आलंबन त्रिक्र के वर्णन प्रसंग में जिनप्रतिमा को साक्षात् श्री जिनेश्वर के रुप में देखने का भी

निर्देश करते है तो गुरुवंदन भाष्य की 21 वीं गाथा के विवेचन में **'गोप्यावयव विलोकनरक्षणाय'** के टीका पाठ का निर्देशकर स्त्रियों की शरीर पडिलेहणा के स्थान न्युन क्यों ?' का भी सबल हेतु प्रस्तुत किया है ।

जैन जगत् में **'पंन्यासजी महाराज'** यह विशेषण जिनके लिए पर्यायवाची बन गया था, ऐसे नमस्कार महामंत्र के अद्‌भुत आराधक, मैत्री भाव के परम उपासक **पूज्यपाद पंन्यास प्रवर श्री भद्रंकरविजयजी गणिवर्य** के वे अंतिम शिष्यरत्न है । उनके प्रथम परिचय में ही उनकी अद्‌भुत विशेषता बाहर आ जाती है, वह है मिलनसार वृत्ति की । मेरा मंतव्य है कि उनको यह गुण उनके गुरुदेव की ओर से वारसे में मिला होगा ।

मेरे तारक गुरुदेव पूज्यपाद **शासन प्रभावक आचार्य भगवंतश्री विजयसूर्योदयसूरीश्वरजी म.सा.** ने अपनी दीक्षा के प्रारंभिक वर्षों का स्वानुभव सुनाते हुए मुझे कहा, ***'पूज्य पंन्यासजी महाराज दो तिथि पक्ष के होने पर भी उनका गुणानुराग गुण सर्वत्र फैला हुआ था । पूज्यपाद युग दिवाकर आचार्यदेव श्री की ओर उनका गुण मंडित बहुमान भाव मैंने प्रत्यक्ष मिलन और उनके पत्र व्यवहार में खूब अच्छे ढंग से देखा है ।'***

ऐसे गुरुवर के संस्कार शिष्यों में भी उतरे, यह सहज बात है ।

पं. श्री रत्नसेनविजयजी म.सा. (वर्तमान में **आचार्यदेव श्रीमद् विजय रत्नसेनसूरीश्वरजी म.सा.**) में मैने अन्य एक विशेषता देखी, वह है सतत प्रवृत्तिशील रहने की । इसी कारण प्रवचन आदि सभी जवाबदारियों को वहन करते हुए भी उन्होने अकेले हाथों से 225 से भी अधिक पुस्तकों का लेखन-संपादन किया है । **'दिव्य संदेश'** सामयिक के माध्यम से भी उनकी लेखनी अबाधगति से चल रही है । उनकी साहित्य यात्रा को अंतःकरण की अगणित शुभेच्छाओं के साथ इस ग्रंथ के माध्यम से अभ्यासीवर्ग मात्र अध्ययन की ओर ही नहीं, बल्कि अक्षय पद की ओर आगे बढे, यही मंगल कामना है ।

श्री जिनाज्ञा विरुद्ध कहीं आलेखन हुआ हो तो उसके लिए हार्दिक मिच्छा मि दुक्कडं ।

पोष वदी पंचमी ता. 27-1-2008 **विज्य राजरत्नसूरि**

पू. युगदिवाकर श्री का 58 वां

आचार्यपदार्पण दिन

श्री महावीरधाम-शिरसाडतीर्थ

लेखक की कलम से

भव बंधन से मुक्त होने के लिए जिस प्रकार आत्मा में भव्यत्व-स्वभाव की मूल योग्यता चाहिये तो उसके साथ ही मोक्षमार्ग की साधना में आगे बढने के लिए देव-गुरु और धर्म की सानुकूल सामग्री भी चाहिये।

सम्यग् दर्शन की शुद्धि के लिए देवतत्व की आराधना चाहिये।

सम्यग्ज्ञान की शुद्धि व प्राप्ति के लिए गुरु तत्व की उपासना अनिवार्य है तो धर्म तत्व की आराधना के लिए तप-त्याग आदि अनुष्ठान जरुरी है।

देव तत्व की आराधना कैसे और किस प्रकार करनी चाहिए ?

गुरु तत्व की आराधना कैसे और किस प्रकार करनी चाहिये ?

दिन और रात्रि संबंधी पच्चक्खाण कब व कैसे करने चाहिये ? इत्यादि जानकारी प्रत्येक साधु साध्वी और श्रावक-श्राविका को होनी जरुरी है।

विद्वद्वर्य आचार्य श्री देवेन्द्रसूरिजी म.सा. ने स्व पर उपकार के लिए इन तीन भाष्यों की सुंदर रचना की है।

भगवान महावीर के 2500 वर्ष के शासन में अनेक प्रभावक और चारित्र संपन्न आचार्य भगवंत पैदा हुए है, जिन्होंने अपने प्राणों का बलिदान देकर भी शासन की रक्षा की है। अनेक महापुरुषों ने त्याग, तप और उत्कृष्ट संयम जीवन जीकर जगत् को उत्कृष्ट आदर्श प्रदान किया है।

भगवान महावीर की चौवालीसवीं पाटपरंपरा में आयंबिल तप के घोर तपस्वी **आचार्य भगवंत श्री जगच्चन्द्रसूरीश्वरजी म.सा.** पैदा हुए, जिन्होंने 12 वर्ष तक निरंतर आयंबिल का तप किया था। जिन्हे मेवाड के महाराणा जैत्र सिंह ने ***'तपा'*** का बिरुद प्रदान किया था।

तब से निर्ग्रंथ गच्छ का नाम **'तपागच्छ'** पडा, जो आज भी चल रहा है। **पू. जगच्चन्द्रसूरीश्वरजी म.सा.** के उपदेश से प्रतिबोध पाकर उनके सांसारिक ज्येष्ठ बंधु वरदेव के पुत्र देवसिंह ने बाल्यवय में ही भागवती-दीक्षा अंगीकार की थी और उनका नाम देवेन्द्रमुनि रखा गया। गुरु चरणों में पूर्ण समर्पित होकर रहते हुए देवेन्द्र मुनि रत्नत्रयी की आराधना-साधना में आगे बढते गए। इस प्रकार क्रमश: वे आचार्यपद पर आरुढ हुए।

आचार्य पद पर आरुढ होने के बाद **देवेन्द्रसूरीश्वरजी म.** के वरद हस्तों से जैन शासन की अद्‌भुत प्रभावना हुई। उनकी वाणी में अमृतसा माधुर्य था। चारित्र पालन में कहीं स्खलना न हो, इसके लिए वे प्रतिपल जागरुक रहते थे। शास्त्र से परिकर्मित निर्मल बुद्धि के वे स्वामी थे।

उन्होंने अपने जीवन में स्व-पर कल्याण के लिए अनेक धर्मग्रंथों का भी सर्जन किया था।

शांतिसूरीश्वरजी म. के द्वारा विरचित **'धर्मरत्नप्रकरण'** ग्रंथ के ऊपर उन्होंने बृहद् टीका की रचना की थी। उसी प्रकार सुदंसणा चरियं, सिद्धपंचाशिका (सटीक), श्राद्धदिनकृत्य (सटीक) श्राद्ध प्रतिक्रमण सूत्र (सटीक) नव्य पांच कर्मग्रंथ (सटीक) तथा तीन भाष्य की रचना की थी।

श्री धर्मकीर्ति और विद्यानंद उपाध्याय नाम के उनके दो शिष्य थे। आगे चलकर **'धर्मकीर्ति'** को आचार्यपद प्रदान किया गया और वे **धर्मघोषसूरिजी म.** के नाम से प्रख्यात हुए। मांडवगढ के महामंत्री पेथडशाह को धर्मबोध देनेवाले **धर्मघोषसूरिजी म.** ही थे। **पू. धर्मघोषसूरिजी म.** ने भी अपने गुरदेव के द्वारा विरचित चैत्यवंदन भाष्य पर संघाचार नाम की टीका की रचना की थी। उन्होंने चौबीस जिन स्तुति, नंदी स्तुति आदि की भी रचना की थी।

जैन धर्म के तत्वज्ञान और आचार मार्ग को समझने की जिज्ञासा हो तो कम से कम प्रत्येक जिज्ञासु को पंच प्रतिक्रमण के सूत्र अर्थ सहित, जीव विचार और नव तत्त्व अर्थ सहित, तीन भाष्य अर्थ सहित और प्रथम कर्मग्रंथ अर्थ सहित अवश्य जानना चाहिये।

पंच प्रतिक्रमण के अधिकांश सूत्र गणधर अथवा पूर्वधर महर्षियों के द्वारा रचे गए है। वे सूत्र, अर्थ गंभीर है। उन सूत्रों के अर्थ का बोध होने से तत्त्वत्रयी रुप देव-गुरु और धर्म का भी यथार्थ बोध होता है। ये सूत्र दैनिक आचार संहिता के पालन में उपयोगी है।

'जीव विचार' सूत्र का अर्थ के साथ बोध हो तो जीवों के प्रकार और उनके स्वरुप का यथार्थ बोध होता है, जिसके फलस्वरुप उन जीवों की रक्षा का शक्य प्रयत्न किया जा सकता है।

नवतत्त्व के अर्थ का बोध होने पर जीव-अजीव, पुण्य-पाप, आश्रव-संवर, निर्जरा-बंध और मोक्ष तत्त्व के यथार्थ स्वरुप का ख्याल आता है। प्रथम कर्म ग्रंथ के अर्थ बोध से जैन दर्शन को मान्य कर्म के स्वरुप का यथार्थ बोध होता हैं। जिसके फलस्वरुप किसी भी प्रकार के पापोदय और पुण्योदय में अपनी समाधि जीवंत रखी जा सकती है।

तीन भाष्यों की उपयोगिता

जैन दर्शन को मान्य तारक तीर्थंकर परमात्मा की प्रतिमा के साथ अपना व्यवहार कैसा होना चाहिए ? जिन मंदिर में प्रवेश करने के बाद बाहर निकलते तक कौन कौन से नियमों का पालन करना चाहिये ? इसका यथार्थ बोध हमें **चैत्यवंदन भाष्य** से प्राप्त होता है।

चैत्यवंदन करते समय कौन कौन से पांच दंडक सूत्रों का प्रयोग किया जाता है। उनमें पद, संपदाए और अक्षर आदि का क्या प्रमाण है ? इसका सम्यग् बोध चैत्यवंदन भाष्य से ही प्राप्त होता है।

मोक्ष मार्ग में आगे बढने के लिए कदम-कदम पर गुरु की अपेक्षा रहती है । ऐसे गुरुदेव की जाने अनजाने में आशातना न हो जाय, इसका स्पष्टबोध **गुरु वंदन भाष्य** से ही प्राप्त होता है । गुरुवंदन करते समय टालने योग्य 32 दोष और गुरु संबंधी 33 आशातनाओं का बोध इसी भाष्य से प्राप्त होता है ।

प्रतिदिन सुबह-शाम करने योग्य आहार संबंधी पच्चक्खाण का यथार्थ बोध **'पच्चक्खाण भाष्य'** से होता है ।

इन तीन भाष्यों का बोध जीवन-व्यवहार में खूब उपयोगी है ।

श्रावकों की तरह मुमुक्षु एवं नूतन दीक्षित साधु-साध्वियों के लिए भी इन तीन भाष्यों का बोध जरुरी है । श्री वादिवेताल **श्री शांतिसूरिजी म.** ने 910 गाथा प्रमाण प्राकृत भाषा में **'चेइयवंदण महाभासं'** की रचना की है । इस चेइयवंदण महाभास का गुजराती अनुवाद भी प्रकाशित हो चुका है । इस महा भाष्य में स्थापना निक्षेप की पूजनीयता, जिनपूजा के विविध प्रकार, चैत्यवंदन में अति उपयोगी पांच दंडक सूत्र आदि पर विस्तृत विवेचन, आदि मुद्दों की विस्तृत चर्चा की गई । विशेष जिज्ञासु को वह ग्रंथ भी अवश्य पठनीय है ।

श्री जैन श्रेयस्कर मंडल महेसाणा की ओर से इन तीन भाष्यों का गुजराती विवेचन अनेक बार प्रकाशित हुआ है । हिन्दी भाषा में यह विवेचन प्रथम बार प्रकाशित हो रहा है ।

स्व. अध्यात्मयोगी, नि:स्पृहशिरोमणि, नमस्कार महामंत्र के अजोड साधक, पूज्यपाद **परम गुरुदेव पूज्य पंन्यासप्रवर श्री भद्रंकरविजयजी गणिवर्य श्री** की असीम कृपा वर्षा से ही मैं यह विवेचन तैयार कर सका हूँ । इस विवेचन को तैयार करने में महेसाणा से प्रकाशित गुजराती विवेचन एवं हिन्दी में जयपुर से प्रकाशित **प्रवचन सारोद्धार** के हिन्दी भावानुवाद (अनुवादक-**सा. श्री हेमप्रभाश्रीजी म.**) आदि का भी सहयोग लिया है ।

साधु एवं श्रावक जीवन में अति उपयोगी इन विवेचनों का स्वाध्याय कर सभी आत्माएँ मोक्ष मार्ग में आगे बढे, इसी शुभ कामना के साध !

अज्ञानतावश कहीं भी जिनाज्ञा विरुद्ध आलेखन हुआ हो तो त्रिविध त्रिविध मिच्छा मि दुक्कडम्...

जैन उपाश्रय, चिंचवड स्टे.
पूना-411 019.
दि. 12-3-2022

निवेदक : अध्यात्मयोगी नि:स्पृहशिरोमणि
परम गुरुदेव पंन्यासप्रवर
श्री भद्रंकरविजयजी गणिवर्य
चरण चंचरीक **आचार्य रत्नसेनसूरि**

चैत्यवंदन भाष्य

(गाथा छंद)

वंदित्तु वंदणिज्जे, सव्वे चिइ-वंदणाइ-सुवियारं ।
बहुवित्ति भास चुण्णी, सुयाणुसारेण वुच्छामि ।।1।।
दह तिग अहिगम पणगं, दुदिसि तिहुग्गह तिहा उ वंदणया ।
पणिवाय नमुक्कारा, वन्ना सोलसय सीयाला ।।2।।
इग सीइसयं तु पया, सगनउई संपया उ पण दंडा ।
बार अहिगार चउ वंदणिज्ज सरणिज्ज चउह जिणा ।।3।।
चउरो थुई निमित्तट्ठ, बार हेउ अ सोल आगारा ।
गुणवीस दोस उस्सग्गमाण थुत्तं च सग वेला ।।4।।
दस आसायण चाओ, सव्वे चिइवंदणाइ ठाणाइं ।
चउवीस दुवारेहिं, दुसहस्सा हुंति चउसयरा ।।5।।
तिन्नि निसीही तिन्नि उ, पयाहिणा तिन्नि चेव य पणामा ।
तिविहा पूया य तहा, अवत्थतिय भावणं चेव ।।6।।
ति दिसि निरिक्खण विरइ, पय भूमि पमज्जणं च तिक्खुत्तो ।
वन्नाइ तियं मुद्दा-तियं च तिविहं च पणिहाणं ।।7।।
घर जिणहर जिणपूआ, वावारच्चायओ निसीहि तिगं ।
अग्गदद्दारे मज्झे, तइया चिइवंदणा समए ।।8।।
अंजलिबद्धो अद्धोणओ अ पंचंगओ अ ति पणामा ।
सव्वत्थ वा ति वारं, सिराइ नमणे पणाम तियं ।।9।।
अंगग्ग भाव भेया, पुप्फाहारत्थूईहिं पूय तिगं ।
पंचुवयारा अट्ठोवयार सव्वोवयारा वा ।।10।।
भाविज्ज अवत्थतियं, पिंडत्थ-पयत्थ-रूव रहियत्तं ।
छउमत्थ केवलित्तं, सिद्धत्तं चेव तस्सत्थो ।।11।।
न्हवणच्चगेहिं छउमत्थ-ऽवत्थ पडिहारगेहिं केवलियं ।
पलियंकुस्सग्गेहि अ, जिणस्स भाविज्ज सिद्धत्तं ।।12।।

उड्ढाहो तिरियाणं, ति-दिसाण निरिक्खणं चइज्जहवा ।
पच्छिम दाहिण वामाण-जिणमुहन्नत्थ दिट्ठिजुओ ।।13।।
वन्नतियं वन्नत्था, लंबणमालंबणं तु पडिमाई ।
जोग जिण मुत्तसुत्ती, मुद्दा भेएण मुद्द तियं ।।14।।
अन्नुन्नंतरि अंगुलि-कोसागारेहिं दोहिं हत्थेहिं ।
पिट्टोवरि-कुप्पर-संठिएहिं तह जोग-मुद्दत्ति ।।15।।
चत्तारि अंगुलाइं, पुरओ ऊणाइं जत्थ पच्छिमओ ।
पायाणं उस्सग्गो, एसा पुण होइ जिण-मुद्दा ।।16।।
मुत्तासुत्ती मुद्दा, जत्थ समा दो वि गब्भिआ हत्था ।
ते पुण निलाडदेसे, लग्गा अन्ने अलग्ग त्ति ।।17।।
पंचंगो पणिवाओ, थय पाढो होइ जोग-मुद्दाए ।
वंदण जिणमुद्दाए, पणिहाणं मुत्तसुत्तीए ।।18।।
पणिहाण तियं चेइअ-मुणि-वंदण-पत्थणा-सरूवं वा ।
मण-वय-काएगत्तं-सेस-तियत्थो य पयडुत्ति ।।19।।
सच्चित्त दव्वमुज्झण-मच्चित्तमणुज्झणं मणेगत्तं ।
इग साडि उत्तरासंगु, अंजली सिरसि जिणदिट्ठे ।।20।।
इय पंचविहाऽभिगमो, अहवा मुच्चंति रायचिण्हाइं ।
खग्गं छत्तोवाणह, मउडं चमरे अ पंचमए ।।21।।
वंदंति जिणे दाहिण, दिसिट्ठिया पुरिस वाम दिसि नारी ।
नवकर जहन्न सट्ठिकर, जिट्ठ मज्झुग्गहो सेसो ।।22।।
नमुक्कारेण जहन्ना, चिइवंदण मज्झ दंड थुइ जुअला ।
पण दंड थुइ चउक्कग, थय पणिहाणेहिं उक्कोसा ।।23।।
अन्ने बिंति इगेणं, सक्कत्थएण जहन्न वंदणया ।
तद्दुग-तिगेण मज्झा, उक्कोसा चउहिं पंचहिं वा ।।24।।
पणिवाओ पंचंगो, दो जाणू कर दुगत्तमंगं च ।
सुमहत्थ-नमुक्कारा, इग-दुग-तिग-जाव अट्ठसयं ।।25।।

अडसट्ठि अट्ठवीसा, नव नउय सयं च दु सय सग नऊआ ।
दो गुणतीस दुसट्ठा, दुसोल अडनउअसयं दुवन्नसयं ।।26।।
इय नवकार-खमासमण, इरिय सक्कत्थयाइ-दण्डेसु ।
पणिहाणेसु अ अदुरुत्त, वन्न सोलसय सीयाला ।।27।।
नव बत्तीस तित्तीसा, तिचत्त अडवीस सोल वीस पया ।
मंगल इरिया सक्कत्थयाइसुं एगसीइसयं ।।28।।
अट्ठऽट्ठ नवऽट्ठ य अट्ठवीस सोलस य वीस वीसामा ।
कमसो मंगल-इरिया-सक्कत्थयाइसु सग-नउई ।।29।।
वन्नट्ठसट्ठि नवपय, नवकारे अट्ठ संपया तत्थ ।
सग संपय पय तुल्ला, सत्तरक्खर अट्ठमी दुपया ।।30।।
पणिवाय अक्खराइं, अट्ठावीसं तहा य इरियाए ।
नव-नउयमक्खरसयं, दु-तीस पय संपया अट्ठ ।।31।।
दुग दुग इग चउ इग पण, इगार छग इरियसंपयाइ पया।
इच्छा इरि गम पाणा, जे मे एगिंदि अभि तस्स ।।32।।
अब्भुवगमो निमित्तं, ओहेयर हेउ संगहे पंच ।
जीव-विराहण-पडिक्कमण-भेयओ तिन्नि चूलाए ।।33।।
दु ति चउ पण पण पण दु,चउ ति पय सक्कत्थय-संपयाइ पया ।
नमु आइग पुरिसो लोगु, अभय धम्म प्प जिण सव्वं ।।34।।
थोअव्व संपया ओह, इयर हेऊवओग तद्धेऊ ।
सविसेसुवओग स-रुव, हेउ निय सम-फलय मुक्खे ।।35।।
दो सग नउया वन्ना, नव संपय पय तित्तीस सक्कथए ।
चेइय थयट्ठ संपय, तिचत्त पय वन्न दु सय गुणतीसा ।।36।।
दु छ सग नव तिय छच्चउ, छप्पय चिइसंपया पया पढमा ।
अरिहं वंदण सद्धा, अन्न सुहुम एव जा ताव ।।37।।
अब्भुवगमो निमित्तं, हेऊ इग बहु वयंत आगारा ।
आगंतुग आगारा, उस्सग्गावहि सरूव-ट्ठ ।।38।।

नामथयाइसु संपय, पय सम अडवीस सोल वीस कमा ।
अदुरुत्तवन्न दोसट्ठ-दुसयसोलट्ठनउअसयं ।।39।।
पणिहाणि दुवन्नसयं, कमेसु सग-ति चउवीस तित्तीसा ।
गुणतीस अट्ठवीसा, चउतीसि गतीस बार गुरुवन्ना ।।40।।
पण दंडा सक्कत्थय, चेइअ नाम सुअ सिद्धथय इत्थ ।
दो इग दो दो पंच य, अहिगारा बारस कमेण ।।41।।
नमु जे अ अरिहं लोग, सव्व पुक्ख तम सिद्ध जो देवा ।
उज्जिं चत्ता वेयावच्चग अहिगार पढम पया ।।42।।
पढमहिगारे वंदे, भावजिणे बीयए उ दव्वजिणे ।
इग चेइय ठवण जिणे, तइय चउत्थंमि नाम जिणे ।।43।।
तिहुअण ठवण जिणे पुण, पंचमए विहरमाण जिण छट्ठे ।
सत्तमए सुयनाणं, अट्ठमए सव्वसिद्ध थुई ।।44।।
तित्थाहिव वीरथुई, नवमे दसमे य उज्जयंत थुई ।
अट्ठावयाइ इगदिसि, सुदिट्ठिसुर समरणा चरिमे ।।45।।
नव अहिगारा इह ललियवित्थरावित्तिमाइ अणुसारा ।
तिन्नि सुअ परंपरया, बीओ दसमो इगारसमो ।।46।।
आवस्सय चुण्णीए, जं भणियं सेसया जहिच्छाए ।
तेणं उज्जिंतताइ वि, अहिगारा सुअमया चेव ।।47।।
बीओ सुयत्थयाई, अत्थओ वन्निओ तहिं चेव ।
सक्कथयंते पढिओ, दव्वारिहवसरि पयडत्थो ।।48।।
असढाइण्णऽणवज्जं, गीयत्थ अवारयंति मज्झत्था ।
आयरणावि हु आण त्ति, वयणओ सुबहु मण्णंति ।।49।।
चउ वंदणिज्ज जिण मुणि, सुय सिद्धा इह सुरा य सरणिज्जा ।
चउह जिणा नाम-ठवण-दव्व-भाव जिणभेएणं ।।50।।
नाम जिणा जिण नामा-ठवण जिणा पुण जिणिंद पडिमाओ ।
दव्वजिणा जिण जीवा, भाव जिणा समवसरणत्था ।।51।।

अहिगय जिण पढम थुइ, बीया सव्वाण तइय नाणस्स ।
वेयावच्चगराणं, उवओगत्थं चउत्थ थुइ ।।52।।
पाव खवणत्थ इरियाइ, वंदण वत्तियाइ छ निमित्ता ।
पवयण सुर सरणत्थं, उस्सग्गो इय निमित्तट्ठ ।।53।।
चउ तस्स उत्तरीकरण, पमुह सद्धाइया य पण हेउ ।
वेयावच्चगरत्ताइ, तिन्नि इअ हेउ-बारसगं ।।54।।
अन्नत्थ याइ बारस, आगारा एवमाइया चउरो ।
अगणी पणिंदि-छिंदण, बोही खोभाइ डक्को य ।।55।।
घोडग लय खंभाइ, मालुद्धी निअल सबरि-खलिण-वहू ।
लंबुत्तर थण संजइ, भमुहंगुलि-वायस-कविट्ठो ।।56।।
सिरकंप मूअवारुणि, पेहत्ति चइज्ज दोस उस्सग्गे ।
लंबुत्तर थण संजइ, न दोस समणीण स-वहु सड्ढीणं ।।57।।
इरि उस्सग्ग-पमाणं, पणवीसुस्सास अट्ठ सेसेसु ।
गंभीर-महुर-सद्दं, महत्त्थ-जुत्तं हवइ थुत्तं ।।58।।
पडिक्कमणे चेइय जिमण, चरम पडिक्कमण सुअण पडिबोहे ।
चिइवंदण इय जइणो, सत्त उ वेला अहोरत्ते ।।59।।
पडिक्कमओ गिहिणो विहु सग वेला पंचवेल इयरस्स ।
पूआसु तिसंझासु अ, होइ ति वेला जहन्नेणं ।।60।।
तंबोल पाण भोयणुवाणह मेहुन्न सुअण निट्ठवणं ।
मुत्तुच्चारं जुअं, वज्जे जिणनाह जगइए ।।61।।
इरि नमुक्कार नमुत्थुण-अरिहंत थुइ लोग सव्व थुइ पुक्ख ।
थुइ सिद्धा वेया थुइ-नमुत्थु जावंति थय जयवी ।।62।।
सव्वोवाहि-विसुद्धं, एवं जो वंदए सया देवे ।
देविंद-विंद-महिअं, परम-पयं पावइ लहुं सो ।।63।।

1

चैत्यवंदन भाष्य

वंदित्तु वंदणिज्जे, सव्वे चिइ-वंदणाइ सुवियारं ।
बहुवित्ति भास चुण्णी, सुयाणुसारेण वुच्छामि ।।1।।

शब्दार्थ

वंदित्तु=वंदन करके, **वंदणिज्जे**=वंदनीय, **सव्वे**=सभी/सर्वज्ञों को, **चिइवंदणाइ**=चैत्यवंदन आदि, **सुवियारं**=व्यवस्थित विचार, **बहु**=बहुतसी, **वित्ति**=वृत्ति (टीका), **भास**=भाष्य, **चुण्णी**=चूर्णी, **सुयाणुसारेण**=आगम के अनुसार, **वुच्छामि**=कहता हूँ ।

गाथार्थ

वंदन करने योग्य सर्वज्ञों को वंदन करके अनेक टीका, भाष्य, चूर्णी और आगमों के अनुसार चैत्यवंदन आदि सुविचार कहता हूँ ।

विवेचन

धर्म तीर्थ की स्थापना कर तारक तीर्थंकर परमात्मा जगत् के जीवों पर महान् उपकार करते हैं। जगत् में जो कुछ भी शुभ है, सुख है, वह सब तीर्थंकर परमात्मा का ही प्रभाव है ।

ऐसे असीम उपकारी तारक परमात्मा के उपकार का बदला हम किसी भी हालत में चुका नहीं सकते हैं, ऐसे तारक परमात्मा के प्रति कृतज्ञता भाव अभिव्यक्त करने के लिए उनका दैनिक स्मरण, वंदन आदि करना अपना अनिवार्य कर्तव्य हो जाता है ।

भरत क्षेत्र में साक्षात् तीर्थंकर परमात्मा तो नहीं हैं, अतः उनकी भक्ति का माध्यम जिन प्रतिमा ही है। ऐसे जिनेश्वर परमात्मा के दर्शन-वंदन पूजन संबंधी विस्तृत जानकारी हेतु पूज्य देवेन्द्रसूरिजी म. ने **'चैत्य वंदन भाष्य'** ग्रंथ की रचना की है ।

जिन मंदिर में प्रवेश से लेकर मंदिर से बाहर निकलते समय किन-किन नियमों का पालन करना चाहिए ? उसकी स्पष्ट जानकारी चैत्यवंदन

भाष्य से प्राप्त होती है। अतः प्रत्येक साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविका को इसका स्पष्ट बोध होना ही चाहिए ।

इस सूत्र के बोध के अभाव में जाने-अनजाने जिनमंदिर संबंधी कई आशातनाएँ हो जाती हैं, अतः उन आशातनाओं से बचने के लिए इस सूत्र का व्यवस्थित अभ्यास बहुत जरूरी है ।

मंगलाचरण, विषय, संबंध आदि

ग्रंथ की निर्विघ्न समाप्ति के लिए ग्रंथ के प्रारंभ में इष्टदेव के नमस्कार रूप मंगलाचरण बहुत जरूरी है ।

ग्रंथ के प्रारंभ में मंगल करने से ग्रंथ-रचना में आनेवाले विघ्न दूर हो जाते हैं ।

इस ग्रंथ के प्रारंभ में **'वंदित्तु वंदणिज्जे सव्वे'** सभी वंदनीयों को वंदन करके अथवा वंदन करने योग्य सर्वज्ञों को वंदन करके इस पद के द्वारा सर्वज्ञ भगवंतों को वंदन कर मंगलाचरण किया है ।

'सर्वज्ञ' के अन्तर्गत सभी अरिहंत परमात्मा, सिद्ध भगवंत एवं अन्य सभी केवली भगवंतों का भी समावेश हो जाता है ।

विषय निर्देश :- 'चिइवंदणाइ सु-वियारं' इस पद के द्वारा ग्रंथकार महर्षि ने ग्रंथ के विषय का निर्देश किया है ।

ग्रंथ के प्रारंभ में ग्रंथ के विषय का निर्देश न हो तो पढ़नेवाले की जिज्ञासा शांत नहीं होती है, अतः विषय का निर्देश जरूरी है। विषय का निर्देश होने से जिज्ञासु को ग्रंथ के विषय का ख्याल आ जाता है, इससे ग्रंथ पढ़ने की जिज्ञासा बढ़ती है ।

इस ग्रंथ में चैत्यवंदन आदि सुविचारों का निर्देश है। आदि पद से गुरुवंदन और पच्चक्खाण भाष्य का भी समावेश हो जाता है। इसलिए इस ग्रंथ का नाम 'भाष्य त्रयम्' रखा गया है ।

संबंध :- 'बहु वित्ति भास चुण्णी सुयाणुसारेण' इस पद के द्वारा गुरु परंपरा और आगम परंपरा के संबंध का निर्देश किया है ।

जैन शासन में स्वतंत्र विचार को स्थान नहीं है, जो कुछ भी बोलना-लिखना हो वह जिन आगम के अनुसार ही होना चाहिए। आगम वाणी से विपरीत कुछ भी कथन करना मिथ्यात्व का ही पोषक बनता है। जिनमत के अनुसार कुछ भी बोलने-लिखने में स्व-पर का हित रहा हुआ है ।

श्रुत अर्थात् आगम । ये आगम तीन प्रकार के हैं-

1. आत्मागम :- तीर्थंकर परमात्मा के उपदेश को आत्मागम कहते हैं, क्योंकि वह उपदेश स्वयं उनका है ।

2. अनंतरागम :- तीर्थंकर परमात्मा के मुख से त्रिपदी का श्रवण कर गणधर भगवंत जिस सूत्र की रचना करते हैं, वह अनंतर आगम है। प्रभु के साथ उनका प्रत्यक्ष संबंध होने से बीच में अंतर नहीं है, अतः वह अनंतर आगम है।

3. परंपरागम :- गणधर भगवंतों के बाद में हुए आचार्यों ने गणधर भगवंतों की वाणी के अनुसार जिन सूत्रों की रचना की है, वह सब परंपरागम है।

इन आगम ग्रंथों के पाँच अंग कहलाते हैं, जिसे पंचांगी भी कहा जाता है। आगम को मानना अर्थात् पंचांगी को मानना। मूल सूत्र को स्वीकार करना और उन सूत्रों पर विरचित टीका आदि को स्वीकार नहीं करना, यह कदापि उचित नहीं है।

पंचांगी का स्वरूप

1. सूत्र :- तारक तीर्थंकर परमात्मा अपने केवलज्ञान के बल से जगत् में रहे सभी पदार्थों के सभी पर्यायों को प्रत्यक्ष जानते-देखते हैं और जगत् के जीवों के हित के लिए उसका उपदेश भी देते हैं । प्रभु के उस उपदेश को गणधर भगवंत सूत्र रूप में गूंथते हैं। उसे मूल सूत्र कहा जाता है । 10 से 14 पूर्वधर विरचित ग्रंथ को भी `सूत्र' कहा जाता है ।

2. निर्युक्ति :- सूत्र से संबंधित पदार्थों का नय, निक्षेप, अनुगम आदि द्वारा निरूपण कर सूत्र का स्वरूप समझाया जाता है, उसे निर्युक्ति कहते हैं। निर्युक्ति की गाथाएँ प्राकृत भाषा में होती हैं और उसके रचयिता चौदह पूर्वधर महर्षि होते हैं। वर्तमान में चौदह पूर्वधर महर्षि **भद्रबाहुस्वामीजी** के द्वारा विरचित अनेक निर्युक्तियाँ उपलब्ध हैं ।

3. भाष्य :- सूत्र और निर्युक्ति में जो मुख्य बातें कही हों, उन्हें संक्षेप में स्पष्ट रूप में समझाया जाता है, उसे भाष्य कहते हैं । वर्तमान में **जिनभद्र गणि क्षमाश्रमण** आदि महापुरुषों के द्वारा कई आगम ग्रंथों पर विरचित भाष्य उपलब्ध हैं ।

4. चूर्णि :- सूत्र, निर्युक्ति और भाष्य में कहे गए पदार्थों को स्पष्ट रूप से समझाया जाता है, उसे चूर्णि कहते हैं। चूर्णि मुख्यतया प्राकृत भाषा में होती है, कहीं-कहीं पर संस्कृत भाषा का मिश्रण भी देखने को मिलता है।

5. वृत्ति :- सूत्र, निर्युक्ति, भाष्य और चूर्णि आदि को लक्ष्य में रखकर उनमें रहे पदार्थों के विशेष स्पष्टीकरण के लिए अनेक ज्ञानी महापुरुषों ने आगम ग्रंथों पर अनेक टीकाएँ रची हैं ।

सूत्र, निर्युक्ति आदि सभी प्रमाणभूत हैं, अत: उनमें कही बातों का स्वीकार होना ही चाहिए ।

वर्तमान में विद्यमान सभी आगम ग्रंथों पर निर्युक्ति, भाष्य आदि उपलब्ध नहीं हैं । काल के प्रभाव से जैनागम संबंधी बहुतसा सूत्रांश नष्ट हो चुका है, फिर भी जो कुछ बचा है, उसके संरक्षण के लिए हमारा प्रयास होना ही चाहिए ।

वर्तमान में विद्यमान आगम पंचांगी

मूल	आगम	वृत्ति गाथा प्रमाण	वृत्तिकार	मूल गाथा प्रमाण	निर्युक्ति	भाष्य	चूर्णि
1.	आचार	12000	शीलांकाचार्य	2554	450	—	8300
2.	सूत्रकृत	12850	,,	2100	265	—	9900
3.	स्थान	14250	अभयदेवसूरि	3700	—	—	—
4.	समवाय	3575	अभयदेवसूरि	1667	—	—	—
5.	भगवती	18616	अभयदेवसूरि	—	—	—	3114
6.	ज्ञाताधर्मकथा	3800	अभयदेवसूरि	—	—	—	—
7.	उपासकदशा	800	अभयदेवसूरि	812	—	—	—
8.	अंतकृत दशा	400	अभयदेवसूरि	900	—	—	—
9.	अनुत्तरोपपातिक	100	अभयदेवसूरि	192	—	—	—
10.	प्रश्नव्याकरण	5630	अभयदेवसूरि	1300	—	—	—
11.	विपाकश्रुत	900	अभयदेवसूरि	1250	—	—	—
12.	औपपातिक	3125	अभयदेवसूरि	1167	—	—	—
13.	राजप्रश्नीय	3700	मलयगिरिसूरि	2120	—	—	—
14.	जीवाभिगम	14000	मलयगिरिसूरि	4700	—	—	1500
15.	प्रज्ञापना	16000	मलयगिरिसूरि	7787	—	—	—
16.	सूर्यप्रज्ञप्ति	9000	मलयगिरिसूरि	2296	—	—	—

मूल	आगम	वृत्ति गाथा प्रमाण	वृत्तिकार	मूल गाथा प्रमाण	निर्युक्ति	भाष्य	चूर्णि
17.	चंद्रप्रज्ञप्ति	9100	मलयगिरिसूरि	2300	—	—	—
18.	जंबुद्वीप प्रज्ञप्ति	18000	शांतिचंद्र उपा.	4454	—	—	—
19.	निरयावलिका	600	चंद्रसूरि	1100	—	—	—
20.	कल्पावतंसिका	—	—	—	—	—	—
21.	पुष्पिता	—	—	—	—	—	—
22.	पुष्पचूलिका	—	—	—	—	—	—
23.	वण्हि दशा	—	—	—	—	—	—
24.	चतु:शरण	200	—	80	—	—	—
25.	आतुर प्रत्याख्यान	150	—	100	—	—	—
26.	महाप्रत्याख्यान	176	—	176	—	—	—
27.	भक्त परिज्ञा	215	—	215	—	—	—
28.	तंदुलवैचारिक	500	—	500	—	—	—
29.	संस्तारक	110	—	155	—	—	—
30.	गच्छाचार	1560	—	175	—	—	—
31.	गणिविद्या	105	—	105	—	—	—
32.	देवेन्द्रस्तव	375	—	375	—	—	—
33.	मरण समाधि	837	—	837	—	—	—
34.	निशीथ	—	—	821	—	7500	28000
35.	बृहत्कल्प	42600	—	473	—	7600	16000
36.	व्यवहार	34000	—	373	—	6400	1200
37.	दशाश्रुतस्कंध	—	—	896	180	—	2225
38.	जीत कल्प	—	—	130	—	3125	1000
39.	महानिशीथ	—	—	4548	—	—	—
40.	आवश्यक	22000	हरिभद्रसूरि	130	2500	483	18500
41.	ओघनिर्युक्ति	7500	द्रोणाचार्य	—	1355	332	—
42.	दशवैकालिक	7000	हरिभद्रसूरि	835	500	63	7000
43.	उत्तराध्ययन	16000	शांतिसूरि	2000	700	—	5850

मूल	आगम	वृत्ति गाथा प्रमाण	वृत्तिकार	मूल गाथा प्रमाण	निर्युक्ति	भाष्य	चूर्णि
44.	नंदी	7732	मलयगिरि	700	—	—	1500
45.	अनुयोगद्वार	5900	मल्लधारी हेमचन्द्रसूरि	2000	—	—	2265

अंग, उपांग, प्रकीर्णक और चूलिका रूप 35 आगमों पर भाष्य उपलब्ध नहीं हैं, 7 आगमों पर ही निर्युक्ति उपलब्ध है ।

संपूर्ण पंचांगी एक मात्र आवश्यक सूत्र पर है ।

निर्युक्तियों के कर्ता **श्री भद्रबाहुस्वामी** हैं ।

भाष्य के कर्ता **संघदास गणि, जिनभद्रगणि** क्षमाश्रमण और **सिद्धसेन** गणि हैं ।

चूर्णिकार के रूप में **जिनदासगणि** महत्तर प्रसिद्ध हैं ।

चैत्य वंदन :- यद्यपि चैत्य शब्द के अनेक अर्थ होते हैं, परंतु यहाँ चैत्य शब्द का अर्थ जिनमंदिर और जिनप्रतिमा समझने का है ।

जिस स्थान पर तारक तीर्थंकर परमात्मा का निर्वाण हुआ हो, वहाँ उनकी चिता के स्थान पर जो स्तूप, स्मारक, पादुका या प्रतिमा आदि का निर्माण किया जाता है, उसे चैत्य कहा जाता है ।

मंदिर और प्रतिमा में चैत्य शब्द सार्थक है । इन दोनों की भक्ति के द्वारा हम तारक तीर्थंकर परमात्मा के प्रति अपना विनय भाव प्रदर्शित करते हैं ।

इस जगत् में जो कुछ शुभ है, वह सब तारक तीर्थंकर परमात्मा का ही प्रभाव है । उन्होंने ही जगत् को कल्याण का मार्ग बतलाया है, अतः ऐसे तारक परमात्मा की जितनी भक्ति करें, उतनी कम है ।

तारक परमात्मा की भक्ति कैसे करनी चाहिए ? इस संदर्भ में वादिवेताल श्री शांतिसूरिजी म. ने **'चेइयवंदण भास'** नाम के विशाल ग्रंथ की रचना की थी, उसी ग्रंथ के आधार पर पू. देवेन्द्रसूरिजी म. ने **'चैत्यवंदन भाष्य'** नाम के इस ग्रंथ की रचना की है, जिसमें उन्होंने जिन मंदिर संबंधी सारी विधियों के पालन के लिए सुंदर मार्गदर्शन दिया है ।

मुख्य द्वार एवं प्रति द्वार

दह तिग अहिगम पणगं, दुदिसि तिहुग्गह तिहा उ वंदणया ।
पणिवाय नमुक्कारा, वन्ना सोलय सीयाला ॥2॥
इग सीइसयं तु पया, सगनउई संपया उ पण दंडा ।
बार अहिगार चउ वंदणिज्ज, सरणिज्ज चउह जिणा ॥3॥
चउरो थुई निमित्तट्ठ, बार हेउ अ सोल आगारा,
गुणवीस दोस उस्सग्ग, माण थुत्तं च सग वेला ॥4॥
दस आसायण चाओ, सव्वे चिइवंदणाइ ठाणाइं ।
चउवीस दुवारेहिं, दुसहस्सा हुंति चउसयरा ॥5॥

शब्दार्थ

दहतिग=दशत्रिक, **अहिगम पणगं**=अभिगम पंचक, **दुदिसि**=दो दिशा, **तिहुग्गह**=तीन अवग्रह, **तिहा**=तीन प्रकार, **उ**=और, **वंदणया**=वंदन, **पणिवाय**=प्रणिपात, **नमुक्कारा**=नमस्कार, **वन्ना**=वर्ण, **सोलसय सियाला**=सोलहसौ छियालीस ॥2॥

इगसीइसयं=एकसौ इक्यासी, **तु**=तथा, **पया**=पद, **सगनउई**=सत्तानवे, **संपया**=संपदा, **उ**=तथा, **पण दंडा**=पांच दंडक, **बार अहिगार**=बारह अधिकार, **चउ वंदणिज्ज**=चार वंदनीय, **सरणिज्ज**=स्मरण, **चउह जिणा**=चार जिन ॥3॥

चउरो=चार, **थुई**=स्तुतियाँ, **निमित्त**=निमित्त, **अट्ठ**=आठ, **बार**=बारह, **हेउ**=हेतु, **सोल आगारा**=सोलह आगार, **गुणवीस**=उन्नीस, **दोस**=दोष, **उस्सग्ग-माण**=कायोत्सर्ग का प्रमाण, **थुत्तं**=स्तवन, **च**=और, **सग**=सात, **वेला**=बार ॥4॥

दस आसायण=दश आशातना, **चाओ**=त्याग, **सव्वे**=सभी, **चिइ वंदणाइ**=चैत्यवंदन आदि, **ठाणाइं**=स्थान, **चउवीस**=चौबीस, **दुवारेहिं**=द्वारों द्वारा, **दुसहस्स**=दो हजार, **हुंति**=होते हैं, **चउसयरा**=चौहत्तर ॥5॥

गाथार्थ

दश त्रिक, पाँच अभिगम, दो दिशा, तीन प्रकार के अवग्रह, तीन प्रकार की वंदना, प्रणिपात, नमस्कार, सोलहसौ सुड़तालीस अक्षर ।।2।।

एक सौ इक्यासी पद, सत्तानवे संपदाएँ, पाँच दंडक, बारह अधिकार, चार वंदन करने योग्य, एक स्मरण करने योग्य, चार प्रकार के जिनेश्वर भगवंत ।।3।।

चार स्तुति, आठ निमित्त, बारह हेतु, सोलह आगार, उन्नीस दोष, कायोत्सर्ग का प्रमाण, स्तवन सात बार ।।4।।

दश आशातनाओं का त्याग, इस प्रकार चौबीस द्वारों का आश्रय करने पर चैत्यवंदन के सभी स्थान 2074 होते हैं ।

विवेचन

चैत्यवंदन भाष्य में जो-जो विषय समझाने के हैं, उन सब का निर्देश इन गाथाओं में किया गया है । इस ग्रंथ में मुख्य 24 द्वारों का और 2074 प्रतिद्वारों का वर्णन है ।

द्वार का नाम	कुल संख्या
10 त्रिक	30
5 अभिगम	5
2 दिशिस्थिति	2
3 अवग्रह	3
3 वंदना	3
1 प्रणिपात	1
1 नमस्कार	1
1647 अक्षर	1647
181 पद	181
97 संपदा	97
5 दंडक	5
12 अधिकार	12
4 वंदनीय	4
1 स्मरणीय	1

द्वार का नाम	कुल संख्या
4 जिनेश्वर	4
4 स्तुति	4
8 निमित्त	8
12 हेतु	12
16 आगार	16
19 कायोत्सर्ग दोष	19
1 कायोत्सर्ग प्रमाण	1
1 स्तवन	1
7 चैत्यवंदन	7
10 आशातना त्याग	10
कुल	**2074**

10 त्रिक के नाम

तिन्नि निसीही तिन्नि उ, पयाहिणा तिन्नि चेव य पणामा ।
तिविहा पूया य तहा, अवत्थतिय भावणं चेव ।।6।।
ति दिसि निरिक्खण विरइ, पय भूमि पमज्जणं च तिक्खुत्तो ।
वन्नाइ तियं मुद्दा-तियं च तिविहं च पणिहाणं ।।7।।

शब्दार्थ

तिन्नि=तीन, **निसीहि**=निसीहि, **पयाहिणा**=प्रदक्षिणा, **पणामा**=प्रणाम, **तिविहा**=तीन प्रकार की, **पूया**=पूजा, **य तहा**=और, **अवत्थतियभावणं**=अवस्थात्रिक भावना, **चेव**=और ।।6।।

तिदिसि=तीन दिशा, **निरिक्खण**=देखना, **विरइ**=त्याग, **पयभूमि**=पैर रखने की जगह, **पमज्जणं**=प्रमार्जन, **तिक्खुत्तो**=तीन बार, **वन्नाइ**=वर्ण आदि, **तियं**=त्रिक, **मुद्दातियं**=मुद्रात्रिक, **तिविहं**=तीन प्रकार का, **पणिहाणं**=प्रणिधान ।।7।।

गाथा :- तीन निसीहि, तीन प्रदक्षिणा, तीन प्रणाम, तीन प्रकार की पूजा और तीन अवस्थाओं का चिंतन ।।6।।

तीन दिशाओं के निरीक्षण का त्याग, तीन बार पैर की भूमि का प्रमार्जन, वर्ण आदि तीन, तीन प्रकार की मुद्रा और तीन प्रकार के प्रणिधान ।

तीन निसीहि

घर जिणहर जिणपूआ, वावारच्चायओ निसीहि तिगं ।
अग्गद्दारे मज्झे तइया, चिइवंदणा समए ।।8।।

शब्दार्थ

घर=गृह, **जिणहर**=जिनमंदिर, **जिणपूआ**=जिनपूजा, **वावारच्चायओ** =प्रवृत्ति त्याग, **निसीहि तिगं**=निसीहि त्रिक, **अग्गद्दारे**=अग्रद्वार पर, **मज्झे**=बीच में, **तइया**=तीसरी, **चिइवंदणा**=चैत्यवंदन, **समए**=समय में ।

गाथार्थ :- जिनमंदिर के मुख्य द्वार, मध्य में और चैत्यवंदन करते समय अपने घर संबंधी, मंदिर संबंधी और जिनपूजा संबंधी प्रवृत्ति के त्याग रूप तीन निसीहि बोली जाती है ।

विवेचन

काया को वश करना तो भी आसान है, क्योंकि वह स्थूल है । वचन को वश करना भी सरल है, परंतु सबसे अधिक कठिन साधना तो मन को वश करने की है । अध्यात्म की साधना में सबसे अधिक महत्त्व मन का ही है ।

काया को साधना में जोड़ दिया, परंतु मन नहीं जुड़ा तो उस साधना का मूल्य ही क्या है ?

आश्चर्य है कि पाप की प्रवृत्ति सबसे पहले मन में होती है, जबकि धर्म की प्रवृत्ति सबसे पहले काया में होती है । काया को धर्म में जोड़ना आसान है परंतु मन को धर्म में जोड़ना कठिन है ।

जिनमंदिर में प्रभुदर्शन व पूजन की आराधना-साधना में काया के साथ जब तक मन न जुड़े, तब तक वह आराधना अपूर्ण ही है ।

प्रभुदर्शन और प्रभु-पूजन यह कोई सामान्य साधना नहीं है । कुछ समय के लिए संसार के साथ अपना संबंध तोड़कर प्रभु के साथ अपना संबंध जोड़ने की यह साधना है ।

जिस प्रकार एक म्यान में दो तलवारें नहीं रह सकतीं, एक गुफा में दो केसरी सिंह नहीं रह सकते, उसी प्रकार एक ही मन में एक साथ राम (प्रभु) व काम (संसार) की प्रतिष्ठा नहीं हो सकती, अतः प्रभु के साथ संबंध जोड़ना है तो मन में से काम (संसार) को बाहर निकालना ही होगा।

(1) निसीहि त्रिक

दशत्रिक में सर्व **प्रथम त्रिक 'निसीहि त्रिक'** है। जिनमंदिर में अलग-अलग तीन स्थानों में निसीहि शब्द का उच्चारण कर मन, वचन और काया की कुछ प्रवृत्तियों का निषेध किया जाता है।

तीन बार निसीहि द्वारा उत्तरोत्तर अधिक वस्तु का त्याग किया जाता है।

1) जिन मंदिर के मुख्य प्रवेश द्वार पर **सर्व प्रथम 'निसीहि'** बोली जाती है। इस **'निसीहि'** के द्वारा प्रभु भक्ति के अतिरिक्त अन्य सभी सांसारिक, सामाजिक व व्यापार संबंधी प्रवृत्तियों का सर्वथा त्याग किया जाता है। मंदिर के मुख्य द्वार में प्रवेश करने के बाद अपनी नजर में से संसार हट जाना चाहिए। अपने मन, वचन और काया को एक मात्र जिनमंदिर संबंधी प्रवृत्ति में जोड़ना चाहिए। निसीहि बोलने के बाद भी यदि मंदिर में संसार संबंधी प्रवृत्ति करे तो 'निसीहि' की मर्यादा का भंग होता है।

2) दूसरी बार निसीहि :– अष्ट प्रकारी पूजा की सामग्री तैयार करने के बाद जब भक्त श्रावक प्रभुजी के गर्भ द्वार में पूजा के लिए प्रवेश करता है, तब उसे दूसरी बार निसीहि कहना चाहिए। इस निसीहि के द्वारा वह **'जिन मंदिर संबंधी प्रवृत्तियों का त्याग करता है'** अर्थात् उसकी साधना के केन्द्र में अब जिन-मंदिर न रहा, बल्कि एक मात्र-प्रभु प्रतिमा ही रही। द्रव्य पूजा में साधक को अपना ध्यान प्रभु-प्रतिमा पर ही केन्द्रित करना होता है।

3) तीसरी बार निसीहि :– प्रभु की अष्ट प्रकारी पूजा अर्थात् द्रव्य पूजा की समाप्ति के बाद भावपूजा में प्रवेश के पूर्व तीसरी बार निसीहि कहना होता है। इस निसीहि के द्वारा द्रव्य पूजा का भी त्याग कर दिया जाता है और अपने मन को एक मात्र भावपूजा अर्थात् प्रभु के गुण-गान-स्तवना आदि में जोड़ना होता है।

भावपूजा करते समय अपना मन द्रव्यपूजा में नहीं होना चाहिए। द्रव्य पूजा से भाव पूजा उत्तरोत्तर श्रेष्ठ है, अतः ऊपर की भूमिका में पहुँचने के बाद नीचे की भूमिका की प्रवत्ति नहीं होनी चाहिए।

चैत्यवंदन करते समय बीच में से उठकर प्रभु-प्रक्षाल आदि के लिए नहीं जाना चाहिए। तीसरी बार निसीहि बोलने के बाद एक मात्र प्रभु के चैत्यवंदन, स्तवन, स्तुति, कायोत्सर्ग आदि की ही छूट रहती है।

मन, वचन और काया की प्रवृत्ति के निषेध का सूचन करने के लिए उपरोक्त तीन स्थानों पर तीन-तीन बार भी निसीहि बोली जाती है।

साधु-साध्वी एवं पौषधव्रतधारी के लिए द्रव्य पूजा का सर्वथा निषेध होने से उन्हें मुख्य द्वार में प्रवेश करते समय एक या तीन बार निसीहि बोलने का विधान है। इस निसीहि के द्वारा वे शेष मुनिचर्या व पौषधचर्या का त्याग करते हैं। परंतु मंदिर संबंधी उपदेश की छूट होती है। रंग मंडप में प्रवेश करते समय दूसरी बार निसीहि कहते हैं, जिससे मंदिर संबंधी उपदेश का निषेध किया जाता है। तीसरी बार निसीहि चैत्यवंदन के प्रारंभ में बोली जाती है।

(2) प्रदक्षिणा त्रिक

जिनमंदिर में प्रवेश के बाद पहली बार निसीहि कहने के बाद मूलनायक प्रभु के दाहिने हाथ से चारों ओर तीन प्रदक्षिणा की जाती है। ज्ञान-दर्शन और चारित्र रूपी रत्नत्रयी की प्राप्ति के लिए ये तीन प्रदक्षिणाएँ दी जाती हैं। कई मंदिरों में चारों ओर जिन प्रतिमाएँ भी होती हैं, प्रदक्षिणा द्वारा उनके भी दर्शन-वंदन करते हैं।

शिखरबद्ध जिनालय की अन्य तीन दिशाओं में तीन मंगल-मूर्ति भी होती हैं, उनके दर्शन कर समवसरण की भी कल्पना की जा सकती है।

(3) प्रणाम त्रिक

अंजलिबद्धो अद्धोणओ अ पंचंगओ अ ति पणामा।
सव्वत्थ वा ति वारं सिराइ नमणे पणाम तियं ॥9॥

शब्दार्थ

अंजलिबद्धो=अंजलिपूर्वक, **अद्धोणओ**=अर्धावनत, **पंचंगओ**=पाँच अंगों से, **तिपणाम**=तीन नमस्कार, **सव्वत्थ**=सर्वत्र, **वा**=अथवा, **तिवारं**=तीन बार,

सिराइ नमणे=मस्तक आदि के झुकाने से, **पणाम तियं**=प्रणाम त्रिक ।

भावार्थ :- अंजलि सहित प्रणाम, अर्धावनत प्रणाम और पंचांग प्रणाम ये तीन प्रणाम हैं अथवा भूमि आदि पर तीन बार मस्तक आदि को झुकाने से भी तीन प्रकार के प्रणाम होते हैं ।

विवेचन

प्रणाम अर्थात् प्रकृष्ट भाव से प्रभु को नमन ।

यद्यपि परमात्मा हर भूमिका में सर्वत्र आदर पात्र है, फिर भी भिन्न-भिन्न स्थानों में प्रभु को अलग-अलग प्रकार से नमन किया जाता है ।

1) अंजलिबद्ध प्रणाम :- जिनमंदिर में प्रवेश करते समय जैसे ही दूर से प्रभु के दर्शन होते हैं, त्योंही हाथ जोड़कर मस्तक झुकाकर **'नमो जिणाणं'** बोलते हुए प्रभु को नमस्कार किया जाता है, इस नमस्कार को अंजलिबद्ध प्रणाम कहा जाता है ।

जिस प्रकार बीच मार्ग में गुरु भगवंत के दर्शन हों तो उन्हें हाथ जोड़कर **'मत्थएण वंदामि'** कहकर प्रणाम किया जाता है, उसी प्रकार दूर से ही मन्दिर की ध्वजा दिखाई देने पर अथवा मंदिर में प्रवेश करने से दूर से ही प्रभु के दर्शन होने पर हाथ जोड़कर मस्तक झुकाते हुए **'नमो जिणाणं'** कहकर नमस्कार किया जाता है ।

2) अर्द्धावनत प्रणाम :- जिन मंदिर में तीन प्रदक्षिणा देने के बाद जब भक्त आत्मा प्रभु के गर्भ-गृह (गंभारे) के नजदीक पहुँचती है तो उसे निकट से प्रभु के दर्शन होते हैं । प्रभु के निकट से दर्शन होने के साथ ही उसका हृदय आनंद से झूम उठता है । भक्ति के भाव से उसका हृदय झुक पड़ता है, बस, प्रभु के प्रति अपने दिल में रहे 'अहो भाव' को व्यक्त करने के लिए ही वह भक्त अपने शरीर के आधे अंग को झुकाकर नमस्कार करता है, उसे **अर्द्धावनत** प्रणाम कहते हैं ।

3) पंचांग प्रणिपात प्रणाम :- द्रव्य पूजा के माध्यम से भक्त प्रभु के नैकट्य का अनुभव करता है । ज्यों-ज्यों भक्त प्रभु के समीप पहुँचता है, त्यों- त्यों उसे प्रभु के अंतरंग-गुण स्वरूप का भी ख्याल आता जाता है । जगत् में ऐसा कोई गुण नहीं है, जो प्रभु में न हो । इसके साथ ही प्रभु सर्व दोषों

से मुक्त बने हुए हैं। प्रभु के ऐसे गुण स्वरूप के बोध के बाद भक्त हृदय प्रभु के चरणों में समर्पित हुए बिना नहीं रहता है।

पंचांग प्रणिपात अर्थात् दो हाथ, दो घुटने और मस्तक इन पाँचों अंगों को भूमि पर स्पर्श कराते हुए नमस्कार करना।

पंचांग प्रणिपात के माध्यम से अपने मस्तक को प्रभु चरणों में झुकाते हुए भक्त अपने हृदय में रहे प्रभु-समर्पण के भावों को अभिव्यक्त करता है अर्थात् ``हे प्रभो ! आपके चरणों में यह मस्तक झुकाकर मैं अपने जीवन का सर्वस्व आपके चरणों में अर्पण करता हूँ।''

उपर्युक्त कहे गए तीन प्रकार के प्रणाम में से कोई भी प्रणाम करते समय प्रथम मस्तक को झुकाकर अपनी अंजलि को मस्तक सन्मुख दक्षिणा-वर्त-मंडलाकार घुमाना, इस प्रकार तीन बार अंजलि भ्रमणपूर्वक तीन बार मस्तक झुकाना उसे भी तीन प्रकार के प्रणाम समझना चाहिए।

विशेष सूचना :- स्त्रियाँ जब अंजलिबद्ध प्रणाम करें तब उन्हें हाथ ऊँचाकर मस्तक पर लगाने की आवश्यकता नहीं है। परंतु छाती समक्ष ही तीन बार अंजलि भ्रमणकर मस्तक झुकाना चाहिए।

'शक्र स्तव' आदि बोलते समय भी स्त्रियों को अपने हाथ मस्तक पर लगाने की आवश्यकता नहीं है।

(4) पूजा त्रिक

अंगग्ग भाव भेया, पुप्फाहारत्थूईहिं पूय तिगं।
पंचुवयारा अट्ठोवयार सव्वोवयारा वा ॥10॥

शब्दार्थ

अंगग्ग=अंग और अग्र, **भाव**=भावपूजा, **भेया**=भेद से, **पुप्फाहार**=पुष्प नैवेद्य, **थूईहिं**=स्तुति द्वारा, **पूय तिगं**=पूजा त्रिक, **पंचुवयारा**=पंचोपचारी, **अट्ठोवयार**=अष्टोपचारी, **सव्वोवयारा**=सर्वोपचारी पूजा, **वा**=अथवा।

भावार्थ :- अंग, अग्र और भाव के भेद से पुष्प, आहार और स्तुति द्वारा तीन प्रकार की पूजा अथवा पंचोपचारी, अष्टोपचारी और सर्वोपचारी के भेद से तीन प्रकार की पूजा है।

विवेचन

जो पूजा प्रभु के शरीर-अंग पर की जाती है अथवा जिस पूजा में प्रभु के शरीर का स्पर्श होता है, उसे अंग पूजा कहते है। यहाँ गाथा में दृष्टांत के रूप में पुष्प का निर्देश किया है, परंतु पुष्प के साथ प्रभु के शरीर पर रहे हुए निर्माल्य (गत दिन की आंगी-फूल आदि) को दूर करना मोरपींछी से प्रभु के देह को साफ करना, दूध, दही, घी, शक्कर व पानी रूप पंचामृत से प्रभु का अभिषेक करना, प्रभु के अंगूठे पर कुसुमांजलि अर्पित करना, अंगलूछने से प्रभु के देह को साफ करना, केसर-चंदन से प्रभु के नौ अंगों पर पूजा करना, पुष्प-पूजा करना, आंगी बनाना, कस्तूरी आदि से प्रभु के देह पर पत्र आदि की रचना करना, मुकुट पहिनाना, वस्त्र पहिनाना आदि, आदि अंगपूजा रूप हैं।

2) अग्रपूजा :- प्रभु के गर्भद्वार से बाहर खड़े रहकर या बैठकर जो पूजा की जाती है, उसे अग्र पूजा कहते हैं। यहाँ मूल गाथा में अग्र पूजा के दृष्टांत में आहार का निर्देश किया है, यहाँ आहार के उपलक्षण से धूप पूजा करना, दीपक पूजा, चावल से अष्ट मंगल का आलेखन करना, फूल का पगर रखना, अशन-पान-खादिम और स्वादिम रूप चार प्रकार नैवेद्य रखना, उत्तम प्रकार के फल रखना, गीतगान करना, नृत्य करना, वाद्य यंत्र बजाना, आरती व मंगल दीप उतारना आदि का समावेश अग्र पूजा में होता है।

3) भाव पूजा :- द्रव्य पूजा की समाप्ति के बाद प्रभु समक्ष जो चैत्यवंदन-स्तुतिगान किया जाता है, उसे भाव पूजा कहते हैं।

1. पंचोपचारी पूजा :- गंध (चंदन आदि) पुष्प, वासक्षेप, धूप और दीप द्वारा अथवा कुछ आचार्यों के मत से पुष्प, अक्षत, गंध, धूप और दीप को पंचोपचारी अर्थात् पाँच प्रकार की पूजा कहते हैं।

2. अष्टोपचारी पूजा :- पुष्प, अक्षत, गंध, दीप, धूप, नैवेद्य, फल और जल इन आठ प्रकार के द्रव्यों से जो पूजा की जाती है, उसे अष्टोपचारी पूजा कहते हैं।

3. सर्वोपचारी पूजा :- पूजा योग्य सभी प्रकार की उत्तम वस्तुओं से प्रभु की पूजा करना, उसे सर्वोपचारी पूजा कहते हैं। 17, 21, 64 व 99 इत्यादि सभी प्रकार की पूजाओं का समावेश सर्वोपचारी पूजा में होता है।

अथवा अंग, अग्र व भाव इन तीनों प्रकार से प्रभु की पूजा करना उसे भी सर्वोपचारी पूजा कहते हैं ।

पूजा का फल

1. विघ्नोपशामिका :- अंग पूजा का फल विघ्नों की शांति है अर्थात् साधना मार्ग में आनेवाले विघ्नों को शांत करने के लिए प्रभु की अंगपूजा की जाती है, अंग पूजा का दूसरा नाम **विघ्नोपशामिका** है ।

2. अभ्युदय साधनी :- अग्र पूजा का फल अभ्युदय प्राप्ति है । अभ्युदय प्राप्ति के लिए अग्रपूजा करनी चाहिए । अग्र पूजा का दूसरा नाम **अभ्युदयसाधनी** है ।

3. निवृत्तिकारिणी :- चैत्यवंदनादि भावपूजा आत्मा को निवृत्ति अर्थात् मोक्ष प्रदान करनेवाली है । जिसे मोक्ष चाहिए उसे भावपूजा अवश्य करनी चाहिए । भावपूजा का दूसरा नाम **निवृत्तिकारिणी** है ।

(5) अवस्था चिंतन त्रिक

भाविज्ज अवत्थतियं, पिंडत्थ-पयत्थ-रूव रहियत्तं ।
छउमत्थ केवलित्तं, सिद्धत्तं चेव तस्सत्थो ।।11।।

न्हवणच्चगेहिं छउमत्थ-ऽवत्थ पडिहारगेहिं केवलियं ।
पलियंकुस्सग्गेहि अ, जिणस्स भाविज्ज सिद्धत्तं ।।12।।

शब्दार्थ

भाविज्ज=भावना करे, **अवत्थतियं**=अवस्थात्रिक, **पिंडत्थ**=पिंडस्थ, **पयत्थ**=पदस्थ, **रूवरहियत्तं**=रूपरहित (रूपातीत), **छउमत्थ**=छद्मस्थ, **केवलित्तं**=केवलीपना, **सिद्धत्तं**=सिद्धपना, **चेव**=निश्चय से, **तस्सत्थो**=उसका अर्थ **।।11।।**

न्हवणच्चगेहिं=स्नान और पूजा करानेवाले के द्वारा, **छउमत्थ**=छद्मस्थ, **वत्थ**=अवस्था, **पडिहारगेहिं**=प्रातिहार्यों द्वारा, **केवलियं**=केवली अवस्था, **पलियंकुस्सग्गेहि**=पर्यंकासन और कायोत्सर्ग द्वारा, **अ**=तथा, **जिणस्स**=जिनेश्वर भगवंत की, **भाविज्ज**=भावना करे, **सिद्धत्तं**=सिद्धावस्था ।

भावार्थ :- पिंडस्थ, पदस्थ और रूपरहितपने की तीन अवस्थाओं का चिंतन करना चाहिए । उन तीनों का अर्थ क्रमशः छद्मस्थ केवली व सिद्धपना है ।।11।।

जिनेश्वर भगवंतों को स्नान करानेवाले और पूजा करानेवालों के द्वारा छद्मस्थ अवस्था, प्रातिहार्यों के द्वारा केवली अवस्था और पर्यंकासन और कायोत्सर्ग अवस्था द्वारा सिद्धावस्था का चिंतन करना चाहिए ।

विवेचन

भूतकाल में अपने जीवन में हुई सांसारिक घटनाओं (लग्न स्वीकार, पुत्र-प्राप्ति, धन-प्राप्ति, सम्मान-प्राप्ति) को याद करने से तो सिर्फ कर्मबंध ही होनेवाला है, जबकि जगत्पति तारक तीर्थंकर परमात्मा की जन्म से लेकर निर्वाण तक की प्रत्येक अवस्था का चिंतन अपनी आत्मा के लिए एकांत लाभकारी है ।

द्रव्य पूजा की समाप्ति के बाद जिन प्रतिमा में रहे अष्ट प्रातिहार्य का निरीक्षण करते हुए परमात्मा की विविध अवस्थाओं का चिंतन करना चाहिए । इस चिंतन से अपना मन प्रभुमय बनता है और परम आनंद की अनुभूति होती है ।

अवस्थात्रिक

पिंडस्थ **पदस्थ** **रूपातीत**

जन्म अवस्था राज्य अवस्था श्रमणावस्था

1. पिंडस्थ अवस्था :- पिंड अर्थात् शरीर । प्रभु के देह संबंधी अवस्था का चिंतन इसमें मुख्य होने से इसे पिंडस्थ अवस्था कहते हैं । इस अवस्था में प्रभु की जन्म आदि अवस्था का चिंतन किया जाता है ।

A. जन्म अवस्था :- परिकर में हाथी पर बैठे हुए देवता तथा सूंड में कलश लेकर अभिषेक करते हुए हाथियों को देखकर प्रभु की जन्मावस्था का चिंतन करना चाहिए ।

हे तारक परमात्मा ! सामान्य मानव और आपके जन्म में कितना बड़ा अंतर है ! सामान्य मानव का जन्म होता है, उस समय उसे और उसकी माता को भयंकर पीड़ा का अनुभव होता है । जन्म देनेवाली माता को भी

असह्य पीड़ा होती है, उसे भी दिन में तारे दिखाई देने लगते हैं। जन्म लेनेवाला बालक भी अपने जीवन का प्रारंभ रुदन से करता है। जबकि हे तारक परमात्मा ! आप माँ के गर्भ में आते हो, तब माता को अपूर्व चौदह स्वप्नों के दर्शन होते हैं। आपका मध्यरात्रि में जब जन्म होता है, तब सर्वत्र प्रकाश फैल जाता है। सातों नरकों में भी प्रकाश छा जाता है। उस समय न तो आपको लेश भी पीड़ा का अनुभव होता है और न ही जन्म देनेवाली माता को दु:ख का अनुभव होता है, इसके बजाय जगत् में रहे हुए जीव मात्र को परम शाता की अनुभूति होती है।

हे परमात्मन् !

आपके जन्म के साथ ही 56 दिक्कुमारिकाओं के आसन कंपित हो जाते हैं और वे आकर सूति कर्म करती हैं। आपके जन्म के साथ ही इन्द्र का अचल सिंहासन भी कंपित हो जाता है। 32 लाख विमान का अधिपति इन्द्र भी तत्क्षण अपने सिंहासन से नीचे उतरकर, 7-8 कदम उस दिशा में आगे बढ़कर **'शक्रस्तव'** के माध्यम से आपकी स्तवना करता है। तत्पश्चात् वह इन्द्र आपके पास आकर आपको एवं आपकी माता को नमस्कार करता है। इन्द्र स्वयं पाँच रूप करके आपको मेरु पर्वत पर ले जाता है और वहाँ असंख्य देवता व अन्य 63 इंद्रों के साथ आपका जन्माभिषेक महोत्सव करता है। एक करोड 60 लाख कलशों से देवतागण आपका अभिषेक कर सचमायने में तो वे अपने आपको ही पवित्र बनाते हैं।

हे प्रभो !

जन्म से ही आपको इतना अधिक मान-सम्मान मिलने पर भी, उस मान-सम्मान में आपको कहीं आसक्ति नहीं होती है। आप सदैव ही जल में कमल की भाँति निर्लेप रहते हो।

धन्य हो आपके इस अनासक्त भाव को।

B. राज्यावस्था :- परिकर में हाथ में मालाएँ लेकर खड़े देवताओं को देखकर प्रभुकी राज्य अवस्था का चिंतन करना चाहिए।

हे प्रभो !

राजकुल में आपका जन्म हुआ। जन्म से ही आपको विपुल राज्य

संपत्ति की प्राप्ति हुई । परंतु आपको उस भौतिक वैभव में कोई रस नहीं था ।

एक मात्र अपने भोगावली कर्मों को खपाने के लिए ही आपने राज्यसत्ता और लग्न-जीवन का स्वीकार किया था । राज्य सत्ता को स्वीकार करते हुए भी आपको राज्य सत्ता के वैभव में कोई रस नहीं था । लग्न-जीवन को स्वीकार करने के बाद भी आपको संसार के भोग-सुखों में कोई आसक्ति नहीं थी । आप अनासक्त भाव से ही संसार के भोग-सुख भोगते थे ।

धन्य है आपके अनासक्त भाव को ।

C. श्रमण अवस्था :- जिनप्रतिमा में केशलुंचन की स्थिति को देखकर प्रभु की श्रमणावस्था का चिंतन करना चाहिए ।

हे देवाधिदेव तारक परमात्मा ! जहाँ आपके भोगावली कर्म लगभग समाप्त हुए होते हैं, उस समय नौ लोकांतिक देव आपको विनती करते हैं, **'जय जय नंदा ! जय जय भद्दा ! भगवं तित्थं पवित्तेहि !'**

''हे परमात्मा ! आपकी जय हो, विजय हो ! क्षत्रियों में श्रेष्ठ वृषभ समान ! आपकी जय हो ! आप बोध पाएँ और संयम धर्म को स्वीकार करें ! निरतिचार चारित्र धर्म को स्वीकार कर घाति कर्मों का क्षयकर जगत् के जीवों के कल्याण के लिए धर्मशासन की स्थापना करो ।''

नव लोकांतिक देवों की प्रार्थना सुनकर आपने सांवत्सरिक दान प्रारंभ किया । प्रतिदिन 1 करोड़ 8 लाख अर्थात् एक वर्ष में 388 करोड़ 80 लाख सोना मोहर का दान देकर आपने जगत् के द्रव्य-दारिद्र्य को दूर किया ।

धन्य है आपकी उदारता ।

उसके बाद इन्द्रों ने आकर आपकी दीक्षा का भव्य महोत्सव मनाया । देवता रचित शिबिका में आरूढ़ होकर आप उद्यान में पधारे । उसके बाद आपने अपने ही हाथों से सभी वस्त्र-अलंकार उतार दिए । पंचमुष्टि लोच करके आपने विषय-कषायों को जड़ मूल से उखेड़ दिया ।

'नमो सिद्धाणं' कहकर सिद्धों की साक्षी में आपने सर्वविरति सामायिक धर्म को स्वीकार किया ।

संयम के स्वीकार के बाद केवलज्ञान की प्राप्ति न होने तक आप बिल्कुल मौन रहे । उस छद्मस्थ अवस्था में आपके ऊपर जो भी उपसर्ग

आए, उन सभी उपसर्गों को आपने अत्यंत ही समता व समाधि पूर्वक सहन किया।

धन्य है आपकी साधना !

धन्य है आपकी सहनशीलता !

2. पदस्थ अवस्था :- परिकर में प्रभु के मस्तक के ऊपर रहे कल्पवृक्ष, मस्तक के पीछे भाग में रहे भामंडल, मस्तक पर रहे तीन छत्र आदि अष्ट प्रातिहार्य को देखकर प्रभु की पदस्थ अवस्था का चिंतन करना चाहिए।

हे प्रभो !

केवलज्ञान की प्राप्ति के बाद इन्द्र व देवता आदि आकर आपके केवलज्ञान कल्याणक का महोत्सव मनाते हैं। देवतागण रजत, सुवर्ण व रत्नमय समवसरण की रचना करते हैं।

समवसरण के ऊपरी भाग में बारह पर्षदाओं के बीच चतुर्मुख होकर आप जगत् के भाव-दारिद्र्य को दूर करने के लिए धर्मदेशना देते हैं।

अमृत समान मधुर आपकी धर्मदेशना का अमीपान कर अनेक पुण्यात्माओं के मोह का जहर उतर जाता है और वे आत्माएँ आपके चरणों में समर्पित बनकर सर्वविरति या देशविरति धर्म को स्वीकार करती हैं।

अपनी धर्मदेशना द्वारा आप जगत् की अनेक भव्यात्माओं का उद्धार करते हैं।

धन्य है आपकी परोपकार वृत्ति !

3. रूपातीत अवस्था :- परिकर में कायोत्सर्ग मुद्रा में रही प्रतिमा को देखकर तारक परमात्मा की रूपातीत अर्थात् सिद्ध अवस्था का चिंतन करना चाहिए।

हे करुणानिधान परमात्मा !

केवलज्ञान की प्राप्ति के बाद प्रतिदिन देवनिर्मित समवसरण में बैठकर आप दिन के पहले व चौथे प्रहर में धर्मदेशना देकर जगत् के जीवों पर महान् उपकार करते हो !

उसके बाद अपने आयुष्य को पूर्ण हुआ देखकर शैलेशीकरण की प्रक्रिया व तीसरे-चौथे शुक्ल ध्यान द्वारा समस्त अघाति कर्मों का क्षय करते हो ।

अंतिम समय में भी आप छट्ठ, अट्ठम, मास क्षमण आदि बाह्य तप करके जगत् को बाह्य तप का आदर्श बतलाते हो ।

आयुष्य की पूर्णाहुति के साथ मात्र एक ही समय में आप चौदह राजलोक के अग्र भाग में पहुँच जाते हो और सदा काल के लिए शाश्वत-अजरामर पद के भोक्ता बनते हो ।

हे प्रभो ! आप अनंतकाल के लिए जन्म-जरा और मृत्यु के बंधन से मुक्त बन जाते हो ।

धन्य जीवन ! धन्य निर्वाण !!

(6) त्रिदिशि त्याग त्रिक

(7) प्रमार्जन त्रिक

उड्ढाहो तिरियाणं ति-दिसाण निरिक्खणं चइज्जहवा ।
पच्छिम दाहिण वामाण-जिणमुहन्नत्थ दिट्ठिजुओ ।।13।।

शब्दार्थ

उड्ढाहो=ऊर्ध्व और अधो, **तिरियाणं**=तिर्च्छा, आसपास में, **चइज्ज**=त्याग करना चाहिए, **अहवा**=अथवा, **पच्छिम**=पीछे, **दाहिण**=दायें हाथ की ओर, **वामाण**=बाएँ हाथ की ओर, **जिणमुह**=जिनेश्वर के मुख, **न्नत्थ**=स्थापित, **दिट्ठिजुओ**=दृष्टि युक्त ।

भावार्थ :- जिनेश्वर भगवंत के मुख पर दृष्टि स्थापित कर ऊपर, नीचे और आसपास अथवा पीछे, दाईं तथा बाईं ओर इन तीन दिशाओं में देखने का त्याग करना चाहिए ।

विवेचन

जिस प्रकार समुद्र में जल-तरंगें पैदा होती रहती हैं, उसी प्रकार मन में भी विचारों के तरंग पैदा होते रहते हैं । युद्ध के मैदान में लाखों दुश्मनों को जीतना आसान है, परंतु मन को जीतना अत्यंत ही कठिन है । मन को

जीतना हो तो इन्द्रियों को जीतना जरूरी है। इन्द्रियों को वश में किए बिना मन को वश में करना बहुत कठिन है।

पाँच इन्द्रियों में आँख अत्यंत ही चपल है। ठीक ही कहा है- ***'पाप का प्रवेश द्वार आँख ही है, आँख द्वारा जिन दृश्यों को देखते हैं, उसके अनुसार मन में शुभ-अशुभ भाव पैदा होते रहते हैं।'***

मन में शुभ भावों की उत्पत्ति के लिए जिनेश्वर भगवंत की प्रतिमा सर्व श्रेष्ठ आलंबन है।

महान् पुण्य के उदय से जिनप्रतिमा के दर्शन-पूजन का सौभाग्य प्राप्त होता है। जिनमंदिर जैसे पवित्र धाम में पहुँचने के बाद भी यदि मन नियंत्रण में न हो तो दर्शक की आँखें इधर-उधर भटकती रहती हैं। स्त्रियों के रूपदर्शन में पागल बनी आँखें जिनमंदिर जैसे पवित्रधाम में भी भयंकर पाप कर्म बाँध देती हैं, अतः अपनी आँखें जहाँ-तहाँ न भटकें इसके लिए पूर्वाचार्य महर्षि ने इस त्रिक के माध्यम से हमें अपने मन को प्रभुभक्ति में जोड़ने का सुंदर मार्गदर्शन दिया है।

6. त्रिदिशि त्याग त्रिक : चैत्यवंदन करते समय इस त्रिक के माध्यम से ऊपर-नीचे और आसपास की अथवा पीठ पीछे, अपनी बाईं और दाईं ओर की दिशाओं में देखना छोड़ देना चाहिए और अपनी दृष्टि प्रभु पर स्थिर कर देनी चाहिए। दृष्टि घूमेगी तो मन भी घूमेगा, अतः मन को स्थिर करने के लिए अपनी दृष्टि को स्थिर करना बहुत जरूरी है।

7. प्रमार्जन त्रिक :- जिस भूमि पर बैठकर चैत्यवंदन करना हो, उस भूमि पर जीव-रक्षा के लिए सर्व प्रथम अपने उत्तरासंग से तीन बार भूमि का प्रमार्जन करना चाहिए। पौषधव्रतधारी को भूमि का प्रमार्जन चरवले से एवं साधु-साध्वीजी भगवंतों को ओघे से प्रमार्जन करना चाहिए।

इस त्रिक में विशेष उल्लेख करने का न होने से स्वतंत्र गाथा का निर्देश नहीं किया है।

प्रमार्जनत्रिक का मुख्य उद्देश्य जयणा (यतना) धर्म का पालन करने का है। बिना पूंजे-प्रमार्जन किए कहीं पर भी बैठ जाने से त्रस-स्थावर जीवों की हिंसा की संभावना रहती है। उन जीवों के रक्षण के लिए ही इस त्रिक का अवश्य पालन करना चाहिए।

(8) आलंबन त्रिक
(9) मुद्रा त्रिक

वन्नतियं वन्नत्था, लंबणमालंबणं तु पडिमाई ।
जोग जिण मुत्तसुत्ती, मुद्दा भेएण मुद्द तियं ।।14।।

शब्दार्थ

वन्नतियं=वर्णत्रिक, **वन्नत्थालंबणं-वर्ण**=अर्थ का आलंबन, **पडिमाई**=प्रतिमादि आलंबन, **जोग**=योग (मुद्रा), **जिण**=जिन (मुद्रा), **मुत्तसुत्ती**=मुक्तासुक्ति, **मुद्दा भेएण**=मुद्राओं के भेद से, **मुद्दतियं**=मुद्रात्रिक ।

भावार्थ :- वर्ण (अक्षर), अर्थ और प्रतिमा आदि का आलंबन लेना वर्णादि आलंबन त्रिक है ।

योगमुद्रा, जिनमुद्रा और मुक्तासुक्ति मुद्रा के भेद से मुद्रात्रिक है ।

विवेचन

वर्णत्रिक :- 1. चैत्यवंदन करते समय चैत्यवंदन के जो भी सूत्र हैं उनका स्पष्ट उच्चारण करना चाहिए । सूत्रों में आनेवाले ह्रस्व-दीर्घ अक्षर, संपदा (विराम स्थल) आदि का पूरा-पूरा ख्याल रखना चाहिए अर्थात् सूत्रों का उच्चारण न तो बहुत जोर से चिल्लाते हुए करना चाहिए और न ही अत्यंत मंद स्वर से । अपने भावों में अभिवृद्धि हो, उस ढंग से उत्साह-उल्लास के साथ सूत्रों का उच्चारण करना चाहिए । आस-पास में अन्य भक्तजन चैत्यवंदन आदि कर रहे हों तो उन्हें बाधा, अंतराय रूप न हो, इस ढंग से सूत्रों का उच्चारण करना चाहिए ।

सूत्रों के सही उच्चारण को वर्ण आलंबन या सूत्र आलंबन कहते हैं ।

2. अर्थ आलंबन :- चैत्यवंदन करते समय जो सूत्र बोल रहे हों, उन सूत्रों के अर्थ में भी अपना उपयोग होना चाहिए अर्थात् सूत्रों के उच्चारण के साथ-साथ मन में उनके अर्थ का भी ख्याल रहना चाहिए ।

सूत्र के अर्थ में उपयोग न हो तो जीभ से मात्र सूत्रों का उच्चारण

होगा, परंतु उन सूत्रों को बोलने में जो आनंद आना चाहिए, वह नहीं आ पाएगा। सूत्रों के अर्थ के चिंतन को अर्थ आलंबन कहते हैं।

3. प्रतिमा आलंबन :- चैत्यवंदन करते समय जिन `नमुत्थुणं' आदि दंडक सूत्रों का उच्चारण किया जाता है, उनमें वर्णित भाव अरिहंत के स्वरूप से प्रतिमा के आलंबन से, मन को भावित करना चाहिए।

प्रभु-प्रतिमा में साक्षात् जिनेश्वर परमात्मा के दर्शन होने चाहिए, उस हेतु प्रतिमा में भाव अरिहंत के स्वरूप की कल्पना करनी चाहिए।

चैत्यवंदन करते समय प्रभु-प्रतिमा अपनी स्मृति के बाहर न हो जाय, उसका पूरा-पूरा ख्याल रहना चाहिए।

मुद्रात्रिक के स्वरूप का वर्णन आगे की तीन गाथाओं में स्पष्ट किया गया होने से यहाँ मात्र उन तीन मुद्राओं का नामोल्लेख ही किया गया है।

(1) योग मुद्रा

अन्नुन्नंतरि अंगुलि-कोसागारेहिं दोहिं हत्थेहिं।
पिट्टोवरि-कुप्पर-संठिएहिं तह जोग-मुद्दत्ति ।।15।।

शब्दार्थ

अन्नुन्नंतरि=एक दूसरे के बीच में, **अंगुलि**=अंगुली, **कोसागारेहिं** =कोश के आकार द्वारा, **दोहिं**=दोनों, **हत्थेहिं**=हाथों से, **पिट्टोवरि**=पेट के ऊपर, **कुप्पर**=कोनी, **संठिएहिं**=स्थापित कर, **तह**=तथा, **जोगमुद्दत्ति**=इस प्रकार योग मुद्रा है।

भावार्थ

परस्पर के आंतरे में अंगुलियों को डालकर कमल के दंड का आकार बनाकर, पेट पर दो कोनी रखे हाथों से जिस आकारवाली मुद्रा होती है, उसे योगमुद्रा कहते हैं।

विवेचन

दोनों हथेलियों को कमल के दंड के आकार में इस प्रकार मिलाएँ कि बाएँ हाथ की अंगुलियाँ, दाएँ हाथ की अंगुलियों में आएँ। बाएँ हाथ की पहली अंगुली दाएँ हाथ की पहली व दूसरी अंगुली के बीच में आए। दोनों अंगूठे पास पास में आएँ।

दोनों हाथों के कांडे से कोहनी तक के भाग को भी परस्पर मिलाकर रखें, फिर दोनों कोहनियों को पेट अथवा नाभि के ऊपर लगाकर रखें ।

यह मुद्रा खड़े-खड़े व बैठे-बैठे भी करने की होती है ।

यहाँ योग अर्थात् दो हाथों का संयोग विशेष ! ऐसी मुद्रा को योगमुद्रा कहते हैं । यह मुद्रा विघ्न विशेष को दूर करने में समर्थ है ।

(2) जिन मुद्रा

चत्तारि अंगुलाइं, पुरओ ऊणाइं जत्थ पच्छिमओ ।
पायाणं उस्सग्गो एसा पुण होइ जिण-मुद्दा ।।16।।

शब्दार्थ

चत्तारि=चार, **अंगुलाइं**=अंगुल, **पुरओ**=आगे, **ऊणाइं**=न्यून, **जत्थ**=जिस मुद्रा में, **पच्छिमओ**=पीछे, **पायाणं**=दो पैर का, **उस्सग्गो**=अंतर, **एसा**=यह, **पुण**=तथा, **होइ**=होती है, **जिण मुद्दा**=जिनमुद्रा ।

भावार्थ :- जिस मुद्रा में दो पाँवों के बीच में आगे चार अंगुल का अंतर व पीछे उससे कुछ न्यून अंतर होता है, वह जिनमुद्रा है ।

विवेचन

जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट चैत्यवंदन में कायोत्सर्ग भी आता है, वह कायोत्सर्ग जिनमुद्रा में किया जाता है । कायोत्सर्ग खड़े-खड़े किया जाता है । खड़े रहते समय पाँवों की स्थिति किस प्रकार रखनी चाहिए, उसका स्पष्ट निर्देश इस गाथा में किया है अर्थात् कायोत्सर्ग करते समय आगे के भाग में चार अंगुल का अंतर और पीछे के भाग में चार अंगुल से कुछ कम अंतर होना चाहिए । कायोत्सर्ग की इस मुद्रा को जिनमुद्रा कहते है, क्योंकि जिनेश्वर भगवंत अपनी छद्मस्थ अवस्था में लगभग कायोत्सर्ग मुद्रा में रहते हैं ।

अथवा जिन अर्थात् जीतनेवाली, विघ्नों को जीतनेवाली मुद्रा होने से इस प्रकार की मुद्रा को जिनमुद्रा कहा जाता है ।

(3) मुक्तासुक्ति मुद्रा

मुत्तासुत्ती मुद्दा, जत्थ समा दो वि गब्भिआ हत्था ।
ते पुण निलाडदेसे, लग्गा अन्ने अलग्ग त्ति ।।17।।

शब्दार्थ

मुत्तासुत्ती=मुक्तासुक्ति, **मुद्दा**=मुद्रा, **जत्थ**=जिसमें, **समा**=समान, **दो वि**=दोनों भी, **गब्भिआ**=गर्भित, बीच में उन्नत, **हत्था**=हाथ, **ते**=वे, **पुण**=और, **निलाडदेसे**=ललाट स्थान में, **लग्गा**=लगे हुए, **अन्ने**=अन्य आचार्यों के मत से, **अलग्ग**=वहीं लगे हुए, **त्ति**=इस प्रकार ।

भावार्थ :- जिसमें दोनों हाथ गर्भित रखकर ललाट प्रदेश को स्पर्श किये हुए हों, कुछ आचार्यों के मत से ललाट का स्पर्श किए हुए न हों, उसे मुक्तासुक्ति मुद्रा कहते हैं ।

विवेचन

मुक्ता अर्थात् मोती, सुक्ति अर्थात् मोती का उत्पत्ति स्थान । मोती छीप में पैदा होते हैं, मोती के छीप जैसे आकार वाली मुद्रा को मुक्तासुक्ति कहा जाता है । इस मुद्रा में दोनों हाथों की अंगुलियाँ एक दूसरे के अंतर में न हो, बल्कि दोनों हाथों की आठों अंगुलियाँ एक-दूसरे का स्पर्श की हुई हों, बीच में हथेली गर्भित अर्थात् पोलवाली हो । बाहर से वह हाथ कछुए की तरह, बीच का भाग उठा हुआ हो । कछुए की पीठ बीच में ऊँची होती है । छीप की तरह दोनों हाथों का आकार कर उसे ललाट पर लगाना चाहिए, कुछ आचार्यों के मत से वे दोनों हाथ ललाट का स्पर्श न कर ललाट के सामने दोनों हाथ ऊँचे करने चाहिए । इस प्रकार की मुद्रा को मुक्तासुक्ति मुद्रा कहा जाता है ।

मुद्राओं का उपयोग

पंचंगो पणिवाओ, थय पाढो होइ जोग-मुद्दाए ।
वंदण जिणमुद्दाए, पणिहाणं मुत्तसुत्तीए ।।18।।

शब्दार्थ

पंचंगो=पाँच अंगों से, **पणिवाओ**=प्रणिपात नमस्कार, **थय पाढो**=स्तुति पाठ, **होइ**=होता है, **जोगमुद्दाए**=योग मुद्रा में, **वंदण**=वंदन, **जिण मुद्दाए**=जिन मुद्रा से, **पणिहाणं**=प्रणिधान, **मुत्तसुत्तीए**=मुक्तासुक्ति मुद्रा से।

भावार्थ

पंचांग प्रणिपात और स्तव पाठ योगमुद्रा से, वंदन जिनमुद्रा से और प्रणिधान मुक्तासुक्ति मुद्रा से होता है।

विवेचन

किन-किन सूत्रों का उच्चारण करते समय कौनसी मुद्रा करनी चाहिए इसका निर्देश इस गाथा में किया है।

पंचांग प्रणिपात (खमासमणा) व स्तव पाठ (नमुत्थुणं सूत्र) योगमुद्रा से करना चाहिए।

चैत्यवंदन करते समय चैत्यवंदन और नमुत्थुणं योगमुद्रा से बोला जाता है।

जावंति चेइआइं, जावंत के वि साहू और जयवीयराय तीनों प्रणिधान सूत्र मुक्तासुक्ति में बोले जाते है। बीच में स्तवन योग मुद्रा से बोला जाता है अरिहंत चेइयाणं, कायोत्सर्ग व स्तुति खड़े-खड़े जिनमुद्रा में किया जाता है।

चैत्यवंदन के प्रारंभ में इरियावहिय-लोगस्स आदि सूत्र भी जिनमुद्रा में बोले जाते हैं। इसके सिवाय खड़े-खड़े या बैठकर जो सूत्र बोले जाते हैं, वे सब हाथ जोड़कर बोलने चाहिए।

मुख्य तीन मुद्राओं के साथ उपलक्षण से अन्य मुद्राएँ भी समझ लेनी चाहिए।

चैत्यवंदन में नमुत्थुणं सूत्र बोलते समय बायाँ पैर ऊँचाकर दाएँ पैर को भूमि पर स्थापित करना चाहिए।

• एक मत से दोनों घुटनों को भूमि पर स्पर्श कराकर उत्कटासन (उभडक) बैठकर नमुत्थुणं सूत्र बोलते हैं। एक मत से दोनों पैर जमीन के साथ दोनों घुटनों को जमीन का स्पर्श कराते हुए नमुत्थुणं सूत्र बोलते हैं।

मूल गाथा में नमुत्थुणं व स्तव पाठ शब्द हैं, उनसे यहाँ नमुत्थुणं सूत्र ही समझना चाहिए । क्योंकिं `नमुत्थुणं' शब्द बोलते समय मस्तक झुकाकर पंचांग नमस्कार करने का होता है, उसी प्रकार `नमो जिणाणं' व `सव्वे तिविहेण वंदामि' बोलते समय भी पंचांग प्रणिपात करने का होता है, यह सूत्र योगमुद्रा में बोलने का होता है ।

`अरिहंत चेइयाणं' भी कायोत्सर्ग का हेतुसूचक सूत्र है परंतु कायोत्सर्ग का हेतु वीतराग परमात्मा को वंदन आदि करने से जो फल मिलता है, उस फल की प्राप्ति के उद्देश्य से किया जाता है, अतः कायोत्सर्ग भी वंदन ही कहलाता है । अरिहंत चेइयाणं सूत्र पैर की जिनमुद्रा व हाथ की योगमुद्रा में बोला जाता है ।

प्रणिधान त्रिक जावंति, जावंत केवि, जयवीयराय ये तीनों सूत्र मुक्तासुक्ति मुद्रा में बोले जाते हैं ।

(10) प्रणिधान त्रिक

पणिहाण तियं चेइअ-मुणि-वंदण-पत्थणा-सरूवं वा ।
मण-वय-काएगत्तं-सेस-तियत्थो य पयडुत्ति ।।19।।

शब्दार्थ

पणिहाणतियं=प्रणिधान त्रिक, **चेइय**=चैत्य, **मुणिवंदण**=मुनिवंदन, **पत्थणा**=प्रार्थना, **सरूवं**=स्वरूप, **वा**=अथवा, **मण**=मन, **वय**=वचन, **काएगत्तं**=काया की एकाग्रता, **सेस**=अवशेष, **तियत्थो**=त्रिक का अर्थ, **पयडुत्ति**=स्पष्ट है ।

भावार्थ :- चैत्यवंदन, मुनिवंदन और प्रार्थना स्वरूप अथवा मन, वचन और काया की एकाग्रता रूप यह प्रणिधान त्रिक है । शेष तीन त्रिक का अर्थ सरल है । इस प्रकार दश त्रिक पूरे हुए ।

विवेचन

`जावंति चेइयाइं' सूत्र के द्वारा तीनों लोकों में रहे हुए सभी चैत्य-जिनमंदिरों (जिनप्रतिमाओं) को भावपूर्वक नमस्कार किया जाता है, इस कारण इस सूत्र को चैत्यवंदन सूत्र कहा जाता है ।

`जावंत के वि साहू' सूत्र द्वारा ढाई द्वीप में रहे सभी साधु-साध्वीजी भगवंतों को नमस्कार किया जाता है, इस कारण उसे मुनिवंदन सूत्र कहा जाता है। `जयवीयराय' सूत्र को प्रार्थना सूत्र कहते हैं, क्योंकि इस सूत्र द्वारा `आभव- मखंडा' तक संसार से वैराग्य, मार्गानुसारिता, इष्टफल की सिद्धि, लोकविरुद्ध का त्याग, गुरुजन की पूजा, परोपकारकरण, सद्गुरु का योग, भव पर्यंत सद्गुरु के वचन की सेवा और भव-भव में प्रभु के चरण की सेवा इत्यादि नौ वस्तुओं की मांग की जाती है।

उसके बाद की प्रक्षेप गाथाओं में **दुःखक्षय, कर्मक्षय, समाधिमरण** और **बोधिलाभ** इन चार वस्तुओं की मांग की जाती है।

प्रणिधान शब्द का दूसरा अर्थ है मन, वचन और काया की एकाग्रता कोई भी धर्म आराधना तभी सफल व सार्थक बनती है, जब उसमें मन, वचन और काया की एकाग्रता हो। वचन और काया को धर्म साधना में जोड़ना सरल है, परंतु मन को जोड़ना अत्यंत ही कठिन कार्य है। प्रभुभक्ति व चैत्यवंदन करते समय मन, वचन और काया की एकता होनी बहुत जरूरी है, तभी वह आराधना मोक्षफलदायी बनती है।

पाँच अभिगम

सच्चित्त दव्वमुज्झण-मच्चित्तमणुज्झणं मणेगत्तं ।
इग साडि उत्तरासंगु, अंजली सिरसि जिणदिट्ठे ।।20।।

शब्दार्थ

सच्चित्तदव्व=सचित्तद्रव्य का, **उज्झणं**=त्याग, **अचित्तमणुज्झणं**=अचित्त का अत्याग, **मणेगत्तं**=मन की एकाग्रता, **इगसाडि**=अखंडवस्त्र, **उत्तरासंगु**=उत्तरासंग, **अञली**=हाथ जोड़ना, **सिरसि**=मस्तक पर, **जिणदिट्ठे**=जिनेश्वर को देखते ही।

भावार्थ

सचित्त वस्तु को छोड़ना, अचित्त वस्तु को ग्रहण करना, मन की एकाग्रता, उत्तरासंग धारण करना और जिनेश्वर परमात्मा दिखाई देते ही मस्तक पर अंजलि करना, ये पाँच अभिगम हैं।

विवेचन

अभिगम अर्थात् एक प्रकार का विनय ।

माता-पिता, ज्येष्ठ बंधु तथा उपकारीजन के दिन में प्रथम दर्शन या वर्षों बाद प्रथम मिलन के पावन प्रसंग पर योग्य विनय अवश्य करने का होता है। उपकारीजनों के प्रति विनय-बहुमान भाव व्यक्त करने से खूब लाभ होता है, उनका अनुग्रह प्राप्त होता है ।

देवाधिदेव वीतराग-परमात्मा तो लोकोत्तर उपकारी हैं। उनके उपकार की कोई सीमा नहीं है । नरक-निगोद की भयंकर यातनाओं में से मुक्त करानेवाले श्री अरिहंत परमात्मा का कितना उपकार है !

ऐसे तारक परमात्मा के दर्शन-वंदन करते समय तो कितना विशिष्ट प्रकार से विनय करना चाहिए ।

जिनमंदिर में रही जिन-प्रतिमा साक्षात् भगवान है, अतः ऐसे तारक परमात्मा का विशेष प्रकार से विनय करना यह हमारा परम कर्तव्य हो जाता है। जिनमंदिर में प्रवेश एवं प्रवेश बाद करने योग्य 5 अभिगम हैं ।

1) सचित्त त्याग :- जिनमंदिर में प्रवेश करते समय श्रावक को स्वयं के उपभोग में आनेवाली खाद्य सामग्री का त्याग करना चाहिए अर्थात् स्व उपयोग की खाद्य सामग्री को साथ लेकर जिनमंदिर में नहीं जाना चाहिए। ऐसी सामग्री साथ में हो तो प्रभु की जहाँ दृष्टि नहीं गिरती हो, ऐसी जगह पर वह सामग्री मंदिर के बाहर के भाग में रख देनी चाहिए ।

भूल से यदि खाद्य सामग्री जेब आदि में रह जाय और मंदिर में प्रवेश कर लिया हो तो वह सामग्री या तो प्रभु चरणों में अर्पित कर देनी चाहिए । प्रभु के अर्पण करने योग्य न हो तो परठ लेना चाहिए, परंतु वह सामग्री स्वयं के उपभोग में नहीं लेनी चाहिए ।

प्रभु की दृष्टि पड़े इस प्रकार से भोजन सामग्री को नहीं ले जाना चाहिए। स्वामी वात्सल्य आदि के प्रसंग में मंदिर के पास से भोजन-सामग्री इधर-उधर ले जानी हो तो बीच में कपड़े का पर्दा या लकड़ी का पाटिया अवश्य रखना चाहिए । यह भी प्रभु का एक प्रकार का विनय है ।

2) अचित्त का अत्याग :- लोक व्यवहार में भी किसी भी बड़े व्यक्ति के साथ मुलाकात करनी हो तो उनके पास खाली हाथ नहीं जाते हैं। प्रधान मंत्री, मुख्यमंत्री, राजा-महाराजा आदि के पास जाते समय उनको देने योग्य भेंट लेकर ही जाते हैं तो तीन लोक के नाथ ऐसे तारक परमात्मा के पास खाली हाथ कैसे पहुँचा जाय ? उनके पास जाते समय प्रभु पूजा संबंधी सारी सामग्री अपने घर से अपने द्रव्य से लेकर जाना चाहिए।

अपने द्रव्य से जब हम प्रभु की भक्ति करते हैं तो उसका आनंद कुछ और ही होता है। स्वद्रव्य से प्रभु की भक्ति करने से उस भक्ति से लाभ भी विशेष होता है। अतः अपनी शक्ति को छिपाए बिना कुछ-न-कुछ सामग्री अपने घर से अवश्य लेकर जाना चाहिए।

3. उत्तरासंग : यह अभिगम सिर्फ पुरुषों के लिए ही है क्योंकि स्त्रियों को उत्तरासंग पहिनने का विधान नहीं है। श्री अरिहंत परमात्मा के च्यवन-जन्म आदि कल्याणक प्रसंगों पर जब इन्द्र महाराजा **'शक्रस्तव'** द्वारा तारक परमात्मा की स्तवना करते हैं, तब वे भी अपने देह पर उत्तरासंग धारण करते हैं। उत्तरासंग भी विनय का प्रतीक है।

प्रभु-दर्शन व पूजन के लिए मंदिर में प्रवेश करते समय प्रत्येक श्रावक को उत्तरासंग अवश्य धारण करना चाहिए।

उत्तरासंग के लिए अखंड वस्त्र का उपयोग करना चाहिए, उसकी किनारी सिली हुई नहीं होनी चाहिए। उत्तरासंग के दोनों किनारे चरवले की दस्सी जैसे होने चाहिए ताकि खमासमणा आदि देने के पूर्व यतनापूर्वक भूमि का प्रमार्जन किया जा सके।

4. अंजलि :- जिनालय के मुख्य द्वार में प्रवेश करते ही ज्यों ही दूर से मूलनायक भगवान दिखाई दें, त्योंही दोनों हाथ जोड़कर उन्हें मस्तक पर लगाकर कुछ मस्तक झुकाते हुए **'नमो जिणाणं'** बोलना चाहिए।

हाँ ! बहिनों को अपने दोनों हाथ मस्तक पर नहीं लगाने चाहिए, बल्कि छाती पर ही हाथ जोड़कर मस्तक झुकाते हुए 'नमो जिणाणं' कहना चाहिए।

5. प्रणिधान :- देवविमान तुल्य जिनेश्वर परमात्मा के जिनालय में प्रभु दर्शन-वंदन व पूजन का आनंद तभी आ सकता है जब मन, वचन और काया की एकता अर्थात् एकाग्रता हो।

प्रभु की भक्ति यह एक सर्वश्रेष्ठ योग है, परंतु उस योग की सफलता व सार्थकता तभी सिद्ध हो सकती है, जब अपने मन, वचन और काया के तीनों योग जुड़े हुए हों, काया से चैत्यवंदन की योगमुद्रा में बैठे हों, वचन से सुमधुर कंठ से प्रभु की स्तवना कर रहे हों, परंतु मन कहीं दश-दिशाओं में भटक रहा हो तो उस भक्ति का कोई अर्थ नहीं है ।

चाहे संगीतकला हो या चित्रकला हो या लेखनकला हो या भक्ति कला हो, मन की एकाग्रता के बिना कहीं भी सफलता हासिल नहीं हो सकती है । सफलता पाना है तो मन की एकाग्रता बहुत ही जरूरी है ।

प्रभु भक्ति का आनंद व फल पाना हो तो प्रणिधान बहुत ही जरूरी है ।

प्रभु भक्ति में 'प्रणिधान' यह पाँचवें प्रकार का विनय है । इसका अत्यधिक महत्त्व है । प्राण बिना के देह की कोई कीम्मत नहीं, उसी प्रकार मन की एकाग्रता बिना भक्ति की कोई कीमत नहीं ।

इय पंचविहाऽभिगमो, अहवा मुच्चंति रायचिण्हाइं ।
खग्गं छत्तोवाणह, मउडं चमरे अ पंचमए ॥21॥

शब्दार्थ

इय=पहले कहे हुए, **पंचविह**=पाँच प्रकार के, **अभिगमो**=अभिगम, **अहवा**=अथवा, **मुच्चंति**=छोड़ते हैं, **रायचिण्हाइं**=राजचिह्न, **खग्गं**=तलवार, **छत्तोवाणह**=छत्र और जूते, **मउडं**=मुकुट, **चमरे**=चामर, **अ**=तथा, **पंचमए**=पाँचवाँ ।

भावार्थ

यह पाँच प्रकार का अभिगम है अथवा तलवार, छत्र, मोजड़ी (जूते), मुकुट और चामर इन पाँच राजचिह्नों का त्याग करना, ये पाँच प्रकार के अभिगम हैं ।

विवेचन

प्रभु के दर्शन के लिए राजा जा रहा हो तो उसे अपने पाँच राज चिह्नों को छोड़कर जिनमंदिर में प्रवेश करना चाहिए ।

प्रभु तो त्रिभुवन के राजा हैं, उनके आगे अपनी राजसत्ता आदि को प्रकट करना, यह तो प्रभु का अविनय कहलाता है, प्रभु के पास तो सेवक बनकर जाना चाहिए ।

मुकुट अर्थात् शिरोवेष्टन के ऊपर जो कलगीवाला ताज पहिना जाता है, वह समझना चाहिए, क्योंकि खुले मस्तक तो प्रभु के पास जाने का निषेध है । राजा आदि ऋद्धिमान श्रावकों को तो अपनी समृद्धि के अनुसार बड़े आडंबर के साथ प्रभु के दर्शन के लिए जाना चाहिए, जिससे अनेक बालजीवों के हृदय में भी प्रभु के प्रति भक्तिराग प्रकट होता है, जिससे वे भी सम्यक्त्व आदि भावों को प्राप्त करते हैं ।

अवग्रह

वंदंति जिणे दाहिण, दिसिट्ठिया पुरिस वाम दिसि नारी ।
नवकर जहन्न सट्ठिकर जिट्ठ मज्झुग्गहो सेसो ।।22।।

शब्दार्थ

वंदंति=वंदन करते हैं, **जिणे**=जिनेश्वर भगवंत, **दाहिणदिसि**=दाईं ओर, **ट्ठिया**=रहे हुए, **पुरिस**=पुरुष, **वामदिसि**=बाईं ओर, **नारी**=नारी, **नवकर**=नौ हाथ, **जहन्न**=जघन्य, **सट्ठिकर**=60 हाथ, **जिट्ठ**=ज्येष्ठ, **मज्झुग्गहो**=मध्यम अवग्रह, **सेसो**=शेष ।

भावार्थ

प्रभु के दाईं ओर खड़े रहकर पुरुष तथा बाईं ओर खड़े रहकर स्त्रियाँ प्रभु को वंदन करती हैं । नौ हाथ का जघन्य, साठ हाथ का उत्कृष्ट अवग्रह और बाकी का मध्यम अवग्रह कहलाता है ।

विवेचन

मंदिर में प्रभुजी के दर्शन करने हों तो उसमें भी जहाँ-तहाँ खड़े नहीं रहना चाहिए । बल्कि पुरुषों को प्रभु के दाहिने हाथ की ओर तथा बहिनों को प्रभु के बाँए हाथ की ओर खड़े रहकर दर्शन करने चाहिए ।

तीन लोक के नाथ ऐसे प्रभु के एकदम सामने खड़ा नहीं रहना चाहिए । एकदम बीच में खड़े रहने से पीछे से दर्शन के लिए आनेवाले को

अंतराय रहता है, अतः बीच में खड़े न रहकर पुरुषों को प्रभु के दाईं ओर तथा बहिनों को प्रभु के बाईं ओर खड़े रहना चाहिए। प्रभु के एकदम सामने खड़े रहना भी प्रभु का अविनय कहलाता है। अरिहंत परमात्मा के समवसरण में भी बारह पर्षदाएँ भी प्रभु के एकदम सामने नहीं बैठती हैं, बल्कि एक ओर (Side) में ही बैठती हैं।

जिनमंदिर यदि विशाल हो तो चैत्यवंदन करते समय प्रभु और भक्त के बीच जघन्य से 9 हाथ और उत्कृष्ट से 60 हाथ का अंतर होना चाहिए।

9 हाथ से अधिक और 60 हाथ से कम के अंतर को मध्यम अवग्रह कहते हैं।

प्रभु के एकदम समीप बैठकर भी चैत्यवंदन नहीं किया जाता है, एकदम नजदीक बैठने से अपने श्वासोच्छ्वास आदि का प्रभु को स्पर्श होने से आशातना होती है।

तीन प्रकार की चैत्यवंदना

नमुक्कारेण जहन्ना, चिइवंदण मज्झ दंड थुइ जुअला।
पण दंड थुइ चउक्कग, थय पणिहाणेहिं उक्कोसा ॥23॥

शब्दार्थ

नमुक्कारेण=नमस्कार द्वारा, **जहन्ना**=जघन्य, **चिइवंदण**=चैत्यवंदन, **मज्झ**=मध्यम, **दंड**=दंडक, **थुइ**=स्तुति, **जुअला**=युगल, **पणदंड**=पाँच दंडक, **थुइ चउक्कग**=चार स्तुति, **थय**=स्तवन, **पणिहाणेहिं**= प्रणिधान सूत्र द्वारा, **उक्कोसा**=उत्कृष्ट।

भावार्थ

नमस्कार द्वारा जघन्य, दंडक और स्तुति युगल द्वारा मध्यम, पाँच दंडक, चार स्तुति, स्तवन एवं प्रणिधान द्वारा उत्कृष्ट चैत्यवंदन होता है।

विवेचन

इस गाथा में चैत्यवंदन के तीन प्रकार बतलाए हैं –

1. जघन्य चैत्यवंदना :- 'नमो जिणाणं' बोलते हुए जो अंजलि-

बद्ध प्रणाम किया जाता है उस एक पद रूप नमस्कार द्वारा, 1 श्लोक द्वारा, यावत् 108 श्लोक द्वारा और 1 नमुत्थुणं सूत्र द्वारा इस प्रकार पाँच प्रकार से जो प्रभु की स्तवना करते हैं, वह जघन्य चैत्यवंदना है ।

2. मध्यम चैत्यवंदना :- नमुत्थुणं सूत्र व अरिहंत चेइयाणं बोलकर 1 नवकार का कायोत्सर्ग कर, ऊपर जो एक थोय बोली जाती है, उसे मध्यम चैत्यवंदना कहते हैं । **अथवा**

दो दंडक सूत्र और दो स्तुति द्वारा मध्यम चैत्यवंदना होती है । इसमें शक्रस्तव व चैत्यस्तव ये दो दंडक तथा अध्रुव व ध्रुव दो स्तुति बोलें ।

भिन्न-भिन्न तीर्थंकर अथवा चैत्य संबंधी स्तुति को अध्रुव स्तुति और लोगस्स के माध्यम से 24 प्रभु के नाम की स्तवना को ध्रुवस्तुति कहते हैं ।

हाल में यह विधि प्रचलित नहीं है, **अथवा**

दंड अर्थात् नमुत्थुणं आदि 5 सूत्र मिलकर 1 दंडक और चार थोय के जोड़े में प्रथम तीन वंदना स्तुति व अंतिम चौथी थोय को अनुशास्ति स्तुति कहते हैं । इस प्रकार वंदना व अनुशास्ति के युगल को `थुइ जुअल' कहते हैं । इस प्रकार चार थोय के 1 जोड़ावाले चैत्यवंदन को मध्यम चैत्यवंदना कहते हैं ।

3. उत्कृष्ट चैत्यवंदना :- नमुत्थुणं आदि पाँच दंडक सूत्र अथवा पाँच बार नमुत्थुणं और स्तुति चतुष्क के दो युगल द्वारा 8 थोय, स्तवन, जावंति चेइयाइं, जावंत केवि साहू, एवं जयवीयराय इन तीन प्रणिधान सूत्रों द्वारा उत्कृष्ट चैत्यवंदना होती है । पौषध के देववंदन में यह चैत्यवंदना होती है ।

वर्तमान काल में पूर्वाचार्यों की परंपरा के अनुसार चैत्यवंदन की जो विधि प्रचलित हो, उसके अनुसार चैत्यवंदना करनी चाहिए ।

अन्ने बिंति इगेणं, सक्कत्थएण जहन्न वंदणया ।
तद्दुग-तिगेण मज्झा, उक्कोसा चउहिं पंचहिं वा ।।24।।

शब्दार्थ

अन्ने=दूसरे आचार्य, **बिंति**=कहते हैं, **इगेणं**=एक, **सक्कत्थएण**= शक्रस्तव से, **जहन्न**=जघन्य, **वंदणया**=वंदन, **तद्दुगेण**=दो (शक्रस्तवद्वारा),

तिगेण=तीन (शक्रस्तवद्वारा), **मज्झा**=मध्यम, **उक्कोसा**=उत्कृष्ट, **चउहिं**=चार द्वारा, **पंचहिं**=पाँच द्वारा, **वा**=अथवा ।

भावार्थ :- दूसरे आचार्य भगवंत कहते हैं कि एक शक्रस्तव द्वारा जघन्य, दो या तीन द्वारा मध्यम और चार और पाँच शक्रस्तव द्वारा उत्कृष्ट वंदना होती है ।

विवेचन

इस गाथा के द्वारा चैत्यवंदन में जो मतांतर हैं, वह बतला रहे हैं ।

जिस चैत्यवंदन में एक ही बार नमुत्थुणं सूत्र आता है, उसे जघन्य चैत्यवंदन कहा जाता है तथा 2-3 शक्र स्तव हों तो मध्यम व 4-5 हों तो उत्कृष्ट चैत्यवंदन कहा जाता है ।

प्रणिपात द्वार
नमस्कार द्वार

पणिवाओ पंचंगो, दो जाणू कर दुगत्तमंगं च ।
सुमहत्थ-नमुक्कारा, इग-दुग-तिग-जाव अट्ठसयं ।।25।।

शब्दार्थ

पणिवाओ=प्रणिपात, **पंचंगो**=पाँचों अंगों से, **दो जाणू**=दो घुटने, **करदुग**=दो हाथ, **उत्तमंगं**=उत्तम अंग-मस्तक, **सुमहत्थ**=बड़े अर्थवाला, **नमुक्कारा**=नमस्कार, **इग**=एक, **दुग**=दो, **तिग**=तीन, **जावअट्ठसयं**=108 तक ।

भावार्थ :- प्रणिपात पाँच अंगवाला है-दो घुटने, दो हाथ और मस्तक । एक, दो, तीन से लेकर 108 तक श्रेष्ठ अर्थवाले नमस्कार कहने चाहिए ।

विवेचन

चैत्यवंदन करते समय तीसरे प्रकार का प्रणाम अर्थात् पंचांग-प्रणिपात नमस्कार किया जाता है । यह नमस्कार करते समय अपने शरीर के पाँचों अंग मस्तक, दो घुटने और दोनों हाथ भूमि पर स्पर्श होने चाहिए ।

भूमि पर मस्तक का स्पर्श किए बिना जो नमस्कार किया जाता है, वह अविधि कहलाती है ।

बैठे-बैठे सिर्फ मस्तक को झुकाने से भी यह पंचांग प्रणिपात नमस्कार नहीं होता है । कई लोग बैठे-बैठे ही मस्तक झुकाकर नमस्कार कर लेते हैं, परंतु यह भी अविधि है ।

गाढ़ रोग वृद्धावस्था के कारण शरीर का संतुलन (Balance) नहीं रहता हो या खड़े रहने पर गिर जाने की संभावना हो, ऐसी परिस्थिति में बैठे-बैठे भी खमासमणा दिया जा सकता है, परंतु शारीरिक दृष्टि से पूर्ण स्वस्थता हो तो खड़े होकर ही खमासमणे देने चाहिए ।

7 वाँ नमस्कार द्वार

प्रभु के आगे प्रभु के गुणों की प्रशंसा रूपी गंभीर अर्थवाली और सिद्धसेन दिवाकर आदि पूर्वकालीन महापुरुषों के द्वारा विरचित स्तुतियाँ (1 से लेकर 108 श्लोक द्वारा) बोलनी चाहिए ।

तारक अरिहंत परमात्मा तो अनंत गुणों के महासागर हैं, उनके गुणों की गणना संभव नहीं है । उनके समस्त गुणों को देखने के लिए न तो हमारे पास चक्षु हैं और न ही उन गुणों का वाणी के द्वारा कथन करने के लिए शब्द हैं ।

फिर भी पूर्वकालीन महापुरुषों ने प्रभु की स्तुति रूप श्लोक रचे हैं, उन श्लोकों के माध्यम से अपने हृदय को भावित करते हुए प्रभु का स्तुतिगान करना चाहिए, स्तुतियाँ बोलते समय मन में खूब उत्साह और उल्लास होना चाहिए ।

8 वाँ अक्षर द्वार-1647 अक्षर

अडसट्ठि अट्ठवीसा, नव नउय सयं च दु सय सग नऊआ ।
दो गुणतीस दुसट्ठा, दुसोल अडनउअसयं दुवन्नसयं ।।26।।
इय नवकार-खमासमण इरिय सक्कत्थयाइ-दण्डेसु ।
पणिहाणेसु अ अदुरूत्त, वन्न सोलसय सीयाला ।।27।।

शब्दार्थ

अडसट्ठि=अड़सठ, **अट्ठावीसा**=अट्ठाईस, **नव नउअसयं**=एकसौ निन्यानवे, **दुसय**=दो सौ, **सग-नउआ**=सत्ताणु, **दो गुणतीस**=दो सौ उनतीस, **दुसट्ठा**=दो सौ साठ, **दुसोल**=दो सौ सोलह, **अडनउअसयं**=एकसौ अट्ठानवे, **दुवन्नसयं**=एकसौ बावन, **इय**=इस प्रकार, **नवकार**=नवकार महामंत्र, **खमासमण**=पंचांग प्रणिपात सूत्र, **इरिय**=इरियावहिय, **सक्कत्थयाइ**=शक्रस्तव आदि, **दंडेसु**=दंडकों में, **पणिहाणेसु**=प्रणिधान सूत्रों में, **अदुरूत्त**=दूसरी बार नहीं बोले गए, **वन्न**=वर्ण, **सोलसय सीयाला**=1647 ।

भावार्थ

नवकार, खमासमण सूत्र, इरियावहिय, शक्रस्तव आदि पाँच दंडक सूत्रों में तथा प्रणिधान सूत्रों में दूसरी बार नहीं बोले गए क्रमशः 68, 28, 199, 297, 229, 260, 216, 198 तथा 152 अक्षर हैं ।

विवेचन

चैत्यवंदन (देववंदन) संबंधी सूत्रों में किस सूत्र में कितने अक्षर हैं ? इसका निर्देश इन दो गाथाओं में दिया है ।

सूत्र	**अक्षर संख्या**
नवकार	**68**
खमासमण	**28**
इरियावहिय	**199**
शक्रस्तव	**297**
चैत्यस्तव	**229**
नामस्तव	**260**
श्रुतस्तव	**216**
सिद्धस्तव	**198**
तीन प्रणिधान सूत्र	**152**
कुल	**= 1647 अक्षर**

पंच मंगल महाश्रुत स्कंध रूप नवकार महामंत्र में कुल 68 अक्षर हैं । नवकार के पाँच पदों में 35 व चूलिका में 33 अक्षर हैं ।

कोई संप्रदायवाले चूलिका में अनुष्टुप् छंद मानकर चौथे पद में 9 के बदले 8 अक्षर का स्वीकार करते हुए पढमं हवइ मंगलं के बजाय पढमं होइ मंगलं मानते हैं । परंतु इस प्रकार करने से नवकार के 68 अक्षर के बदले 67 अक्षर हो जाते हैं, जबकि प्रामाणिक ऐसे महानिशीथ आदि ग्रंथों में नवकार के 68 अक्षर बतलाए हैं । आर्ष रचना में छंदभंग का दोष नहीं लगता है ।

(2) खमासमण सूत्र अर्थात् थोभ वंदन सूत्र ।

(3) इरियावहिय सूत्र अर्थात् प्रतिक्रमण श्रुतस्कंध सूत्र में इच्छामि पडिक्कमिउं से लेकर ठामि काउसग्गं तक, तस्स उत्तरी सूत्र के साथ ।

(4) नमुत्थुणं सूत्र को शक्रस्तव अर्थात् प्रणिपात दंडक भी कहते हैं ।

(5) चैत्य स्तव में जो 229 अक्षर कहे हैं वे `अरिहंत चेइयाणं' से लेकर अन्नत्थ सूत्र संपूर्ण समझना चाहिए ।

(6) लोगस्स सूत्र को नाम स्तव भी कहते हैं । इसमें जो 260 अक्षर हैं, वे संपूर्ण लोगस्स सूत्र एवं `सव्वलोए' के चार अक्षर भी जोड़ने चाहिए ।

(7) पुक्खर वरदी सूत्र का शास्त्रीय नाम श्रुत स्तव है । इस सूत्रमें 216 अक्षर हैं । इसमें `पुक्खरवरदी से लेकर सुअस्स भगवओ तक समझना चाहिए ।

(8) सिद्धाणं बुद्धाणं का शास्त्रीय नाम सिद्धस्तव है । इसमें 198 अक्षर हैं । सिद्धाणं बुद्धाणं से लेकर सम्मदिट्ठि समाहिगराणं तक अक्षर गिनने चाहिए ।

(9) जावंति चेइयाइं, जावंत के वि साहु और आभवमखंडा तक जयवीयराय सूत्र को तीन प्रणिधान सूत्र कहते हैं । इन तीन सूत्रों के कुल 152 अक्षर हैं ।

शक्रस्तव, चैत्यस्तव, नामस्तव, श्रुतस्तव और सिद्धस्तव ये पाँच दंडक सूत्र कहलाते हैं । इन पाँच दंडक सूत्रों में 297 + 229 + 260 + 216 + 198 = 1200 अक्षर होते हैं ।

नौवां द्वार 18 पद द्वार

नव बत्तीस तित्तीसा, तिचत्त अडवीस सोल वीस पया ।
मंगल इरिया सक्कत्थयाइसु एगसीइपयं ।।28।।

शब्दार्थ

नव=नौ, **बत्तीस**=बत्तीस, **तित्तीसा**=तैंतीस, **तिचत्त**=तयालीस, **अडवीस**=अट्ठाईस, **सोल**=सोलह, **वीस**=बीस, **पया**=पद, **मंगल**=नवकार मंत्र, **इरिया**=इरियावहिय सूत्र, **सक्कत्थयाइसु**=शक्रस्तव आदि में, **एगसीइ**=इक्यासी, **सयं**=सौ ।

भावार्थ

नवकार मंत्र में नौ, इरियावहिय में बत्तीस, शक्रस्तव आदि पाँच दंडक सूत्रों में क्रमशः 33, 43, 28, 16 और 20 पद हैं। इस प्रकार कुल 181 पद होते हैं।

विवेचन

विवक्षित अर्थ की समाप्ति न हो, तब तक के एक या अनेक अक्षरों के समूह को पद कहा जाता है। किसी भी पद द्वारा निश्चित अर्थ का बोध होता है।

सूत्र	पद संख्या
1. नवकार	9
2. इरियावहिय	32
3. शक्रस्तव	33
4. चैत्यस्तव	43
5. नामस्तव	28
6. श्रुतस्तव	16
7. सिद्धस्तव	20
कुल	**181 पद**

1. संपूर्ण नवकार में कुल 9 पद हैं।
2. इरियावहिय सूत्र में तस्स उत्तरी सहित 'ठामि काउसग्गं' तक 32 पद हैं।
3. शक्रस्तव में 33 पदों की गणना 'नमो जिणाणं जिअभयाणं' तक की गई है।
4. चैत्य स्तव में 43 पदों की गणना 'अरिहंत चेइयाणं' से लेकर संपूर्ण अन्नत्थ सूत्र तक की गई है।

5. नाम स्तव में `लोगस्स, से लेकर-सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु' तक 28 पद हैं।
6. पुक्खरवरदी में संपूर्ण चार गाथाओं में कुल 16 पद हैं।
7. सिद्धाणं बुद्धाणं की पाँच गाथाओं में कुल 20 पद हैं।

वर्ण और पदों की संख्या में अलग-अलग विवक्षा है।

`सव्वलोए' `सुअस्स भगवओ' `वेयावच्चगराणं संतिगराणं सम्मदिट्ठी समाहिगराणं' इत्यादि पदों के वर्णों की संख्या, संबंधित सूत्रों में जोड़ी गई है, जबकि पदों की संख्या में इनकी गणना नहीं की है।

दसवाँ द्वार 97 संपदाएँ

अट्ठऽट्ठ नवऽट्ठ य अट्ठवीस सोलस य वीस वीसामा।
कमसो मंगल-इरिया-सक्कत्थयाइसु सग-नउई ।।29।।

शब्दार्थ

अट्ठऽट्ठ=आठ-आठ, **नव**=नौ, **अट्ठ**=आठ, **य**=और, **अट्ठवीस**=अट्ठाईस, **सोलस**=सोलह, **य**=तथा, **वीस**=बीस, **वीसामा**=विश्रामस्थल, **कमसो**=क्रमशः, **मंगल**=नवकार मंत्र, **इरिया**=इरियावहिय सूत्र, **सक्कत्थ**=शक्रस्तव, **आइसु**=आदि में, **सग**=सात, **नउई**=90।

भावार्थ

नवकार मंत्र में 8, इरियावहिय सूत्र में 8, शक्रस्तव आदि पाँच दंडक सूत्रों में 9, 8, 28, 16 और 20 इस प्रकार कुल 97 संपदाएँ हैं।

विवेचन

इस गाथा में उपयोगी सूत्रों की संपदाएँ बतलाई हैं–

1. नवकार	8 संपदा
2. इरियावहिय	8 संपदा
3. शक्रस्तव	9 संपदा
4. चैत्यस्तव	8 संपदा
5. नामस्तव	28 संपदा
6. श्रुत स्तव	16 संपदा
7. सिद्धस्तव	20 संपदा

संपदा अर्थात् विश्राम स्थल। सूत्र बोलते समय जहाँ कुछ समय के लिए रुकने का हो, उसे संपदा कहते हैं।

प्रस्तुत गाथा में 7 सूत्रों की संपदाएँ बतलाई हैं।

'इच्छामि खमासमणो' 'जे अ अइआ सिद्धा' 'सव्वलोए' 'सुअस्स भगवओ' 'वेयावच्चगराणं' इत्यादि पदों की संपदाएँ नहीं गिनी गई हैं।

सामान्यतया पद्यबद्ध सूत्रों में एक गाथा के चार पद व चार संपदाएँ गिनी जाती हैं, परंतु नवकार मंत्र की चूलिका में चार पद हैं, किंतु संपदाएँ तीन ही हैं, क्योंकि नवकार के आठवें और नौवें पद की एक ही संपदा मानी गई है।

कुछ आचार्यों के मत से छठी संपदा 'एसो पंच नमुक्कारो-सव्व पावप्पणासणो' इन 16 अक्षरों की एक संपदा मानी गई है।

वन्नट्ठसट्ठि नवपय, नवकारे अट्ठ संपया तत्थ।
सग संपय पय तुल्ला, सत्तरक्खर अट्ठमी दुपया ।।30।।

शब्दार्थ

वन्न=वर्ण, **अट्ठसट्ठि**=अड़सठ, **नवपय**=नौ पद, **नवकारे**=नवकार मंत्र में, **अट्ठ**=आठ, **संपया**=संपदा, **तत्थ**=वहाँ, **सग संपय**=सात संपदा, **पय तुल्ला**=पद के अनुसार, **सत्तरक्खर**=सत्रह अक्षर, **अट्ठमी**=आठवीं, **दुपया**=दो पदवाली।

भावार्थ

नवकार में अड़सठ अक्षर, नौ पद तथा आठ संपदाएँ हैं। उसमें सात संपदा, पद के अनुसार हैं तथा आठवीं संपदा सत्रह अक्षरों की दो पदों की है।

विवेचन

नवकार के पाँच पदों में 7-5-7-7 और 9 अक्षर हैं, कुल 35 अक्षर हैं। उन प्रत्येक पद की 1-1 संपदा मानी जाती है, अतः इन पाँच पदों की 5 संपदाएँ हैं। चूलिका के चारों पदों में अंतिम दो पदों की 'मंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं हवइ मंगलं' के 17 अक्षरों की एक ही संपदा मानी गई है। अतः चूलिका में चार पद होने पर भी संपदाएँ तीन हैं।

इस प्रकार नवकार में 5 + 3 = 8 संपदाएँ हुईं ।

पणिवाय अक्खराइं, अट्ठावीसं तहा य इरियाए ।
नव-नउयमक्खरसयं, दु-तीस पय संपया अट्ठ ।।31।।

शब्दार्थ

पणिवाय=प्रणिपात सूत्र (खमासमण सूत्र), **अक्खराइं**=अक्षर, **अट्ठावीसं**=अट्ठाईस, **तहा य**=तथा, **इरियाए**=इरियावहिय सूत्र में, **नवनउय**=निन्यानवे, **अक्खर**=अक्षर, **सयं**=सौ, **दुतीस**=बत्तीस, **पय**=पद, **संपया**=संपदा, **अट्ठ**=आठ ।

भावार्थ

प्रणिपात सूत्र (खमासमण सूत्र में) अट्ठाईस अक्षर हैं तथा इरियावहिय सूत्र में 199 अक्षर, बत्तीस पद तथा आठ संपदाएँ हैं ।

विवेचन

इरियावहिय सूत्र `इच्छामि पडिक्कमिउं' से लेकर निग्घायणट्ठाए ठामि काउसग्गं' तक गिना जाता है । इस सूत्र में कुल 8 संपदाएँ हैं अर्थात् सूत्र बोलते समय आठ जगह थोड़ा विश्राम लेने का होता है ।

दुग दुग इग चउ इग पण, इगार छग इरियसंपयाइ पया ।
इच्छा इरि गम पाणा, जे मे एगिंदि अभि तस्स ।।32।।

शब्दार्थ

दुग दुग=दो=दो, **इग**=एक, **चउ इग**=चार-एक, **पण**=पाँच, **इगार**=ग्यारह, **छग**=छह, **इरिय**=इरियावहिय के, **संपयाइ पया**=संपदा के आदि पद, **इच्छा**=इच्छाकारेण, **इरि**=इरियावहियाए, **गम**=गमणागमणे, **पाणा**=पाणक्कमणे, **जे**=जे मे जीवा, **एगिंदि**=एगिंदिया, **अभि**=अभिहया, **तस्स**=तस्स उत्तरी ।

भावार्थ

इरियावहिय सूत्र की 8 संपदाओं में दो, दो, एक, चार, एक, पाँच, ग्यारह और छह पद हैं । इरियावहिय की संपदाओं के आदि पद इच्छा, इरि, गम, पाण, जे मे, एगिंदि, अभि, तस्स हैं ।

विवेचन

इरियावहिय सूत्र में कुल आठ संपदाएँ हैं। उन आठ संपदाओं में क्रमशः कितने-कितने पद हैं, उनकी संख्याओं का निर्देश इस गाथा में किया है तथा उन संपदाओं के आरंभ होनेवाले पदों का भी संकेत इसी गाथा में किया है।

पहली संपदा में दो पद हैं-जिनका प्रारंभ
'इच्छामि' पद से होता है।

दूसरी संपदा में दो पद हैं, जिनका प्रारंभ
'इरियावहियाए' से होता है।

तीसरी संपदा में एक पद है, जिसका प्रारंभ
'गमणागमणे' से होता है।

चौथी संपदा में चार पद हैं जिनका प्रारंभ
'पाणक्कमणे' से होता है।

पाँचवीं संपदा में एक पद है जिसका प्रारंभ
'जे मे जीवा' से होता है।

छठी संपदा में पाँच पद हैं, जिनका प्रारंभ
'एगिंदिया' से होता है।

सातवीं संपदा में ग्यारह पद हैं, जिनका प्रारंभ
'अभिहया' से होता है।

आठवीं संपदा में छह पद हैं, जिनका प्रारंभ
'तस्स उत्तरी' से होता है।

आठ संपदाओं के नाम

अब्भुवगमो निमित्तं, ओहेयर हेउ संगहे पंच।
जीव-विराहण-पडिक्कमण-भेयओ तिन्नि चूलाए ।।33।।

शब्दार्थ

अब्भुवगमो=अभ्युपगम (स्वीकार), **निमित्तं**=निमित्त, **ओह**=ओघ (सामान्य हेतु), **इयर हेउ**=इतर (विशेष हेतु), **संगहे**=संग्रह में, **पंच**=पाँच, **जीव**=जीव, **विराहण**=विराधना, **पडिक्कमण**=प्रतिक्रमण, **भेयओ**=भेद से, **तिन्नि**=तीन, **चूलाए**=चूलिका में ।

भावार्थ

अभ्युपगम, निमित्त, सामान्य और विशेष हेतु, संग्रह में पाँच और चूलिका में जीव, विराधना और प्रतिक्रमण के भेद से तीन संपदाएँ हैं ।

विवेचन

प्रायश्चित्त के 10 भेदों में इरियावहिय सूत्र में प्रायश्चित्त के दो भेदों का समावेश होता है ।

1) इरियावहिय सूत्र में पापों की आलोचना (गुरु भगवंत के पास अपने पापों के स्वीकार रूप) है ।

2) इरियावहिय सूत्र में जीवों की विराधना से हुए पापों का प्रतिक्रमण है ।

इस गाथा में इरियावहिय सूत्र में आनेवाली आठ संपदाओं के विशेष नामों का निर्देश किया है और उसमें आनेवाले विषय का निर्देश है ।

1) अभ्युपगम संपदा :- इस संपदा द्वारा साधक अपने पापों के प्रतिक्रमण करने का स्वीकार करता है ।

2) निमित्त संपदा :- यह आलोचना किन पाप कार्यों की करने की है ? उन पाप कार्यों का निर्देश इस निमित्त संपदा में किया गया है ।

3) ओघहेतु संपदा :- इस संपदा में पाप कार्यों के कारण सामान्य से बतलाए हैं ।

4) विशेष हेतु संपदा :- इस संपदा में पाप कार्यों के विशेष हेतु बतलाए हैं ।

5) संग्रह संपदा :- किन जीवों की विराधना हुई ? उस जीवभेद की विराधना का संग्रह इस संपदा द्वारा किया गया है ।

6) जीव संपदा :- इन्द्रियों के भेद से जीवों के पाँच भेद बतलाए गए हैं। उनकी विराधना होने की संभावना रहती है। इस संपदा द्वारा जीवों के भेदों का संग्रह किया गया है।

7. विराधना संपदा :- जीवों की विराधना किस-किस प्रकार से होती है, उन विराधना के प्रकारों का संग्रह इस संपदा में है।

8. प्रतिक्रमण संपदा :- इस संपदा द्वारा सभी दोषों के प्रतिक्रमण का स्वीकार किया गया है।

इरियावहिय की संपदाएँ एवं आदि पद

संपदा	संपदा नाम	पद	संपदा के आदि पद
1.	अभ्युपगम	2	इच्छामि पडिक्कमिउं
2.	निमित्त	2	इरियावहियाए विराहणाए
3.	ओघहेतु	1	गमणागमणे
4.	विशेषहेतु	4	पाणक्कमणे, बीअक्कमणे, हरिअक्कमणे ओसा उत्तिंग पणग-दग मट्टीमक्कडा संताणा संकमणे.
5.	संग्रह	1	जे मे जीवा विराहिया
6.	जीवसंपदा	5	एगिंदिया बेइंदिया तेइंदिया चउरिंदिया पंचिंदिया
7.	विराधना	11	अभिहया वत्तिया लेसिया संघाइया संघट्टिया परिसाविया किलामिया उद्दविया ठाणाओ ठाणं संकामिया जीवियाओ ववरोविया, तस्स मिच्छामि दुक्कडम्।
8.	प्रतिक्रमण	6	तस्स उत्तरीकरणेणं, पायच्छित्तकरणेणं, विसोहीकरणेणं, विसल्लीकरणेणं, पावाणं कम्माणं निग्घायणट्ठाए ठामि काउसग्गं।

शक्रस्तव की संपदाओं में पद संख्या एवं आदि पद

दु ति चउ पण पण पण दु, चउ ति पय सक्कत्थय-संपयाइ पया ।
नमु आइग पुरिसो लोगु, अभय धम्म प्प जिण सव्वं ।।34।।

शब्दार्थ

दु=दो, **ति**=तीन, **चउ**=चार, **पण**=पाँच, **पय**=पद, **सक्कत्थय**=शक्रस्तव, **संपयाइपया**=संपदा के आदि पद, **नमु**=नमुत्थुणं, **आइग**= आइगराणं, **पुरिसो**=पुरिसुत्तमाणं, **लोगु**=लोगुत्तमाणं, **अभय**=अभयदयाणं, **धम्म**=धम्मदयाणं, **अप्प**=अप्पडिहय, **जिण**=जिणाणं, **सव्वं**=सव्वन्नूणं ।

भावार्थ

शक्रस्तव की नौ संपदाओं में क्रमशः दो, तीन, चार, पाँच, पाँच, पाँच, दो, चार और तीन पद रहे हुए हैं । उन संपदाओं के आदि पद नमुत्थुणं, आइगराणं, पुरिसुत्तमाणं, लोगुत्तमाणं, अभयदयाणं, धम्मदयाणं अप्पडिहय, जिणाणं एवं सव्वन्नूणं आदि हैं ।

विवेचन

शक्रस्तव में 9 संपदाएँ हैं ।

1. पहली संपदा में दो पद हैं, जिसका आदि पद **'नमुत्थुणं'** है ।
2. दूसरी संपदा में तीन पद हैं, जिसके प्रारंभ का पद **'आइगराणं'** है ।
3. तीसरी संपदा में चार पद हैं, जिसके प्रारंभ का पद **'पुरिसुत्तमाणं'** है ।
4. चौथी संपदा में पाँच पद हैं, जिसके प्रारंभ का पद **'लोगुत्तमाणं'** है ।
5. पाँचवीं संपदा में पाँच पद हैं, जिसके प्रारंभ का पद **'अभयदयाणं'** है ।
6. छठी संपदा में पाँच पद हैं, जिसके प्रारंभ का पद **'धम्मदयाणं'** है ।
7. सातवीं संपदा में दो पद हैं, जिसके प्रारंभ का पद **'अप्पडिहय'** है ।
8. आठवीं संपदा में चार पद हैं, जिसके प्रारंभ का पद **'जिणाणं'** है ।
9. नौवीं संपदा में तीन पद हैं, जिसके प्रारंभ का पद **'सव्वन्नूणं'** है ।

संपदाओं के नाम

थोअव्व संपया ओह, इयर हेऊवओग तद्धेऊ ।
सविसेसुवओग स-रुव हेउ निय सम-फलय मुक्खे ॥35॥

शब्दार्थ

थोअव्व=स्तोतव्य, **संपया**=संपदा, **ओह**=ओघ, **इयर**=विशेष, **हेउ**=हेतु, **उवओग**=उपयोग, **तद्धेउ**=उसका हेतु, **सविसेसुवओग**=सविशेष उपयोग, **सरुव**=स्वरूप, **हेउ**=हेतु, **नियसम**=स्व समान, **फलय**=फल देनेवाली, **मुक्खे**=मोक्ष ।

भावार्थ

स्तोतव्य, ओघहेतु, विशेष हेतु, उपयोग, तद्हेतु, सविशेष उपयोग, स्वरूप, निजसमफलद और मोक्ष संपदाएँ हैं ।

विवेचन

इस गाथा में शक्र स्तव में आनेवाली 9 संपदाओं के नौ नामों का निर्देश किया है ।

1. स्तोतव्य संपदा :- स्तोतव्य अर्थात् स्तुति करने योग्य । इस सूत्र में स्तुति करने योग्य कौन है ? अर्थात् किनकी स्तुति की गई है ? यह बताने के लिए यह स्तोतव्य संपदा है । `अरिहंताणं भगवंताणं' इन दो पदों से यह कहा गया है कि अरिहंत-भगवंत स्तुति करने योग्य पात्र हैं ।

2. सामान्य हेतु संपदा :- अरिहंत भगवंतों को ही नमस्कार क्यों किया जाता है ? इसके तीन सामान्य हेतु हैं । इस संपदा द्वारा वे तीन सामान्य हेतु बतलाए हैं । इन तीन पदोंवाली यह दूसरी सामान्य हेतु संपदा है ।

3. विशेष हेतु संपदा :- अरिहंत भगवंत ही स्तुति करने योग्य क्यों हैं ? उसके चार विशेष हेतु हैं । इस संपदा द्वारा उन चार विशेष हेतुओं का वर्णन किया है ।

4. सामान्य उपयोग संपदा :- पहली स्तोतव्य संपदा के द्वारा जिनकी स्तुति की गई है, उनका आम जनता पर क्या उपकार है ? क्या

मात्र दृष्टि राग से प्रेरित होकर तो उनकी स्तुति नहीं कर रहे हैं ? अरिहंत परमात्मा अपने परार्थ गुण के कारण लोक में खूब उपकारी हैं । यह बताने के लिए पाँच पदों द्वारा यह सामान्य उपयोग संपदा बतलाई है ।

5. तद् हेतु संपदा :- श्री अरिहंत परमात्मा लोक में उपयोगी हैं, परंतु किस प्रकार उपयोगी हैं ? उपयोगी होने के क्या-क्या कारण हैं ? यह बताने के लिए उपयोग के हेतु रूप अर्थात् तद्हेतु संपदा कही गई है ।

6. सविशेष उपयोग संपदा :- सामान्य उपयोग मात्र से कोई व्यक्ति, परम स्तोतव्य नहीं बन सकता है, परंतु विशेष उपयोग, असाधारण उपयोग जिसका हो, वही व्यक्ति असाधारण स्तुति का विषय बन सकता है, यह बताने के लिए **'धम्मदयाणं'** आदि पाँच पदों द्वारा सविशेष उपयोग संपदा कही गई है ।

7. स्वरूप संपदा :- स्तोतव्य रूप जो अरिहंत परमात्मा हैं, उनके असाधारण व्यक्तित्व के स्वरूप का वर्णन दो पदों द्वारा बतलाया है, अरिहंत के असाधारण स्वरूप का बोध करानेवाली होने से इस संपदा का नाम स्वरूप संपदा है ।

8. निज सम फलद संपदा :- स्तुति करने का कुछ भी फल नहीं मिलता हो तो स्तुति करने का कोई अर्थ नहीं है, अरिहंत परमात्मा की यह विशेषता है कि उन्होंने जो स्वरूप (फल) प्राप्त किया है, वह फल अपनी शरण में आनेवाले को भी प्रदान करते हैं। वे परमात्मा शरणागत को अपने तुल्य फल देनेवाले होने से यह आठवीं संपदा 'निज सम फलद' है ।

9. मोक्ष संपदा :- अरिहंत भगवंतों ने साधना के बल पर साधना के अंतिम फल, मोक्ष को प्राप्त किया है । अपनी साधना का अंतिम फल मोक्ष ही है । उस मोक्ष का स्वरूप क्या है ? यह बतानेवाली नौवीं मोक्ष संपदा है ।

श्री अरिहंत परमात्मा के च्यवन, जन्म आदि प्रसंगों में इन्द्र महाराजा जिस सूत्र से परमात्मा की स्तुति करते हैं, उसे शक्रस्तव कहते हैं । इसी नमुत्थुणं सूत्र का दूसरा नाम **'शक्र स्तव'** है ।

इस शक्रस्तव में 33 पद हैं, इन पदों द्वारा अरिहंत परमात्मा के असाधारण गुणों का वर्णन किया गया है।

शक्र स्तव की संपदाएँ

क्रम	संपदा का नाम	पद	संपदा के प्रथम आदि पद
1.	स्तोतव्य संपदा	2	नमुत्थुणं अरिहंताणं भगवंताणं
2.	ओघहेतु संपदा	3	आइगराणं, तित्थयराणं, सयं संबुद्धाणं
3.	विशेष हेतु संपदा	4	पुरिसुत्तमाणं, पुरिससीहाणं, पुरिस-वर पुंडरीआणं, पुरिसवरगंध हत्थीणं
4	सामान्य उपयोगसंपदा	5	लोगुत्तमाणं, लोगनाहाणं, लोगहिआणं लोगपइवाणं, लोग पज्जोअगराणं
5	तद्हेतु संपदा	5	अभयदयाणं, चक्खुदयाणं, मग्गदयाणं सरणदयाणं बोहिदयाणं
6.	विशेष उपयोग संपदा	5	धम्मदयाणं, धम्मदेसयाणं, धम्मनायगाणं, धम्मसारहीणं, धम्मवर चाउरंतचक्कवट्टीणं
7.	स्वरूप संपदा	2	अप्पडिहय वरनाण दंसण धराणं, विअट्ट छउमाणं
8.	निजसमफलद संपदा	4	जिणाणं जावयाणं, तिन्नाणं तारयाणं, बुद्धाणं बोहयाणं, मुत्ताणं मोअगाणं
9.	मोक्ष संपदा	3	सव्वन्नूणं सव्वदरिसिणं सिव-मयल-मरुअ मणंत-मक्खय-मव्वाबाह-मपु-णरावित्ति सिद्धि गइ नाम- धेयं ठाणं संपत्ताणं नमोजिणाणं जिअभयाणं।

शक्रस्तव एवं चैत्यस्तव में पद एवं अक्षर

दो सग नउया वन्ना, नव संपय पय तित्तीस सक्कत्थए ।
चेइय थयट्ठ संपय, तिचत्त पय वन्न दु सय गुणतीसा ।।36।।

शब्दार्थ

दो सगनउया=दो सौ सत्तानवे, **वन्ना**=अक्षर, **नव संपय**=नौ संपदा, **पय**=पद, **तित्तीस**=तैंतीस, **सक्कथए**=शक्रस्तव में, **चेइय थय**=चैत्यस्तव, **अट्ठ संपय**=आठ संपदा, **तिचत्त**=तयालीस, **पय**=पद, **वन्न**=वर्ण, **दुसय गुणतीसा**=दो सौ उनतीस ।

भावार्थ

शक्रस्तव में 297 अक्षर, नौ संपदा और तैंतीस पद हैं ।

चैत्य स्तव में 229 अक्षर, आठ संपदा और तयालीस पद हैं ।

विवेचन

शक्रस्तव में लघु अक्षर 264 व गुरु अक्षर 33 हैं, अतः कुल 297 अक्षर हैं ।

अरिहंत चेइयाणं में अन्नत्थ सूत्र जोड़कर लघु अक्षर 200 तथा गुरु अक्षर 29 हैं । अतः कुल अक्षर 229 हैं ।

चैत्य स्तव में संपदाओं में पद संख्या

दु छ सग नव तिय छच्चउ, छप्पय चिइसंपया पया पढमा ।
अरिहं वंदण सद्धा अन्न सुहुम एव जा ताव ।।37।।

शब्दार्थ

दु=दो, **छ**=छह, **सग**=सात, **नव**=नौ, **तिय**=तीन, **छच्**=छह, **चउ**=चार, **छप्पय**=छह पदवाली, **चिइसंपया**=चैत्यवंदन की संपदाएँ, **पया**=पद, **पढमा**=प्रथम, **अरिहं**=अरिहंत, **वंदण**=वंदण वत्तियाए, **सद्धा**=सद्धाए, **अन्न**=अन्नत्थ, **सुहुम**=सुहुमेहिं, **एव**=एवमाइएहिं, **जा**=जाव अरिहंताणं, **ताव**=ताव कायं ।

भावार्थ

चैत्य स्तव की आठ संपदाएँ क्रमशः दो, छह, सात, नौ, तीन, छह, चार और छह पदोंवाली है। उनके प्रथम पद अरिहंत, वंदणवत्तियाए, सद्धाए, अन्नत्थ, सुहुमेहिं, एवमाइएहिं, जाव अरिहंताणं, तावकायं आदि हैं।

विवेचन

अरिहंत चेइयाणं का शास्त्रीय नाम **चैत्यस्तव** है। चैत्य अर्थात् जिन मंदिर या जिनप्रतिमा। यहाँ चैत्य शब्द से जिन प्रतिमा लेने का है।

श्री अरिहंत परमात्मा के जिनबिंबों के वंदन, पूजन, सत्कार आदि के फल को पाने के लिए इस सूत्र के माध्यम से कायोत्सर्ग किया जाता है।

इस चैत्यस्तव में कुल आठ संपदाएँ हैं।

1) पहली संपदा दो पदवाली है, जिसका प्रारंभ **अरिहंत चेइयाणं** से होता है।

2) दूसरी संपदा छह पदवाली है, जिसका प्रारंभ **वंदणवत्तियाए** से होता है।

3) तीसरी संपदा सात पदवाली है, जिसका प्रारंभ **सद्धाए** से होता है।

4) चौथी संपदा नौ पदवाली है, जिसका प्रारंभ **अन्नत्थ उससिएणं** से होता है।

5) पाँचवीं संपदा तीन पदवाली है, जिसका प्रारंभ **सुहुमेहिं अंग संचालेहिं** से होता है।

6) छठी संपदा छह पदवाली है, जिसका प्रारंभ **एवमाइएहिं आगारेहिं** से होता है।

7) सातवीं संपदा चार पदवाली है, जिसका प्रारंभ **जाव अरिहंताणं** से होता है।

8) आठवीं संपदा छह पदवाली है, जिसका प्रारंभ **तावकायं** से होता है।

चैत्य स्तव में आठ संपदाएँ

अब्भुवगमो निमित्तं, हेऊ इग बहु वयंत आगारा ।
आगंतुग आगारा, उस्सग्गावहि सरूव-ट्ठ ।।38।।

शब्दार्थ

अब्भुवगमो=अभ्युपगम, **निमित्तं**=निमित्त, **हेउ**=हेतु, **इग**=एक, **बहु**=बहु, **वयंत**=वचनांत, **आगारा**=अपवाद, **आगंतुग**=आगंतुक, **आगारा**=अपवाद, **उस्सग्ग**=कायोत्सर्ग, **अवहि**=अवधि, **सरूव**=स्वरूप, **अट्ठ**=आठ ।

भावार्थ

चैत्यस्तव में अभ्युपगम, निमित्त, हेतु, एक वचनांत आगार, बहु वचनांत आगार, आगंतुक आगार, कायोत्सर्ग की अवधि और स्वरूप ये आठ संपदाएँ हैं ।

विवेचन

अरिहंत चेइयाणं सूत्र, अन्नत्थ सूत्र के साथ गिना गया है । अरिहंत चेइयाणं सूत्र में तीन और अन्नत्थ सूत्र में पाँच संपदाएँ हैं ।

श्रावकों के लिए अनिवार्य कर्तव्यरूप जो छह उपधान हैं, उनमें चौथा उपधान चैत्य स्तव का होता है । उस चैत्य स्तव की वाचना के साथ में ही अन्नत्थ सूत्र की भी वाचना होती है, अतः यहाँ दोनों सूत्रों की संयुक्त संपदाएँ गिनकर चैत्यस्तव की आठ संपदाएँ कही गई हैं ।

1. अभ्युपगम संपदा :- किसी एक चैत्य में रही हुई जिन प्रतिमाओं के वंदन आदि के फल को पाने के लिए कायोत्सर्ग करने का स्वीकार होने से पहले दो पदों की अभ्युपगम संपदा है । **'अरिहंत चेइयाणं करेमि काउसग्गं'** अर्थात् अरिहंत के चैत्य के लिए मैं कायोत्सर्ग करता हूँ ।

2. निमित्त संपदा :- अरिहंत के चैत्यों के निमित्त कायोत्सर्ग क्यों किया जाता है ? उस कायोत्सर्ग का प्रयोजन क्या है ? यह बताने के लिए **'वंदणवत्तियाए'** आदि छह पदों की दूसरी निमित्त संपदा है ।

3. हेतु संपदा :- श्रद्धा आदि के बिना किया गया कायोत्सर्ग इष्ट फल को देने में सफल नहीं बनता है, अतः कायोत्सर्ग के हेतु अर्थात् साधन बताने के लिए **'सद्धाए'** आदि छह पदोंवाली तीसरी संपदा है ।

4. एक वचनान्त आगार संपदा :- अन्नत्थ सूत्र का दूसरा नाम आगार सूत्र है, इस सूत्र में कायोत्सर्ग संबंधी आगार, अपवादों का वर्णन है । कायोत्सर्ग संबंधी नौ अपवादों का निर्देश एक वचन में किया है । अन्नत्थ **'उस सिएणं'** से **पित्त मुच्छाए** तक के अपवाद एकवचन में हैं । उन नौ पदों की इस संपदा को एक वचनांत आगार संपदा कहा है ।

5. बहुवचनांत आगार संपदा :- 'अन्नत्थ सूत्र' अर्थात् आगार सूत्र में तीन आगार बहुवचन में दिए गए हैं, अतः इन तीन पदों की अलग संपदा कही गई है । **'सुहुमेहिं अंग संचालेहिं, सुहुमेहिं खेल संचालेहिं, सुहुमेहिं दिट्ठि संचालेहिं'** सूक्ष्म अंगों का हलन-चलन, सूक्ष्म कफ आदि का हलन-चलन एवं सूक्ष्म दृष्टि का हलन-चलन तीन आगारों में बहुवचन का प्रयोग किया गया है, अतः इन तीन पदों की अलग संपदा है ।

6. आगंतुक आगार संपदा :- अन्नत्थ सूत्र में **'एव माइएहिं'** से लेकर **'हुज्ज मे काउसग्गो'** तक के छह पदों की यह छठी आगंतुक आगार संपदा है । अग्नि, सर्पदंश, पंचेन्द्रियवध आदि बाह्य आगार हैं, ऐसे प्रसंग उपस्थित होने पर कायोत्सर्ग के बीच में भी स्थलांतर करे तो भी कायोत्सर्ग का भंग नहीं माना जाता है ।

7. कायोत्सर्ग अवधि संपदा :- कायोत्सर्ग की साधना करनेवाला साधक कायोत्सर्ग में कितने समय तक रहेगा ? इसकी काल मर्यादा का निर्णय इस संपदा के चार पदों द्वारा होता है । साधक यह प्रतिज्ञा करता है कि जब तक **नमो अरिहंताणं** बोलकर कायोत्सर्ग पूर्ण न करूँ, तब तक मैं कायोत्सर्ग में रहूंगा । कायोत्सर्ग की समय मर्यादा बतानेवाली यह संपदा है ।

8. स्वरूप संपदा :- कायोत्सर्ग का स्वरूप क्या है ? कायोत्सर्ग के स्वरूप को बतानेवाली चार पदोंवाली यह स्वरूप संपदा है ।

चैत्यस्तव की संपदाएँ

क्रम	संपदा का नाम	पद संख्या	संपदा के पद
1.	अभ्युपगम संपदा	2	अरिहंत चेइआणं करेमि काउस्सग्गं
2.	निमित्त संपदा	6	वंदणवत्तियाए, पूअणवत्तियाए सक्कारवत्तियाए, सम्माणवत्तियाए, बोहिलाभवत्तियाए, निरुवसग्गवत्तियाए
3	हेतु संपदा	7	सद्धाए, मेहाए, धिइए, धारणाए, अणुप्पेहाए, वड्ढमाणीए ठामि काउसग्गं.
4	एकवचनांत आगार संपदा	9	अन्नत्थ उससिएणं, निससीएणं, खासिएणं, छीएणं, जंभाइएणं, उड्डुएणं, वायनिसग्गेणं, भमलीए, पित्तमु च्छाए
5.	बहुवचनांत आगार संपदा	3	सुहुमेहिं अंगसंचालेहिं, सुहुमेहिं खेल संचालेहिं सुहुमेहिं दिट्ठिसंचालेहिं
6.	आगंतुक आगार संपदा	6	एवमाइएहिं आगारेहिं अभग्गो अविराहिओ हुज्ज मे काउस्सग्गो
7	कायोत्सर्गावधि संपदा	4	जाव अरिहंताणं भगवंताणं नमुक्कारेणं न पारेमि
8	स्वरूप संपदा	6	ताव कायं ठाणेणं मोणेणं झाणेणं अप्पाणं वोसिरामि

नामथयाइसु संपय, पय सम अडवीस सोल वीस कमा ।
अदुरुत्तवन्न दोसट्ठ-दुसयसोलट्ठनउअसयं ।।39।।

शब्दार्थ

नामथय=नाम स्तव, **आइसु**=आदि में, **संपय**=संपदा, **पय सम**=पद समान, **अडवीस**=अट्ठाईस, **सोल**=सोलह, **वीस**=बीस, **कमा**=क्रमशः, **अदुरुत्त**=पुनः नहीं कहे गए, **वन्न**=वर्ण, **दोसट्ठ**=260, **दुसयसोल**=216, **अट्ठनउ असयं**=198 ।

भावार्थ

लोगस्स, पुक्खर वरदी तथा सिद्धाणं बुद्धाणं में पद के समान संपदाएँ होने से क्रमशः 28, 16 व 20 पद व संपदाएँ हैं तथा अक्षर 260, 216 तथा 198 हैं ।

विवेचन

चैत्यवंदन संबंधी पाँच दंडकों में से शक्रस्तव और चैत्यस्तव संबंधी वर्ण, पद और संपदाओं का वर्णन हो चुका है । प्रस्तुत गाथा में नाम स्तव, श्रुतस्तव और सिद्धस्तव संबंधी पद, संपदा और अक्षरों का निर्देश कर रहे हैं ।

शक्रस्तव और चैत्यस्तव की रचना गद्य में है, जबकि नामस्तव, श्रुतस्तव और सिद्धस्तव की रचना पद्य में है ।

पद्य रचना में पद के अनुसार संपदाएँ मानी गई हैं । एक श्लोक में चार पद होते हैं तो उस श्लोक में चार संपदा अर्थात् विराम स्थल कहे गए हैं ।

नाम स्तव अर्थात् लोगस्स सूत्र में 7 श्लोक अर्थात् गाथाएँ हैं अतः उसमें 28 पद व 28 संपदाएँ हैं ।

श्रुत स्तव में चार श्लोक अर्थात् चार गाथाएँ हैं, अतः उसमें 16 पद और 16 संपदाएँ हैं ।

सिद्धस्तव में पाँच श्लोक अर्थात् पाँच गाथाएँ हैं, अतः उसमें 20 पद और 20 संपदाएँ हैं ।

लोगस्स सूत्र में 'सव्वलोए' पद के अक्षरों को जोड़ते हुए कुल 260 अक्षर कहे गए हैं ।

पुक्खरवरदी सूत्र में **'सुअस्स भगवओ'** के अक्षर जोड़ते हुए कुल 216 अक्षर कहे गए हैं ।

सिद्धाणं बुद्धाणं सूत्र में **'वेयावच्चगराणं संतिगराणं सम्मदिट्ठि समाहिगराणं'** के अक्षरों को जोड़ते हुए 198 अक्षर कहे गए हैं ।

पणिहाणि दुवन्नसयं, कमेण सग-ति चउवीस तित्तीसा ।
गुणतीस अट्ठवीसा, चउतीसि गतीस बार गुरुवन्ना ।।40।।

शब्दार्थ

पणिहाणि=प्रणिधान में, **दुवन्नसयं**=152, **कमेण**=क्रमशः, **सग**=सात, **ति**=तीन, **चउवीस**=चौबीस, **तित्तीसा**=तैंतीस, **गुणतीस**=उनतीस, **अट्ठवीसा**=अट्ठाईस, **चउतीस**=चौंतीस, **इगतीस**=इकतीस, **बार**=बारह, **गुरुवन्ना**=संयुक्ताक्षर ।

भावार्थ

तीन प्रणिधान सूत्रों में कुल 152 अक्षर हैं । नवकार में 7, खमासमण सूत्र में 3, इरियावहिय सूत्र में 24, शक्रस्तव में 33, चैत्यस्तव में 29, नामस्तव में 28, श्रुतस्तव में 34, सिद्धस्तव में 31 तथा प्रणिधान सूत्र में 12 गुरु अक्षर हैं ।

विवेचन

संयुक्ताक्षर को गुरु अक्षर कहा जाता है । ऐसे गुरु अक्षर नवकार में 7, खमासमण सूत्र में 3, इरियावहिय में 24, शक्रस्तव में 33, चैत्यस्तव में 29, नामस्तव में 28, श्रुतस्तव में 34, सिद्ध स्तव में 31 तथा प्रणिधान सूत्र (जावंति, जावंत और जयवीयराय सूत्र की दो गाथा) में 12 गुरु अक्षर हैं ।

कुछ सूत्रों में गुरु अक्षरों की संख्या के संदर्भ में मतांतर भी हैं, जो इस प्रकार हैं -

1) नवकार में **'प्पणासणो'** के स्थान पर **पणासणो** कहते हैं, अतः नवकार में 7 के बदले 6 ही गुरु अक्षर होते हैं ।

2) इरियावहिय में `ठाणाओ ठाणं' के बदले `ठाणाओट्ठाणं' कहते हैं, अतः गुरु अक्षर 24 के बदले 25 हो जाते हैं ।

3) नमुत्थुणं में विअट्टछउमाणं के बदले `विअट्टच्छउमाणं' कहते हैं, अतः गुरु अक्षर 33 के बदले 34 हो जाते हैं ।

4) चैत्यस्तव दंडक में `काउस्सग्ग' के बदले काउसग्ग गिनते हैं । यह काउसग्ग शब्द तीन बार आता है अतः तीन गुरु अक्षर घट जाते हैं । अतः 29 के बदले 26 गुरु अक्षर होते हैं ।

5) लोगस्स सूत्र में चउवीसंपि के बदले चउव्वीसंपि कहते हैं, अतः 28 के बदले 29 गुरु अक्षर हो जाते हैं ।

पुक्खरवरदी में `देवंनाग' के बदले `देवन्नाग' कहते हैं, अतः 34 के बदले 35 गुरु अक्षर होते हैं ।

गुरु अक्षरों को छोड़कर शेष लघु अक्षर कहलाते हैं। नवकार में 61, खमासमण सूत्र में 25, इरियावहिय में 175, नमुत्थुणं में 264, चैत्यस्तव में 200, लोगस्स में 232, पुक्खरवरदी में 182, सिद्धाणं बुद्धाणं में 167 और प्रणिधान त्रिक में 140 लघु वर्ण समझने चाहिए ।

चैत्यवंदन दरम्यान इन नौ सूत्रों को छोडकर अन्य भी थोय, स्तवन व चैत्यवंदन का उपयोग होता है, परंतु वे नियत नहीं होने से उनके अक्षर आदि की गणना नहीं की गई है ।

सूत्र का आदान नाम	सूत्र का गौण नाम	पद	संपदा	गुरु अक्षर	लघु अक्षर	कुल अक्षर
1. नवकार	पंचमंगल महाश्रुतस्कंध	9	8	7	61	68
2. इच्छामि खमा.	प्रणिपात सूत्र	-	-	3	25	28
3. इरियावहिय सूत्र (तस्स उत्तरी के साथ)	प्रतिक्रमण श्रुतस्कंध	32	8	24	175	199
4. नमुत्थुणं	शक्रस्तव या प्रणिपात दंडक	33	9	33	264	297

5. अरिहंतचेइयाणं अन्नत्थ सहित	चैत्यस्तव	43	8	29	200	229
6. लोगस्स	नामस्तव	28	28	28	232	260
7. पुक्खरवर	श्रुतस्तव	16	16	34	182	216
8. सिद्धाणं बुद्धाणं	सिद्धस्तव	20	20	31	167	198
9. जावंति चेइ	चैत्यवंदन सूत्र	-	-	3	32	35
10. जावंत के वि	मुनिवंदन सूत्र	-	-	1	37	38
11. जयवीयराय (दो गाथा)	प्रार्थना सूत्र	-	-	8	71	79

अनुयोग द्वार नाम के आगम ग्रंथ में कहा है कि **सूत्र के पहले पदवाले नाम को आदान नाम कहते हैं और गुणवाचक नाम को गौण नाम कहते हैं ।** नवकार यह आदान नाम नहीं है, वह अनादि नाम है ।

5 दंडक और 12 अधिकार

पण दंडा सक्कत्थय, चेइअ नाम सुअ सिद्धथय इत्थ ।
दो इग दो दो पंच य, अहिगारा बारस कमेण ।।41।।

शब्दार्थ

पण=पाँच, **दंडा**=दंडक, **सक्कत्थय**=शक्रस्तव, **चेइय**=चैत्यस्तव, **नाम**=नामस्तव, **सुअ**=श्रुत स्तव, **सिद्धथय**=सिद्धस्तव, **इत्थ**=यहाँ पर, **दो**=दो, **इग**=एक, **पंच**=पाँच, **य**=और, **अहिगारा**=अधिकार, **बारस**=बारह, **कमेण**=क्रमशः ।

भावार्थ

शक्रस्तव, चैत्यस्तव, नामस्तव, श्रुत स्तव और सिद्धस्तव, ये पाँच दंडक सूत्र हैं । इनमें क्रमशः 2, 1, 2, 2, और 5 ये 12 अधिकार हैं ।

विवेचन

तारक तीर्थंकर परमात्मा का जब जन्म होता है, तब सौधर्म देवलोक में रहे शक्र नाम के इन्द्र महाराजा अपने सिंहासन से नीचे उतरकर इस सूत्र

के द्वारा प्रभु की स्तवना करते हैं, इसलिए इस सूत्र को **'शक्र स्तव'** कहा जाता है। 'शक्र स्तव' यह इस सूत्र का गौणनाम है और 'नमुत्थुणं' इस सूत्र का आदान नाम है। इस सूत्र में चैत्यवंदन संबंधी दो अधिकार हैं।

इस सूत्र में श्री अरिहंत परमात्मा के भावनिक्षेप के स्वरूप का बहुत ही सुंदर वर्णन किया गया है।

चैत्य संबंधी स्तुति और कायोत्सर्ग को बतानेवाला होने से अरिहंत चेइयाणं सूत्र का गौण नाम 'चैत्यस्तव' है और 'अरिहंत चेइयाणं' यह आदान नाम है। इसमें चैत्यवन्दन सम्बन्धी अधिकार है।

इस अवसर्पिणी काल में हुए 24 तीर्थंकर परमात्मा की नाम निक्षेप द्वारा स्तुति-स्तवना होने से 'नाम स्तव' यह लोगस्स सूत्र का गौण नाम है और 'लोगस्स' यह आदान नाम है। इस सूत्र में चैत्यवंदन संबंधी दो अधिकार हैं। श्रुत अर्थात् सिद्धांत की स्तवना रूप होने से 'पुक्खरवरदी' सूत्र का 'श्रुत-स्तव' यह गौण नाम है और 'पुक्खरवरदी' यह आदान नाम है। इस सूत्र में चैत्यवंदन संबंधी दो अधिकार हैं।

सिद्ध भगवंतों की स्तुति रूप होने से **'सिद्धाणं बुद्धाणं'** सूत्र का 'सिद्धस्तव' यह गौण नाम है और 'सिद्धाणं बुद्धाणं' यह आदान नाम है। इस सूत्र में चैत्यवंदन संबंधी पाँच अधिकार आते हैं।

ये पाँच सूत्र चैत्यवंदन में मुख्य होने से एवं दंड की तरह सरल होने से दंडक सूत्र कहलाते हैं।

इन पाँच सूत्रों में चैत्यवंदन संबंधी कुल 12 अधिकार बतलाए हैं।

12 अधिकारों के आदि पद

नमु जे अ अरिहं लोग, सव्व पुक्ख तम सिद्ध जो देवा।
उज्जिं चत्ता वेयावच्चग अहिगार पढम पया ॥42॥

शब्दार्थ

नमु=नमुत्थुणं, **जे अ**=जे अइया, **अरिहं**=अरिहंत चेइयाणं, **लोग**=लोगस्स, **सव्व**=सव्वलोए, **पुक्ख**=पुक्खरवरदी, **तम**=तमतिमिर,

सिद्ध=सिद्धाणं बुद्धाणं, **जो**=जो देवाण, **उज्जिं**=उज्जिंत, **चत्ता**=चत्तारि, **वेयावच्चग**=वेयावच्चगराणं, **अहिगार**=अधिकार, **पढमपया**=प्रथम पद ।

भावार्थ

नमुत्थुणं, जे अ अइया सिद्धा, अरिहंत चेइयाणं, लोगस्स उज्जोअगरे, सव्वलोए, अरिहंत चेइयाणं, पुक्खरवरदीवड्ढे, तम तिमिर पडलविद्धं, सिद्धाणं बुद्धाणं, जो देवाण वि देवो, उज्जिंतसेलसिहरे, चत्तारि अट्ठ, वेयावच्चगराणं-ये बारह अधिकारों के प्रथम आदि पद हैं ।

विवेचन

चैत्यवंदन के जो बारह अधिकार हैं, उन अधिकारों के प्रारंभ के पद इस गाथा में दिये गए हैं ।

(1) शक्रस्तव में दो अधिकारों के आदि पद–

1) नमुत्थुणं 2) जे अ अइयासिद्धा

(2) चैत्यस्तव के एक अधिकार में प्रारंभ का आदि पद–

1) अरिहंत चेइयाणं

(3) नाम स्तव दो अधिकार में प्रारंभ के आदि पद–

1) लोगस्स उज्जोअगरे

2) सव्वलोए अरिहंत चेइयाणं

(4) श्रुतस्तव के दो अधिकार में प्रारंभ के आदि पद

1) पुक्खर वरदीवड्ढे

2) तम तिमिर पडल विद्धंसणस्स

(5) सिद्धस्तव के पाँच अधिकार में प्रारंभ के आदि पद

1) सिद्धाणं बुद्धाणं

2) जो देवाण वि देवो

3) उज्जिंतसेलसिहरे

4) चत्तारि अट्ठ दस दोय

5) वेयावच्चगराणं संतिगराणं

अधिकार और स्तवना

पढमहिगारे वंदे, भावजिणे बीयए उ दव्वजिणे ।
इग चेइय ठवण जिणे, तइय चउत्थंमि नाम जिणे ।।43।।

शब्दार्थ

पढमहिगारे=प्रथम अधिकार में, **वंदे**=मैं वंदन करता हूँ, **भावजिणे**=भावजिन को, **बीयअंमि**=दूसरे अधिकार में, **दव्वजिणे**=द्रव्य जिन को, **इगचेइय**=एक चैत्य, **ठवण जिणे**=स्थापना जिन को, **तइय**=तीसरे अधिकार में, **चउत्थंमि**=चौथे अधिकार में, **नाम जिणे**=नाम जिन को ।

भावार्थ

प्रथम अधिकार में भावजिन, दूसरे अधिकार में द्रव्य जिन, तीसरे अधिकार में एक चैत्य के स्थापना जिन और चौथे अधिकार में नाम जिन को मैं वंदन करता हूँ ।

विवेचन

तारक तीर्थंकर परमात्मा की भक्ति उनके चारों निक्षेपों द्वारा हो सकती है ।

तीर्थंकर परमात्मा के कुल चार निक्षेप होते हैं नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव ।

चैत्यवंदन के बारह अधिकारों में प्रथम चार अधिकारों में तारक तीर्थंकर परमात्मा के नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव तीर्थंकर के प्रति नमस्कार भाव अभिव्यक्त किया है ।

यद्यपि चार निक्षेपों में प्रथम नाम निक्षेप आता है, परंतु चैत्यवंदन के 12 अधिकारों में प्रथम भाव जिन का अधिकार है ।

1. प्रथम अधिकार में भाव जिन

प्रथम अधिकार-भाव जिन शक्रस्तव में `नमुत्थुणं' से लेकर **'नमो जिणाणं जिअभयाणं'** तक प्रथम अधिकार है । इस अधिकार में घाति कर्मों के क्षय के बाद तीर्थंकर नाम कर्म के विपाकोदयवाले तीर्थंकर परमात्मा को

नमस्कार किया है। ये भाव जिन पृथ्वीतल पर विचरण करते हुए हजारों आत्माओं को धर्मबोध प्रदान कर मोक्षमार्ग बतलाते हैं।

तारक परमात्मा की उस अवस्था को लक्ष्य में रखकर इस अधिकार में उन भाव जिन को वंदन किया है।

2. दूसरे अधिकार में द्रव्य जिन

जगत् में व्यतीत हुए भाव और भविष्यकाल में होनेवाले भाव का जो कारण होता है, उसे द्रव्य कहा जाता है।

'नमुत्थुणं' सूत्र की अंतिम गाथा-

''जे अ अइया सिद्धा, जे अ भविस्संति णागए काले।
संपइ अ वट्टमाणा, सव्वे तिविहेण वंदामि ॥''

इस गाथा में भूतकाल और भविष्यकाल के तीर्थंकरों को वंदना की गई है।

जिन्होंने पूर्व के तीसरे भव में तीर्थंकर नाम कर्म निकाचित किया है, जो प्रदेशोदय से तीर्थंकर नाम कर्म के उदयवाले हैं, ऐसे तीर्थंकर भगवंत जिन्होंने अभी तक केवलज्ञान प्राप्त नहीं किया है, तब तक वे द्रव्यजिन कहलाते हैं।

भाव जिन के उभय पार्श्ववर्ती अवस्था में रहे हुए तीर्थंकर द्रव्य जिन कहलाते हैं। इन द्रव्य तीर्थंकरों की इस दूसरे अधिकार में वंदना की गई है।

3. तीसरे अधिकार में स्थापना जिन

अरिहंत परमात्मा की प्रतिमा को स्थापना जिन कहा जाता है।

'अरिहंत चेइयाणं' से **'ठामि काउसग्गं'** तक यह तीसरा अधिकार है। इस सूत्र में, जिन चैत्य में चैत्यवंदना करने की है, उस चैत्य में रहे हुए सभी स्थापना जिन अर्थात् सभी प्रतिमाओं की वंदना की जाती है।

'धर्म संग्रह' की टीका में यह अधिकार **'अरिहंत चेइयाणं'** से लेकर अन्नत्थसूत्र एक नवकार का कायोत्सर्ग और उसके ऊपर जो एक थोय (स्तुति) बोली जाती है, तब तक माना गया है।

4. चौथे अधिकार में नाम जिन

अरिहंत परमात्मा के व्यक्तिगत नाम को नाम जिन कहा जाता है जैसे ऋषभदेव, महावीर स्वामी आदि।

'लोगस्स' सूत्र में इस अवसर्पिणी काल के भरत क्षेत्र में हुए सभी 24 तीर्थंकर परमात्मा के नाम का उल्लेख किया गया है, साथ में उनके नाम-स्मरण के साथ उन्हें वंदन भी किया गया है।

इस प्रकार इन चार अधिकारों में पश्चानुपूर्वी से (उलटे क्रम से) भाव द्रव्य, स्थापना और नाम निक्षेप से प्रभु की भक्ति की गई है।

आठ अधिकार

तिहुअण ठवण जिणे पुण, पंचमए विहरमाण जिण छट्ठे।
सत्तमए सुयनाणं, अट्ठमए सव्वसिद्ध थुई ॥44॥
तित्थाहिव वीरथुई नवमे दसमे य उज्जयंत थुई।
अट्ठावयाइ इगदिसि, सुदिट्ठिसुर समरणा चरिमे ॥45॥

शब्दार्थ

तिहुअण=त्रिभुवन, **ठवणजिणे**=स्थापना जिन, **पुण**=पुनः, **पंचमए**=पाँचवें अधिकार में, **विहरमाण**=विचरण करते हुए, **जिण**=जिन, **छट्ठे**=छठे अधिकार में, **सत्तमए**=सातवें अधिकार में, **सुयनाणं**=श्रुत ज्ञान, **अट्ठमए**=आठवें अधिकार में, **सव्वसिद्ध थुई**=सभी सिद्धों की स्तुति, **तित्थाहिव**=तीर्थाधिप, **वीर थुई**=वीर प्रभु की स्तुति, **नवमे**=नौवें अधिकार में, **दसमे**=दसवें अधिकार में, **उज्जयंत**=गिरनार, **थुई**=स्तुति, **अट्ठावयाइ**=अष्टापद आदि, **इगदिसि**=ग्यारहवें अधिकार में, **सुदिट्ठि**=सम्यग्दृष्टि, **सुरसमरणा**=देवता का स्मरण, **चरिमे**=अंतिम अधिकार में।

भावार्थ

पाँचवें अधिकार में तीन जगत् में स्थापना निक्षेप में रहे हुए जिनेश्वर भगवंत, छठे अधिकार में विचरण करते हुए जिनेश्वर भगवंत, सातवें अधिकार में श्रुतज्ञान, आठवें अधिकार में सभी सिद्ध भगवंतों की स्तुति है।

नौवें अधिकार में शासन के अधिपति श्री महावीर प्रभु की स्तुति है, दसवें अधिकार में श्री गिरनार तीर्थ के अधिपति की स्तुति है। ग्यारहवें अधिकार में अष्टापद तीर्थ की और अंतिम अधिकार में सम्यग्दृष्टि देवों का स्मरण है।

विवेचन

पाँचवें अधिकार में त्रिभुवन की जिन प्रतिमाएँ–

ऊर्ध्वलोक, अधोलोक और तिर्च्छालोक में अनेक शाश्वत-अशाश्वत जिन प्रतिमाएँ हैं। उन प्रतिमाओं के वंदन-पूजन-सत्कार-सन्मान के फल को प्राप्त करने के लिए **'सव्वलोए अरिहंतचेइयाणं'** के माध्यम से कायोत्सर्ग कर उसके ऊपर एक स्तुति बोली जाती है। यह चैत्यवंदन का पाँचवाँ अधिकार है।

छठे अधिकार में विहरमान जिन को वंदन–

चैत्यवंदन के छठे अधिकार में **पुक्खरवरदी** की पहली गाथा बोली जाती है। इस गाथा के द्वारा ढाई द्वीप में वर्तमान काल में 5 महाविदेह की 160 विजयों में से 20 विजयों में रहे हुए सीमंधर स्वामी आदि 20 तीर्थंकर परमात्मा को वंदन किया जाता है। ये तारक परमात्मा अपनी धर्मदेशना द्वारा जगत् के जीवों पर महान् उपकार कर रहे हैं। ऐसे तारक परमात्मा के उपकारों को याद कर इस अधिकार द्वारा उन्हें वंदन किया जाता है।

सातवें अधिकार में श्रुतज्ञान को वंदना

तारक तीर्थंकर परमात्मा केवलज्ञान की प्राप्ति के बाद शासन की स्थापना करते हैं, परंतु उन्हें भी जगत् के जीवों पर उपकार करने के लिए द्रव्य श्रुत का आलंबन लेना पड़ता है। प्रभु की वाणी को सुनकर श्रोताओं को जो धर्मबोध होता है, वह भाव श्रुत है।

पाँच ज्ञानों में चार ज्ञान मूक कहलाते हैं, जगत् के जीवों पर उपकार करने में एक श्रुतज्ञान ही समर्थ है। चैत्यवंदन में उस श्रुतज्ञान को वंदन करने का यह सातवाँ अधिकार है।

पुक्खरवरदी सूत्र का गौणनाम 'श्रुतस्तव' है। इस सूत्र की दूसरी गाथा से लेकर चौथी गाथा तथा **'सुअस्स भगवओ'** से लेकर तीसरी थोय तक श्रुतज्ञान को वंदना है। श्रुतज्ञान को वंदन करने से अपने ज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम होता है।

आठवें अधिकार में सभी सिद्धों को वंदना

चैत्यवंदन के आठवें अधिकार में आठों प्रकार के कर्मों के बंधन से

सर्वथा मुक्त बने हुए सिद्ध भगवंतों को वंदन किया जाता है। कर्म के कलंक से सर्वथा रहित, आत्मा के पूर्ण विशुद्ध स्वरूप को प्राप्त सिद्ध भगवंतों को नमस्कार करने से हमारी आत्मा में भी कर्म के बंधन से मुक्त होने की शक्ति प्राप्त होती है।

नौवें अधिकार में महावीर प्रभु की स्तुति

चैत्यवंदन के नौवें अधिकार में वर्तमान शासन के अधिपति श्री महावीर प्रभु की स्तवना की गई है। सिद्धाणं बुद्धाणं की दूसरी और तीसरी गाथा **'जो देवाण वि देवो'** तथा **'इक्को वि नमुक्कारो'** इन गाथाओं द्वारा महावीरप्रभु की स्तुति की गई है। वर्तमान समय में महावीर प्रभु का शासन चल रहा है, वे हमारे निकट के महा उपकारी हैं, अतः उनको वंदना की गई है।

दसवें अधिकार में नेमिनाथ प्रभु की स्तुति

गिरनार तीर्थ पर नेमिनाथ प्रभु के दीक्षा, केवलज्ञान और निर्वाण ये तीन कल्याणक हुए हैं। सिद्धाणं बुद्धाणं सूत्र की चौथी गाथा द्वारा नेमिनाथ प्रभु की स्तुति की गई है। नेमिनाथ प्रभु को वंदन-नमस्कार करने से हमें ब्रह्मचर्य-पालन का विशेष बल प्राप्त होता है।

ग्यारहवें अधिकार में अष्टापद आदि तीर्थों की स्तवना

चैत्यवंदन के ग्यारहवें अधिकार में सिद्धाणं बुद्धाणं की पाँचवीं गाथा आती है। इस अधिकार में अष्टापद तीर्थ पर चारों दिशाओं में रहे हुए चार, आठ, दस और दो अर्थात् कुल 24 जिनेश्वर भगवंतों की स्तवना की गई है।

इस अधिकार में भिन्न-भिन्न संख्याओं से की गई वंदना इस प्रकार है-

1) 4 + 8 + 10 + 2 = 24 अष्टापद पर्वत पर चारों दिशाओं में रहे 24 जिनेश्वरों की वंदना होती है।

2) 4 x 8 = 32 तथा 10 x 2 = 20, 32 + 20 = 52 इस प्रकार नंदीश्वर द्वीप पर रहे बावन जिनालय चैत्य में रही प्रतिमाओं की वंदना होती है।

3) चत्त + अरि अर्थात् जिन्होंने आत्मा के अंतरंग शत्रुओं का त्याग किया है, ऐसे 8 + 10 + 2 = 20 सम्मेतशिखर पर्वत पर निर्वाण पाए हुए 20 तीर्थंकरों को वंदना होती है।

4) उत्कृष्ट से एक साथ में 20 तीर्थंकर परमात्माओं का जन्म होता है, उन 20 तीर्थंकरों को वंदना होती है ।

5) वर्तमान काल में महाविदेह क्षेत्र में 20 तीर्थंकर परमात्मा पृथ्वीतल पर विचरण कर भव्य जीवों को प्रतिबोध दे रहे हैं, ऐसे 20 तीर्थंकरों को वंदना ।

6) 20 में चार का भाग देने पर 5 आते हैं, उसमें अट्ठदस अर्थात् 8 + 10 = 18 जोड़ने पर 23 होते हैं । इस अवसर्पिणी काल में शत्रुंजय महातीर्थ पर जिनके समवसरण रचे गए, ऐसे 23 तीर्थंकरों को वंदना होती है ।

7) 8 x 10 = 80, 80 x 2 = 160 इस प्रकार महाविदेह क्षेत्र में उत्कृष्ट से विहार करनेवाले 160 तीर्थंकर परमात्मा को वंदना होती है ।

8) 8 + 10 = 18 x 4 = 72 भूत, भविष्यत् और वर्तमान की तीन चौबीसी, जो भरत और ऐरावत क्षेत्र में होती हैं, उनको वंदना होती है ।

9) 4 + 8 = 12, 12 x 10 = 120, 120 x 2 = 240 पाँच भरत और पाँच ऐरावत में इस अवसर्पिणी काल में हुई 10 चौबीसी के 240 जिनेश्वर भगवंतों को वंदना होती है ।

10) 8 का वर्ग 64, 10 का वर्ग 100, 64 + 100 = 164 उसमें 4 + 2 = 6 जोड़ने पर (164 + 6) = 170 होते हैं । ढाई द्वीप में उत्कृष्ट से रहे हुए 170 जिनेश्वर को वंदना होती है ।

11) चत्तारि अर्थात् चार देवलोक (अनुत्तर, ग्रैवेयक + कल्प + ज्योतिषी) अट्ठ अर्थात् व्यंतर निकाय में आठ, दस अर्थात् भवनपति में दस और दोय अर्थात् अधोलोक और तिच्छर्रालोक के दो प्रकार के मनुष्यलोक में शाश्वत और अशाश्वत दोनों प्रकार की प्रतिमाओं को वंदना । इस प्रकार तीनों लोकों की सभी प्रतिमाओं की वंदना हो जाती है ।

(इस गाथा की टीका में अन्य भी अर्थ किए गए हैं । विशेष जिज्ञासु वहाँ से देखें ।)

इस प्रकार सिद्धाणं बुद्धाणं सिद्धस्तव के एक ही दंडक में आठवाँ-नौवाँ-दसवाँ और ग्यारहवाँ ये चार अधिकार हैं । चार अधिकार की तीन गाथाएँ गणधर भगवंत द्वारा विरचित हैं ।

प्राचीन काल में चैत्यवंदन के अंत में कही जानेवाली ये ही तीन स्तुतियाँ हैं ।

उसके बाद के दो अधिकारों की दो गाथाएँ गीतार्थ महापुरुषों ने बाद में जोड़ी हैं ।

बारहवें अधिकार में सम्यग्दृष्टि देवों का स्मरण

वेयावच्चगराणं से लेकर संपूर्ण अन्नत्थ और एक नवकार के कायोत्सर्ग के बाद कही जानेवाली चौथी स्तुति तक यह बारहवाँ अधिकार है । इस अधिकार में सम्यग्दृष्टि देवों को वंदन नहीं, बल्कि उनका स्मरण है ।

सम्यग्दृष्टि देव साधना मार्ग में आनेवाली आपत्तियों में मददरूप बनते हैं ।

नव अहिगारा इह ललियवित्थरावित्तिमाइ अणुसारा ।
तिन्नि सुअ परंपरया, बीओ दसमो इगारसमो ।।46।।

शब्दार्थ

नव=नौ, **अहिगारा**=अधिकार, **इह**=यहाँ, **ललियवित्थरा**=ललित विस्तरा, **वित्तिमाइ**=वृत्ति आदि, **अणुसारा**=अनुसार, **तिन्नि**=तीन, **सुअपरंपरया**=श्रुत परंपरा से, **बीओ**=दूसरा, **दसमो**=दसवाँ, **इगारसमो**=ग्यारहवाँ ।

भावार्थ

यहाँ 9 अधिकार श्री ललितविस्तरा नाम की टीका के अनुसार हैं और दूसरा, दसवाँ और ग्यारहवाँ अधिकार श्रुत की परंपरा के अनुसार चला आ रहा है ।

विवेचन

सूरिपुरंदर प्रकांड विद्वान् श्री हरिभद्रसूरिजी म. ने **शक्रस्तव** आदि सूत्रों पर **ललितविस्तरा** नाम की टीका की रचना की है ।

चैत्यवंदन संबंधी यहाँ जो 12 अधिकार बतलाए हैं, उनमें 9 अधिकार तो ललितविस्तरा की वृत्ति के अनुसार ही हैं । शेष तीन अधिकार श्रुत की परंपरानुसार हैं ।

'जे अ अईया सिद्धा' का दूसरा अधिकार, **'सिद्धाणं बुद्धाणं'** की अंतिम दो गाथाओं में अर्थात् 'उज्जिंत सेल सिहरे' और 'चत्तारि अट्ठ-दसदोय' गाथा में आया हुआ दसवाँ और ग्यारहवाँ अधिकार, इस प्रकार कुल तीन अधिकार श्रुत परंपरा से अर्थात् गीतार्थ गुरुओं की परंपरा से चले आ रहे हैं। श्रुत अर्थात् सूत्र, सूत्र की परंपरा अर्थात् सूत्र की निर्युक्ति, भाष्य, चूर्णि और टीका आदि पंचांगी की परंपरा से कहा गया है।

उदाहरण के लिए-सूत्र में चैत्यवंदन पुक्खरवरदी तक कहा गया है।

निर्युक्ति में चैत्यवंदन पुक्खरवरदी और सिद्धाणं बुद्धाणं की पहली गाथा तक कहा है। चूर्णि में 'सिद्धाणं बुद्धाणं' की तीन गाथा अर्थात् महावीर स्वामी की स्तुति तक कहा है।

शेष 'उज्जिंतसेल सिहरे' आदि अधिकार यथेच्छ कहने योग्य है, वह आगे की गाथा में बताएंगे। शेष 9 अधिकार सूत्र के प्रमाण से हैं। ललितविस्तरा में कहा है कि 'ये 9 अधिकार अवश्य पढ़ने योग्य हैं, जबकि शेष 3 अधिकार अवश्यमेव पढ़ने योग्य न होने से इन तीन अधिकारों की व्याख्या नहीं करते हैं। परंतु ये तीन अधिकार पूर्वाचार्य कृत निर्युक्ति और चूर्णि में कहे हुए होने से श्रुत की परंपरा अनुसार ही हैं।

आवस्सय चुण्णीए, जं भणियं सेसया जहिच्छाए ।
तेणं उज्जिंताइ वि, अहिगारा सुअमया चेव ।।47।।

शब्दार्थ

आवस्सय चुण्णीए=आवश्यक चूर्णि में, **जं भणियं**=जो कहा गया है, **सेसया**=बाकी के, **जहिच्छाए**=इच्छानुसार, **तेणं**=उस कारण से, **उज्जिंताइ**=उज्जिंत आदि, **अहिगारा**=अधिकार, **सुअमया**=श्रुतमय, **चेव**=ही।

भावार्थ

आवश्यक चूर्णि में कहा है कि 'शेष अधिकार इच्छापूर्वक करने योग्य समझें!' अतः 'उज्जिंतसेल सिहरे' आदि अधिकार भी श्रुतसम्मत है।

बीओ सुयत्थयाई, अत्थओ वन्निओ तहिं चेव ।
सक्कथयंते पढिओ, दव्वारिहवसरि पयडत्थो ।।48।।

शब्दार्थ

बीओ=दूसरा, **सुयत्थाइ**=श्रुतस्तव की आदि में, **अत्थओ**=अर्थ से, **वण्णिओ**=वर्णनकिया है, **तहिं**=उसमें, **चेव**=ही, **सक्कत्थयंते**=शक्रस्तव के अंत में, **पढिओ**=कहा है, **दव्वारिह**=द्रव्य अरिहंत, **वसरि**=अवसर में, **पयडत्थो**=प्रकट अर्थवाला ।

भावार्थ

दूसरा भी अधिकार आवश्यक चूर्णि में श्रुतस्तव के प्रारंभ में अर्थ से कहा है । शक्रस्तव के बाद में द्रव्यस्तव के प्रसंग में साक्षात् शब्दों से कहा है ।

विवेचन

`द्रव्य जिन' का दूसरा अधिकार है जो **`जे अ अइआ सिद्धा'** गाथा से कहा गया है । वह अधिकार अर्थ से **`श्रुतस्तव'** अर्थात् पुक्खरवरदी के प्रारंभ में कहा गया है, उसी अधिकार को पूर्वाचार्यों ने वहाँ से हटाकर नमुत्थुणं के अंत में द्रव्य अरिहंत की वंदना के अवसर पर कहा है ।

इस परिवर्तन के पीछे कारण यही है कि नमुत्थुणं में भाव अरिहंत को वंदना की है, अतः पश्चानुपूर्वी क्रम से द्रव्य अरिहंत की वंदना का अवसर आता है, अतः द्रव्य अरिहंत की वंदना, नमुत्थुणं के अंत में स्थापित की है ।

चैत्यवंदन के 12 अधिकार

अधि-कार	कहाँ से कहाँ तक	किसको वंदन	कौनसा दंडक	प्रथम पद
पहला	नमुत्थुणं से जिअभयाणं	भावजिन	नमुत्थुणं	नमुत्थुणं
दूसरा	`जे अ अइआ सिद्धा...वंदामि	द्रव्यजिन	नमुत्थुणं	जे अ अइआ
तीसरा	अरिहंत चेइयाणं से पहली स्तुति तक	स्थापनाजिन	चैत्यस्तव	अरिहंत चेइ०
चौथा	लोगस्स-सेम दिसंतु तक	नाम जिन	नामस्तव	लोगस्स
पाँचवाँ	सव्वलोए अरिहंत से दूसरी स्तुति तक	त्रिभुवन के स्थापना जिन	नामस्तव	सव्वलोए०

छठा	पुक्खरवरदी से नमंसामि तक	20 विहरमान जिन	श्रुतस्तव	पुक्खर०
सातवाँ	`तमतिमिर से तीसरी स्तुति तक	श्रुतज्ञान	श्रुतस्तव	तम०
आठवाँ	सिद्धाणं बुद्धाणं से सव्वसिद्धाणं तक	सभी सिद्ध	सिद्धस्तव	सिद्धाणं
नौवाँ	जो देवाण से नरं व नारिं वा तक	महावीरप्रभु	सिद्धस्तव	जो देवाण०
दसवाँ	उज्जितसेल से नमंसामि तक	नेमिनाथ प्रभु	सिद्धस्तव	उज्जित०
ग्यारहवाँ	चत्तारि से दिसंतु तक	अष्टापद आदि पर रहे बिंबों को	सिद्धस्तव	चत्तारि
बारहवाँ	वेयावच्च० से चौथी स्तुति तक	शासनदेव का स्मरण	सिद्धस्तव	वेया

असढाइण्णऽणवज्जं गीयत्थ अवारयंति मज्झत्था ।
आयरणावि हु आण त्ति वयण ओ सुबहु मण्णंति ।।49।।

शब्दार्थ

असढ=अशठ, **आइण्ण**=आचरित, **अणवज्जं**=निर्दोष, **गीयत्थ**=गीतार्थ, **अवारयं**=अनिषिद्ध, **त्ति**=इस प्रकार, **मज्झत्था**=मध्यस्थ, **आयरणा**=आचरणा, **वि**=भी, **हु**=वास्तव में, **आण**=आज्ञा, **त्ति**=इस प्रकार, **वयणओ**=वचन से, **सु**=अच्छी तरह, **बहु**=अत्यंत, **मण्णंति**=मानते हैं ।

भावार्थ

निर्दोष पुरुषों के द्वारा आचरित आचरण भी निर्दोष है, वैसी आचरणा का मध्यस्थ गीतार्थ पुरुष निषेध नहीं करते हैं। इस वचन से मध्यस्थ पुरुष बहुमान करते हैं ।

विवेचन

तारक तीर्थंकर परमात्मा के शासन में कई ऐसी आचरणाएँ होती हैं, जिनका मूल आगम या उनकी टीकाओं में स्पष्ट उल्लेख नहीं होता है, फिर भी उन आचरणाओं को भी प्रभु की ही आज्ञा समझकर प्रमाणभूत मानना चाहिए ।

शर्त यही है कि वे सब आचरणाएँ अशठ अर्थात् निष्कपट, सरल हृदयी गीतार्थ महापुरुषों के द्वारा आचरित होनी चाहिए और वे आचरणाएँ

निरवद्य अर्थात् निष्पाप होनी चाहिए। उन आचरणाओं का मध्यस्थ गीतार्थ महापुरुष निषेध नहीं करते हैं, बल्कि उसे भी प्रभु की आज्ञा समझकर उसका स्वीकार ही करते हैं।

जब तक जैन शासन विद्यमान रहेगा, तब तक परंपरा से आई हुई निर्दोष आचरणाएँ भी रहनेवाली हैं। ऐसी आचरणाएँ भी 'जीत व्यवहार' कहलाती हैं, अतः उसके पालन में भी प्रभु की आज्ञा का ही पालन है। शासन के अंत तक यह जीत व्यवहार रहनेवाला है।

जो अशठ और गीतार्थ आचार्य होंगे, वे कभी शासन या शास्त्रमर्यादा को नुकसान हो, ऐसी कोई भी प्रवृत्ति नहीं करेंगे।

ऐसे भवभीरु, गीतार्थ महापुरुष द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव और लोगों की योग्यता आदि देखकर ही किसी आचार मर्यादा का आचरण करते हैं।

वंदन एवं स्मरणीय

चउ वंदणिज्ज जिण मुणि सुय सिद्धा इह सुरा य सरणिज्जा।
चउह जिणा नाम-ठवण-दव्व-भाव जिणभेएणं ॥50॥

शब्दार्थ

चउ=चार, **वंदणिज्ज**=वंदनीय, **जिण**=जिन, **मुणि**=मुनि, **सुय**=श्रुत, **सिद्धा**=सिद्ध भगवंत, **इह**=यहाँ, **सुरा**=देवता, **य**=तथा, **सरणिज्जा**=स्मरण करने योग्य, **चउह**=चार, **जिणा**=जिन, **नाम**=नाम, **ठवण**=स्थापना, **दव्व**=द्रव्य, **भाव**=भाव, **जिणभेएणं**=जिन के भेद से।

भावार्थ

जिन, मुनि, श्रुत और सिद्ध ये चार वंदन करने योग्य हैं और देवता स्मरण करने योग्य है।

नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव के भेद से जिनेश्वर भगवंत चार प्रकार के हैं।

विवेचन

तारक तीर्थंकर परमात्मा अपने नाम, स्थापना, द्रव्य और भावरूप चारों निक्षेपों के द्वारा जगत् के जीवों पर महान् उपकार करते हैं। परमात्मा

का भाव निक्षेप तो वंदनीय, पूजनीय और नमस्करणीय है ही, परंतु तारक परमात्मा के नाम आदि निक्षेप भी उतने ही आदरपात्र और पूजनीय हैं ।

चैत्यवंदन में श्री अरिहंत परमात्मा की चारों निक्षेपों द्वारा वंदना होती है ।

इसके सिवाय प्रणिधान सूत्र के **'जावंत के वि साहु'** सूत्र द्वारा भरत, ऐरावत और महाविदेह क्षेत्र में रहे हुए सभी साधु भगवंतों की भी वंदना की जाती है ।

श्रुतस्तव सूत्र के माध्यम से श्री अरिहंत परमात्मा की वाणी स्वरूप, द्वादशांगी रूप श्रुतज्ञान को भी वंदन-नमस्कार किया जाता है ।

सिद्धाणं बुद्धाणं-सिद्ध स्तव सूत्र के माध्यम से सभी सिद्ध भगवंतों को भी वंदन-नमस्कार किया जाता है ।

चैत्यवंदन में जिन, मुनि, श्रुत और सिद्ध को वंदन-नमस्कार है, जबकि सम्यग्दृष्टि देवों का स्मरण है ।

यद्यपि सम्यग्दृष्टि देवता चौथे गुणस्थानक में रहे हुए हैं, फिर भी वे पाँचवें, छठे व सातवें गुणस्थानक में रहे हुए साधु व श्रावक के लिए भी स्मरणीय हैं ।

वे देवता शासन पर आनेवाले उपसर्गों को दूर करने में मदद करते हैं, विघ्नों को दूर करते हैं ।

दीक्षा, अंजनशलाका, प्रतिष्ठा आदि शासन के विशेष प्रसंगों में भी सम्यग्दृष्टि देवता के स्मरणार्थ कायोत्सर्ग किया जाता है ।

प्रतिक्रमण के प्रसंग में चौथी थोय में सम्यग्दृष्टि देवों को स्मरण किया गया है । इस स्मरण से शासनप्रेमी देवों का प्रतिदिन सत्कार होता है, वह उचित ही है । वे देव कदाचित् अपने स्मरण को ध्यान में न लें तो भी 'वेयावच्चगराणं' सूत्र से भी मंत्राक्षर की तरह विघ्नोपशांति कही गई है ।

पहले, छठे, नौवें, दसवें और ग्यारहवें अधिकार में भाव जिन को वंदना है ।

तीसरे और पाँचवें अधिकार में स्थापना जिन को वंदना है। सातवें अधिकार में श्रुतज्ञान को वंदना है।

आठवें अधिकार में सिद्धों को वंदना है। चौथे अधिकार में नाम जिन को वंदना है।

बारहवें अधिकार में शासनदेवों का स्मरण है।

इस प्रकार 1-2-3-4-5-6-9-10 व 11 इन नौ अधिकारों में जिन-वंदना है।

सातवें में श्रुतवंदन, आठवें में सिद्धवंदना और बारहवें में देव-स्मरण है।

यद्यपि इन 12 अधिकारों में मुनिवंदना का स्वतंत्र अधिकार नहीं दिया है, फिर भी चैत्यवंदन या देववंदन में `जावंत के वि साहु' भी अवश्य बोला जाता है, अतः उसका भी अवश्य समावेश होता है। प्रतिक्रमण में भी `भगवानहं' आदि द्वारा और अड्ढाइज्जेसु सूत्र द्वारा मुनिवंदना करते ही हैं।

नाम जिणा जिण नामा-ठवण जिणा पुण जिणिंद पडिमाओ।
दव्वजिणा जिण जीवा, भाव जिणा समवसरणत्था ॥51॥

शब्दार्थ

नाम जिणा=नाम जिन, **जिण नामा**=जिनेश्वर के नाम, **ठवण जिणा**=स्थापना जिन, **पुण**=तथा, **जिणिंद पडिमाओ**=जिनेश्वर की प्रतिमाएँ, **दव्वजिणा**=द्रव्य जिन, **जिण जीवा**=जिनेश्वर के जीव, **भाव जिणा**=भाव जिन, **समवसरणत्था**=समवसरण में रहे हुए।

भावार्थ

जिनेश्वर के नाम को नाम जिन, जिनेश्वर की प्रतिमा स्थापना जिन, जिनेश्वर के जीव द्रव्य जिन तथा समवसरण में रहे हुए भाव जिन कहलाते हैं।

विवेचन

जगत् में रहे सभी पदार्थों के नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव ये चार निक्षेप होते हैं। परंतु उनका यहाँ कोई विशेष प्रयोजन नहीं है।

तारक तीर्थंकर परमात्मा अपने नाम आदि चारों निक्षेपों के द्वारा जगत् के जीवों पर महान् उपकार करते हैं । कलिकाल-सर्वज्ञ श्रीमद् हेमचन्द्राचार्यजी ने ठीक ही कहा है-

'नामाकृतिद्रव्यभावैः पुनतस्त्रिजगज्जनम् ।'

तारक परमात्मा अपने नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव इन चारों निक्षेपों से तीन जगत् के जीवों पर महान् उपकार करते हैं ।

सामान्य मानव तो अपनी विद्यमान अवस्था में ही किसी पर उपकार कर सकता है, परंतु ये तारक परमात्मा अपने चारों निक्षेपों से जगत् के जीवों पर महान् उपकार करते हैं । चारों निक्षेपों से हम उनकी भक्ति कर सकते हैं । तारक परमात्मा का हम नाम स्मरण कर सकते हैं । उनकी प्रतिमा आदि की भी पूजा-भक्ति कर सकते हैं । उनकी विद्यमान अवस्था में भी उनकी भक्ति की जा सकती है ।

इस गाथा में प्रभु के चार निक्षेपों का स्वरूप बतलाया है :–

1) **नाम जिन :-** तारक तीर्थंकर परमात्मा के नाम को **नाम जिन** कहा जाता है । जैसे-महावीर स्वामी ।

2) **स्थापना जिन :-** जिनेश्वर परमात्मा की पाषाण, सोना, चांदी, पीतल, मिट्टी, काष्ठ की बनी प्रतिमा को **स्थापना जिन** कहा जाता है ।

3) **द्रव्य जिन :-** भाव जिनेश्वर के पहले की अवस्था में रहे जिनेश्वर के जीव एवं भाव जिनेश्वर के बाद मोक्ष में सिद्धावस्था में रहे जिनेश्वर के जीव को **द्रव्य जिन** कहा जाता है ।

   तीर्थंकर नाम कर्म निकाचित होने के बाद, जब तक केवलज्ञान न हो, तब तक उस आत्मा को द्रव्य जिन कहा जाता है तथा तीर्थंकर पद भोगकर मोक्ष में जाने के बाद भी उस आत्मा को **द्रव्य जिन** कहा जाता है । जैसे भविष्य में होनेवाले प्रथम तीर्थंकर पद्मनाभ स्वामी ने श्रेणिक महाराजा के भव में तीर्थंकर नाम कर्म निकाचित किया था, अतः अब वे भले ही नरक में रहे हुए हैं, फिर भी द्रव्य जिन कहलाते हैं । भगवान महावीर की आत्मा अभी मोक्ष में सिद्ध अवस्था में रही हुई है, फिर भी वे द्रव्य जिन कहलाते हैं ।

4) **भाव जिन :-** केवलज्ञान की प्राप्ति के साथ ही तीर्थंकर की आत्मा को तीर्थंकर नाम कर्म की पुण्य प्रकृति का रसोदय प्रारंभ हो जाता है। वे परमात्मा समवसरण में बैठकर जगत् के जीवों के हित के लिए धर्मदेशना देते हैं। अतः वे **भाव जिन** कहलाते हैं। उस अवस्था में वे जगत् के जीवों पर महान् उपकार करते हैं।

यद्यपि तीर्थंकर परमात्मा अपने अन्य निक्षेपों से भी जगत् के जीवों पर महान् उपकार करते हैं, परंतु भाव निक्षेप द्वारा सविशेष उपकार करते हैं। क्योंकि इसी अवस्था में वे अष्ट महाप्रातिहार्य, 34 अतिशय एवं वाणी के 35 गुणों से युक्त होते हैं।

परमात्मा मोक्ष में न जाय तब तक जगत् के जीवों पर अत्यधिक उपकार कर सकते हैं, अतः केवलज्ञान की प्राप्ति से लेकर मोक्ष में न जाए, तब तक की उनकी अवस्था भावजिन स्वरूप होती है।

चार चूलिका स्तुति

अहिगय जिण पढम थुइ, बीया सव्वाण तइय नाणस्स।
वेयावच्चगराणं उवओगत्थं चउत्थ थुइ ॥52॥

शब्दार्थ

अहिगय जिण=अधिकृत जिन, **पढम थुइ**=प्रथम स्तुति, **बीया**=दूसरी, **सव्वाण**=सभी की, **तइय**=तीसरी, **नाणस्स**=ज्ञान की, **वेयावच्चगराणं**=वेयावच्च करनेवाले देवों के, **उवओगत्थं**=उपयोग के लिए, **चउत्थ**=चौथी, **थुइ**=स्तुति।

भावार्थ

अधिकृत जिन की पहली, सभी जिनेश्वरों की दूसरी स्तुति, ज्ञान की तीसरी स्तुति और वैयावच्च करनेवाले देवताओं के उपयोग के लिए चौथी स्तुति है।

विवेचन

तारक तीर्थंकर परमात्मा को जो बृहत् देववंदन या चैत्यवंदन किया जाता है, उसमें चार-चार स्तुति के दो जोड़े बोले जाते हैं। एक जोड़े में चार स्तुतियाँ होती हैं। उनमें पहली स्तुति मुख्य एक तीर्थंकर परमात्मा की होती

है। अथवा किसी मुख्य तीर्थ आदि की प्रधानता वाली होती है। दूसरी स्तुति सभी तीर्थंकरों की होती है। उनमें 24 तीर्थंकर, 20 विहरमान, 170 जिन अथवा सभी तीर्थंकरों की होती हैं। तीसरी स्तुति ज्ञान की होती है और चौथी स्तुति शासन के अधिष्ठायक देव के स्मरण रूप होती है।

चार स्तुति में पहली तीन स्तुति को वंदना-स्तुति और चौथी स्तुति को अनुशास्ति स्तुति कहते हैं।

ऐसे तो `नमुत्थुणं' आदि सूत्र स्वयं स्तुति रूप हैं, फिर भी 1-1 नवकार के कायोत्सर्ग के बाद काव्यमय वाणी से प्रत्येक की स्तुति की जाती है, अतः उसका नाम चूलिका परिशिष्ट रूप स्तुति है।

पू. आचार्य श्री जगच्चन्द्रसूरिजी म. के मुख्य शिष्य देवेन्द्रसूरिजी म. आदि तपागच्छ के मुख्य आचार्यों को ये चारों स्तुतियाँ मान्य हैं, यह बात उनके इस ग्रंथ से सिद्ध हो जाती है। `नमुत्थुणं' आदि सूत्रात्मक स्तुति तो शासन के मर्मज्ञ ही समझ सकते हैं, जबकि यह काव्यरूप स्तुति तो आबाल-गोपाल सभी समझ सकते हैं।

चैत्यवंदन में स्तवन की तरह स्तुति भी नियत नहीं है, अतः भावों की अभिवृद्धि हो ऐसी पूर्वाचार्यों द्वारा विरचित स्तुतियाँ बोली जा सकती हैं।

आठ निमित्त

पाव खवणत्थ इरियाइ, वंदण वत्तियाइ छ निमित्ता।
पवयण सुर सरणत्थं, उस्सग्गो इय निमित्तट्ठ ॥53॥

शब्दार्थ

पाव खवणत्थ=पापक्षय के लिए, **इरियाइ**=इरियावहिय, **वंदणवत्तियाइ**=वंदण आदि, **छ**=छह, **निमित्ता**=निमित्त, **पवयणसुर**=शासनदेव, **सरणत्थं**=स्मरण के लिए, **उस्सग्गो**=कायोत्सर्ग, **इय**=इस प्रकार, **निमित्तट्ठ**=आठ निमित्त।

भावार्थ

पापक्षय के लिए इरियावहिय प्रतिक्रमण, वंदन आदि छह निमित्तों के लिए तथा शासनदेव के स्मरण के लिए, इस प्रकार इन आठ निमित्तों से कायोत्सर्ग किया जाता है।

विवेचन

चैत्यवंदन करने के पहले इरियावहिय करना जरूरी है । इस इरियावहिय के द्वारा 1 लोगस्स का कायोत्सर्ग जरूरी है । चैत्यवंदन करने के पहले मन, वचन और काया के योगों की शुद्धि जरूरी है ।

'पावाणं कम्माणं निग्घायणट्ठाए' पद बोलकर पाप कर्मों के नाश के लिए यह कायोत्सर्ग किया जाता है । इस प्रकार उपर्युक्त गाथा में कायोत्सर्ग के आठ निमित्त बतलाए हैं अर्थात् इन आठ निमित्तों को उद्देशित कर कायोत्सर्ग किया जाता है ।

'पाप कर्मों का नाश' यह कायोत्सर्ग का पहला निमित्त (हेतु) है ।

(2 से 7 वंदन आदि छह निमित्तः अरिहंत चेइयाणं सूत्र में वंदन आदि छह निमित्तों का निर्देश किया गया है अर्थात् वंदन, पूजन, सत्कार, सम्मान, बोधिलाभ और निरुपसर्ग मोक्षपद की प्राप्ति रूप इन छह निमित्तों से कायोत्सर्ग करने का विधान है ।)

2. वंदन :- मन, वचन और काया से नमस्कार की प्रवृत्ति को वंदन कहते हैं ।

3. पूजन :- पुष्प आदि के द्वारा जो पूजा की जाती है, उसे पूजन कहते हैं ।

4. सत्कार :- वस्त्र आदि के द्वारा प्रभु का जो बहुमान किया जाता है, उसे सत्कार कहते हैं ।

5. सन्मान :- मन की प्रीति के साथ जो विनय आदि किया जाता है, उसे सन्मान कहते हैं ।

6. बोधिलाभ :- आगामी भव में जैन धर्म की प्राप्ति हो, जैन धर्म की प्राप्ति को बोधिलाभ कहते हैं, इससे सम्यक्त्व सुलभ बनता है ।

7. निरुपसर्ग :- सर्व कर्मों से मुक्ति को निरुपसर्ग अर्थात् मोक्ष कहा जाता है ।

तारक तीर्थंकर परमात्मा को वंदन, पूजन, सत्कार और सन्मान देने से जो लाभ प्राप्त होता है, 'अरिहंत चेइयाणं' के कायोत्सर्ग द्वारा वो ही लाभ प्राप्त किया जा सकता है ।

यद्यपि साधु-साध्वीजी भगवंतों को जलपूजा आदि द्रव्य पूजाएँ नहीं हैं, परंतु मंदिर दर्शनार्थ जाना, श्रावक द्वारा विरचित प्रभु आंगी के दर्शन करना, श्रावक द्वारा आयोजित पूजा-महापूजन आदि में उपस्थित रहना, प्रभु-प्रतिष्ठा आदि के वरघोड़े में हाजरी देना आदि द्रव्य पूजा तो है ही ! इसके साथ ही वे श्रावकों को द्रव्यपूजा का उपदेश तो देते ही हैं । श्रावकों को द्रव्य पूजा के विधि-विधान समझा सकते हैं । इस प्रकार द्रव्य पूजा के बाह्य पदार्थों के अभाव रूप द्रव्य पूजा साधुओं के लिए भी मान्य है ।

इस प्रकार जिनेश्वर परमात्मा को वंदन, पूजन, सत्कार व सन्मान से प्राप्त होनेवाला पुण्यलाभ सिर्फ कायोत्सर्ग की आराधना-साधना द्वारा प्राप्त किया जा सकता है ।

कायोत्सर्ग की आराधना-साधना से बोधिलाभ की भी प्राप्ति होती है, आगामी भव में वीतराग-शासन की प्राप्ति हो, इस भावना से भी कायोत्सर्ग किया जा सकता है ।

संसार में कदम-कदम पर उपद्रव-उपसर्ग हैं । जब तक आत्मा कर्म से सर्वथा रहित अवस्था प्राप्त नहीं करती है, तब तक उपद्रव-उपसर्ग रहने ही वाले हैं । एक मात्र मोक्ष ही ऐसी स्थिति है, जहाँ आत्मा सर्वथा उपसर्ग-उपद्रव रहित रहती है । कायोत्सर्ग के फलस्वरूप आत्मा को कर्म रहित स्थिति अर्थात् मोक्ष की भी प्राप्ति होती है ।

कायोत्सर्ग का अंतिम या आठवाँ हेतु सम्यग्दृष्टि देवताओं का स्मरण है ।

बाह्य उपसर्ग-उपद्रवों के निवारण में सम्यग्दृष्टि देवता हमें सहायता कर सकते हैं । इसी कारण शासन पर आनेवाले उपसर्गों के निवारण के लिए देववंदन में चौथी थोय के रूप में सम्यग्दृष्टि देवताओं का स्मरण किया है । इन सम्यग्दृष्टि देवताओं का स्मरण करने से उनका उत्साह और उल्लास बढ़ता है । शासन के कार्यों में वे सहायक बनते हैं ।

कायोत्सर्ग के 12 कारण

चउ तस्स उत्तरीकरण, पमुह सद्धाइया य पण हेउ ।
वेयावच्चगरत्ताइ, तिन्नि इअ हेउ-बारसगं ।।54।।

शब्दार्थ

चउ=चार, **तस्स**=उसका, **उत्तरीकरण**=उत्तरीकरण, **पमुह**=प्रमुख, **सद्धाइया**=श्रद्धा आदि, **य**=तथा, **पण**=पाँच, **हेउ**=हेतु, **वेयावच्चगरत्ताइ**= वेयावच्चकर आदि, **तिन्नि**=तीन, **इअ**=इस प्रकार, **हेउ**=हेतु, **बारसगं**=बारह ।

भावार्थ

उत्तरीकरण आदि चार, श्रद्धा आदि पाँच और वेयावच्चकर आदि तीन, इस प्रकार कायोत्सर्ग के बारह हेतु हैं ।

विवेचन

इससे पूर्व की गाथा में कायोत्सर्ग के आठ निमित्त बतलाए । इस गाथा में कायोत्सर्ग के बारह कारण बतलाते हैं ।

1) उत्तरीकरण :- आलोचन और प्रतिक्रमण से जिन पापों का नाश नहीं हुआ हो, उन पापों की शुद्धि के लिए कायोत्सर्ग किया जाता है । पापों की शुद्धि के लिए जो 10 प्रकार के प्रायश्चित्त बतलाए हैं, उनमें कायोत्सर्ग प्रायश्चित्त, प्रतिक्रमण के बाद आता है, इसलिए उसे 'उत्तरीकरण' कहते हैं ।

2) पायच्छित्तकरणेणं :- कायोत्सर्ग की क्रिया भी ऐसे ही नहीं करने की है, बल्कि अपने पापों के प्रायश्चित्त के लिए अर्थात् पापों की शुद्धि के लिए करने की है ।

3) विसोहीकरणेणं :- पापों का प्रायश्चित्त भी आत्मा की शुद्धि के लिए करने का है । आत्मा की विशुद्धि यह प्रायश्चित्त का फल है ।

4) विसल्लीकरणेणं :- माया शल्य, निदान शल्य और मिथ्यात्व शल्य ये तीन भयंकर शल्य हैं । पाँव में लगा काँटा पाँव की गति को अवरुद्ध कर देता है, उसी प्रकार ये तीन शल्य आत्मा की प्रगति पर रोक लगा देते हैं, अतः आत्मा के विकास के लिए आत्मा को शल्यरहित बनाना जरूरी है । आत्मा को शल्यरहित बनाने के लिए यह कायोत्सर्ग किया जाता है ।

यह कायोत्सर्ग वंदन आदि के फल को पाने के उद्देश्य से किया जाता है । यह कायोत्सर्ग श्रद्धा आदि पाँच साधनों के साथ करना चाहिए । श्रद्धा आदि कायोत्सर्ग के पाँच हेतु कहलाते हैं ।

5) श्रद्धा से :- अर्थात् दूसरों की प्रेरणा बिना बढ़ती हुई सम्यग्दर्शन की शुद्धि द्वारा ।

6) मेधा से :- श्रद्धा से बढ़ती हुई मेधा द्वारा, मात्र गतानुगतिकता से नहीं, बल्कि जिनाज्ञानुसार मर्यादापूर्वक की बुद्धि द्वारा ।

7) धृति से :- बुद्धि द्वारा बढ़ते हुए धैर्य से । राग आदि से आकुल-व्याकुल हुए बिना मन की एकाग्रता के साथ प्रीतिपूर्वक के धैर्य से ।

8) धारणा से :- धैर्य द्वारा बढ़ती हुई धारणा से । शून्य मन से नहीं, बल्कि अरिहंत आदि के गुणों के स्मरणपूर्वक की धारणा द्वारा ।

9) अनुप्रेक्षा से :- धारणा द्वारा बढ़ती हुई अनुप्रेक्षा से । परमार्थ के अनुचिंतन पूर्वक किया गया कायोत्सर्ग वंदन आदि के उद्देश्य को सिद्ध करता है ।

10-11-12) वैयावच्च करनेवाले, शांति करनेवाले और सम्यग्दृष्टि को समाधि प्रदान करनेवाले :- शासन के अधिष्ठायक के स्मरण के लिए यह कायोत्सर्ग किया जाता है ।

कायोत्सर्ग में आगार

अन्नत्थ आइ बारस, आगारा एवमाइया चउरो ।
अगणी पणिंदि-छिंदण, बोही खोभाइ डक्को य ।।55।।

शब्दार्थ

अन्नत्थ=अन्यत्र, **आइ**=आदि, **बारस**=बारह, **आगारा**=अपवाद, **एवमाइया**=एवं आदि पद से, **चउरो**=चार, **अगणी**=अग्नि, **पणिंदि**=पंचेन्द्रिय, **छिंदण**=छेदन, **बोही**=बोधि, **खोभाइ**=क्षोभ आदि, **डक्को**=डंख आदि ।

भावार्थ

अन्नत्थ आदि पद से बारह और अग्नि, पंचेन्द्रिय-छेदन, बोधिक्षोभ और डंख आदि चार ये सोलह आगार हैं ।

विवेचन

कायोत्सर्ग अर्थात् कुछ समय के लिए काया की ममता को छोड़कर मन, वचन, काया की अन्य सांसारिक-प्रवृत्तियों का त्यागकर नवकार या

लोगस्स के पद व उनके अर्थचिंतन में मन को जोड़ते हुए कुछ समय के लिए जिनमुद्रा में एकदम स्थिर खड़े रहना ।

शरीर संबंधी कुछ क्रियाएँ ऐसी हैं, जो कायोत्सर्ग में खड़े रहने पर भी चालू रहती हैं, अतः उन क्रियाओं से अपने कायोत्सर्ग का भंग न हो जाय इसलिए कायोत्सर्ग प्रारंभ करने के पूर्व कुछ अपवादों की छूट रखी जाती है ।

`अन्नत्थ सूत्र' यह कायोत्सर्ग संबंधी **आगार सूत्र है ।** इस सूत्र के माध्यम से 16 आगारों की छूट रखी जाती है ।

`अन्नत्थ उससिएणं' से `दिट्ठी संचालेहिं' पद तक 12 आगार आते है, जो निम्नलिखित हैं–

1) श्वास लेना 2) श्वास छोड़ना 3) खांसी आना

4) छींक आना 5) जंभाइ लेना 6) ऊर्ध्ववायु होना

7) अधो वायु होना 8) चक्कर आना 9) पित्त के कारण मूर्च्छा आना

10) सूक्ष्मरूप से काया का कंपन होना

11) सूक्ष्म रीति से श्लेष्म का संचार होना

12) सूक्ष्म रीति से दृष्टि का संचार होना ।

कायोत्सर्ग में यदि इन अपवादों की छूट नहीं रखी जाय तो कायोत्सर्ग का भंग ही होता है ।

उपर्युक्त क्रियाएँ जान-बूझकर नहीं की जाती हैं, बल्कि सहजतया हो जाती हैं ।

एक ही स्थान पर खड़े रहने की अपेक्षा ये आगार हैं । परंतु नियत स्थान से अन्य स्थान में जाने से भी कायोत्सर्ग का भंग नहीं होता है, ऐसे भी चार आगार हैं, जो निम्नलिखित हैं–

1. अग्नि का भय :- अचानक अग्नि का उपद्रव हो जाय तो इस आगार के कारण कायोत्सर्ग के स्थान से अन्य स्थान में जा सकते हैं अथवा रात्रि में अग्नि का प्रकाश अपने शरीर पर पड़ता हो, तो अग्निकाय के जीवों की रक्षा के लिए नियत स्थान को छोड़कर अन्य स्थान में जाने से भी कायोत्सर्ग का भंग नहीं होता है ।

2. पंचेन्द्रिय की आड़ :- स्थापनाचार्य और अपने स्वयं के बीच चूहे आदि पंचेन्द्रिय जीवों की आड़ पड़ती हो तो उससे बचने के लिए भी नियत स्थान से हटकर अन्य स्थान में जाए तो भी कायोत्सर्ग का भंग नहीं होता है ।

पंचेन्द्रिय वध :- अपने ही सामने कोई पंचेन्द्रिय जीव का वध करता हो तो उस स्थान पर खड़े रहना उचित नहीं है, अतः उस स्थान से हट कर अन्य स्थान में चले जाए तो भी इस आगार के कारण कायोत्सर्ग का भंग नहीं होता है ।

3. बोधिक्षोभ :- राजा आदि की ओर से उपद्रव का भय पैदा हुआ हो, दीवार गिरने का भय हो तो कायोत्सर्ग के स्थान को छोड़कर अन्य स्थान में जाकर भी अपूर्ण कायोत्सर्ग पूरा किया जा सकता है ।

बोधि अर्थात् सम्यक्त्व, उसमें आघात पहुँचे ऐसा कोई भय उत्पन्न हुआ हो तो दूसरे स्थान पर जा सकते हैं ।

4. स्वयं को अथवा साधु को सर्प आदि के दंश का भय उत्पन्न हुआ हो तो इस आगार से अन्यत्र जाकर अपूर्ण कायोत्सर्ग पूर्ण किया जा सकता है ।

कायोत्सर्ग के 19 दोष

घोडग लय खंभाइ मालुद्धी निअल सबरि-खलिण-वहू ।
लंबुत्तर थण संजइ, भमुहंगुलि-वायस-कविट्ठो ।।56।।
सिरकंप मूअवारुणि, पेहत्ति चइज्ज दोस उस्सग्गे ।
लंबुत्तर थण संजइ, न दोस समणीण स-वहु सड्ढीणं ।।57।।

शब्दार्थ

घोडग=घोड़ा, **लय**=लता, **खंभाइ**=स्तंभ आदि, **माल**=छत, **उद्धि**= उद्ध, **निअल**=बेडी, **सबरि**=भीलनी स्त्री, **खलिण**=घोडे की लगाम, **वहू**=वधु, **लंबुत्तर**=ज्यादा लंबा, **थण**=स्तन, **संजइ**=संयति, **भमुहंगुलि**=अंगुली हिलाना, **वायस**=कौआ, **कविट्ठो**=कोष्ठ, **सिरकंप**=मस्तक का कंपन, **मूअ**=मूक, **वारुणि**=शराब, **पेह**=बंदर की तरह देखना, **त्ति**=इस प्रकार, **चइज्ज**=छोड़ना, **दोस**=दोष, **उस्सग्गे**=कायोत्सर्ग में, **लंबुत्तर**=ज्यादा लंबा, **थण**=स्तन, **संजइ**=संयति, **न दोस**=दोष नहीं है, **समणीण**=साध्वी को, **सवहु**=वधू सहित, **सड्ढीणं**=श्राविका को ।

भावार्थ

घोडा, लता स्तंभआदि, छत, उद्धि, निगड़, शबरी गिने जाते, खलिन, वधू, लंबुत्तर, स्तन, संयति, भ्रमित अंगुली, काक, शिरकंप, मूक, वारुणी तथा प्रेक्षा आदि दोषों का कायोत्सर्ग में त्याग करना चाहिए ।

साध्वीजी को लंबुत्तर, स्तन तथा संयति दोष नहीं है तथा श्राविकाओं को लंबुत्तर, स्तन, संयति तथा वधू ये चार दोष नहीं होते हैं ।

विवेचन

इन दो गाथाओं में कायोत्सर्ग में टालने योग्य 19 दोषों का निर्देश किया है अर्थात् कायोत्सर्ग करते समय इन 19 दोषों से बचने का प्रयत्न करना चाहिए । इन दोषों को टालने से कायोत्सर्ग शुद्ध बनता है ।

(1) घोड़ा :- कायोत्सर्ग करते समय घोड़े की तरह अपने पैर टेढ़े रखना ।

(2) लता :- जिस प्रकार थोड़े से पवन से भी लता कांपती रहती है, उसी प्रकार कायोत्सर्ग में अपने शरीर को हिलाते रहना, लता दोष कहलाता है ।

(3) स्तंभ :- कायोत्सर्ग करते समय दीवार या स्तंभ का सहारा लेना स्तंभ दोष है ।

(4) माल :- कायोत्सर्ग में ऊपर की छत को मस्तक लगाकर खड़े रहना ।

(5) उद्धि :- बैलगाडी की उद्ध की तरह दोनों पैर इकट्ठे कर खड़े रहना ।

(6) निगड :- बेड़ी की तरह अथवा दोनों पैर चौड़े करके खड़े रहना ।

(7) शबरी :- भीलनी की तरह अपने दोनों हाथों को गुप्त अंग के आगे रखकर खड़े रहना शबरी दोष है ।

(8) खलिन :- घोड़े की लगाम की तरह ओघे या चरवले को हाथ में पकड़कर खड़े रहना अथवा ओघे की दंडी को पीछे और दस्सी को आगे रखकर खड़ा होना खलिन दोष कहलाता है ।

(9) वधू :- पुत्रवधू की तरह शर्म से अपने मस्तक को नीचे झुकाते हुए कायोत्सर्ग करना वधू दोष कहलाता है ।

(10) लंबुत्तर :- धोती व चोल पट्टा नाभि से चार अंगुल नीचा और घुटने से चार अंगुल ऊपर पहिनना चाहिए । इससे अधिक रखे तो लंबुत्तर दोष है ।

(11) स्तन दोष :- स्त्री की तरह अपनी छाती को छिपाने के लिए कपड़ा ओढ़कर कायोत्सर्ग करना स्तन दोष कहलाता है ।

(12) संयती दोष :- साध्वी की तरह अपने मस्तक आदि को ढककर कायोत्सर्ग करना संयती दोष है ।

(13) भ्रमितांगुलि दोष :- कायोत्सर्ग करते समय नवकार आदि की संख्या गिनने के लिए अंगुलि आदि को हिलाना भ्रमितांगुलि दोष है ।

(14) काक दोष :- कायोत्सर्ग में कौए की तरह अपनी नजर को घुमाते रहना काक दोष है ।

(15) कोष्ठ दोष :- कपडा गंदा न हो जाय इस भय से कपड़े को, धोती की पाटली आदि को गोल Ball गेंद की तरह इकट्ठाकर पाँवों के बीच में दबाकर कायोत्सर्ग करना ।

(16) शिरकंप दोष :- कायोत्सर्ग दरम्यान अपने मस्तक को हिलाते रहना शिरकंप दोष है ।

(17) मूक दोष :- गूंगे की तरह कायोत्सर्ग में हुँ हुँ आदि शब्द का उच्चारण करते रहना मूक दोष कहलाता है ।

(18) वारुणी दोष :- शराब को पकाते समय जैसे बुद-बुद शब्द होता है, उसी प्रकार कायोत्सर्ग दरम्यान बड़बड़ाना वारुणी दोष कहलाता है ।

(19) प्रेक्षादोष :- कायोत्सर्ग दरम्यान बंदर की तरह ऊँचे-नीचे होकर देखते रहना प्रेक्षा दोष है ।

लंबुत्तर, स्तन व संयती दोष साध्वी को नहीं लगते हैं, क्योंकि उनका शरीर पूरा ढका हुआ होता है ।

उपर्युक्त तीन दोष एवं वधू दोष ये चार दोष श्राविका को नहीं लगते हैं ।

कायोत्सर्ग में खड़े रहते समय दो पाँवों के बीच में आगे चार अंगुल और पीछे कुछ कम अंतर रहना चाहिए ।

अपनी दृष्टि नासिका के ऊपर स्थापित करनी चाहिए । दोनों होठों का परस्पर स्पर्श हो लेकिन ऊपर नीचे के दांत का स्पर्श नहीं होना चाहिए ।

दोनों हाथ लटकते हुए सीधे रहने चाहिए ।

कायोत्सर्ग में मानसिक जाप से नवकार आदि गिनना चाहिए ।

बिल्कुल मौन पूर्वक ध्यानस्थ खड़े होकर कायोत्सर्ग करना चाहिए ।

कायोत्सर्ग का प्रमाण एवं स्तवन

इरि उस्सग्ग-पमाणं, पणवीसुस्सास अट्ठ सेसेसु ।
गंभीर-महुर-सद्दं, महत्त्थ-जुत्तं हवइ थुत्तं ।।58।।

शब्दार्थ

इरि=इरियावहिय, **उस्सग्ग**=कायोत्सर्ग, **पमाणं**=प्रमाण, **पणवीस**=पच्चीस, **उस्सास**=श्वासोच्छ्वास, **अट्ठ**=आठ, **सेसेसु**=शेष कायोत्सर्ग में, **गंभीर**=गंभीर अर्थवाला, **महुर**=मधुर, **सद्दं**=शब्द, **महत्त्थ**=महान् अर्थ, **जुत्तं**=युक्त, **हवइ**=होता है, **थुत्तं**=स्तोत्र ।

भावार्थ

इरियावहिय के कायोत्सर्ग का प्रमाण 25 श्वासोच्छ्वास प्रमाण है और शेष कायोत्सर्ग का प्रमाण 8 श्वासोच्छ्वास है । गंभीर और मधुर शब्दवाला तथा महान् अर्थवाला स्तवन होना चाहिए ।

विवेचन

चैत्यवंदन करते समय सर्व प्रथम इरियावहिय करना जरूरी होता है । इरियावहिय में कायोत्सर्ग का प्रमाण 25 श्वासोच्छ्वास प्रमाण है । **पायसमा उस्सासा** के नियमानुसार एक पाद का उच्चारण एक श्वासोच्छ्वास प्रमाण है । 'चंदेसु निम्मलयरा' तक 25 पाद होते हैं । अतः इरियावहिय में कायोत्सर्ग 'चंदेसु निम्मलयरा' तक किया जाता है ।

अरिहंत चेइयाणं के बाद के तीन कायोत्सर्ग एवं वेयावच्चगराणं के बाद 1 कायोत्सर्ग अर्थात् इन चार काउसग्ग में 1-1 नवकार गिना जाता है । नवकार में आठ संपदाएँ होने से नवकार का कायोत्सर्ग 8 श्वासोच्छ्वास प्रमाण माना जाता है ।

चैत्यवंदन में `जावंत केवि साहू' के बाद स्तवन बोला जाता है ।

वह स्तवन मेघ के समान गंभीर व मधुर स्वर से बोलना चाहिए ।

वह स्तवन ज्ञान, वैराग्य और भक्ति में अभिवृद्धि करनेवाला और महान् अर्थवाला होना चाहिए ।

◆ चैत्यवंदन में अमुक स्तवन ही बोलना चाहिए, ऐसा नियत नहीं है । प्रभु के गुणों की स्तवना तथा अपने दोषों की निंदावाला स्तवन भाववाही होना चाहिए ।

स्तवन ह्रदय के भावों को अभिव्यक्त करने का साधन है, अर्थात् उच्चारण पूर्वक जोर से बोला जा सकता है, परंतु आसपास बैठनेवालों को भक्ति में बाधा न पहुँचे, इसका अवश्य ध्यान रखना चाहिए ।

सात बार चैत्यवंदन

पडिक्कमणे चेइय जिमण, चरम पडिक्कमण सुअण पडिबोहे ।
चिइवंदण इय जइणो, सत्त उ वेला अहोरत्ते ।।59।।

शब्दार्थ

पडिक्कमणे=प्रतिक्रमण में, **चेइय**=चैत्य (मंदिर में), **जिमण**=भोजन समय, **चरिम-पडिक्कमण**=शाम के प्रति क्रमण में, **सुअण**=सोते समय, **पडिबोहे**=प्रभात में उठते समय, **चिइवंदण**=चैत्यवंदन, **इय**=इस प्रकार, **जइणो**=साधु को, **सत्त**=सात, **वेला**=बार, **अहोरत्ते-दिन**=रात में ।

भावार्थ

मुनियों को रात-दिन में प्रतिक्रमण, प्रभुदर्शन, गोचरी, शाम को प्रतिक्रमण समय, सोते समय तथा सुबह जागते समय इस प्रकार कुल **7** बार चैत्यवंदन होते हैं ।

विवेचन : जगत् के जीवों को मोक्षमार्ग की राह बतानेवाले तारक तीर्थंकर परमात्मा का अपनी आत्मा पर इतना अधिक उपकार है कि उनके

उपकार को हम किसी भी प्रकार से चुका नहीं सकते हैं, फिर भी उनके असीम उपकारों को याद करते हुए उनके प्रति कृतज्ञता भाव अभिव्यक्त कर सकते हैं।

एक दिन-रात में साधु के लिए सात बार चैत्यवंदन करने की शास्त्रीय आज्ञा है। इस आज्ञा के पालन द्वारा हम अपने अनंत उपकारी तारक तीर्थंकर परमात्मा के प्रति कृतज्ञता-भाव अभिव्यक्त करते हैं।

7 बार चैत्यवंदन

1) प्रातः काल में उठने के बाद कुसुमिण-दुसुमिण के कायोत्सर्ग के बाद **'जगचिंतामणि'** आदि बोलकर पहला चैत्यवंदन करते हैं।

2) प्रातः काल के प्रतिक्रमण में **'विशाललोचन'** बोलकर कल्लाणकंदं की चार थोय का चैत्यवंदन करते हैं।

3) गोचरी वापरने के पहले जिनमंदिर में प्रभु दर्शनार्थ जाते हैं, उस समय वहाँ चैत्यवंदन करते हैं।

4) आहार वापरने के पहले पच्चक्खाण पारते समय **'जग चिंतामणि'** का चैत्यवंदन करते हैं।

5) शाम को पच्चक्खाण करने से पहले अर्थात् आहार वापरने के बाद चैत्यवंदन करते हैं।

6) शाम के प्रतिक्रमण में **'नमोऽस्तु वर्धमानाय'** बोलकर चैत्यवंदन करते हैं।

7) रात्रि में शयन के पूर्व **'संथारा पोरिसी'** पढ़ाते समय **'चउक्कसाय'** बोलकर चैत्यवंदन किया जाता है।

ये 7 चैत्यवंदन तो प्रतिदिन करने योग्य हैं जबकि अष्टमी आदि पर्वतिथि के दिनों में नगर में रहे सभी चैत्यों के दर्शन हेतु जाना चाहिए और उनके दर्शन समय भी चैत्यवंदन अवश्य करना चाहिए। इस प्रकार पर्व तिथि व पर्वदिनों में तो 7 से भी अधिक बार चैत्यवंदन करने का विधान है।

श्रावकों के लिए चैत्यवंदन

पडिक्कमओ गिहिणो वि हु, सग वेला पंचवेल इयरस्स।
पूआसु तिसंझासु अ, होइ ति वेला जहन्नेणं ॥60॥

शब्दार्थ

पडिक्कमओ=प्रतिक्रमण करनेवाला, **गिहिणो**=गृहस्थ, **वि हु**=भी, **सगवेला**=सातबार, **पंचवेल**=पाँच बार, **इयरस्स**=दूसरे, **पूआसु**=पूजा में, **तिसंझासु**=त्रिसंध्या, **अ**=तथा, **होइ**=होता है, **तिवेला**=तीनबार, **जहन्नेणं**=जघन्य से ।

भावार्थ

प्रतिक्रमण करनेवाले गृहस्थ को भी प्रतिदिन सात या पाँच बार तथा प्रतिक्रमण नहीं करनेवाले श्रावक को भी त्रिकाल पूजा दरम्यान जघन्य से तीन बार चैत्यवंदन अवश्य करना चाहिए ।

विवेचन

दिन और रात्रि दरम्यान हुए अपने पापों की शुद्धि के लिए श्रावकों को भी प्रतिदिन सुबह-शाम प्रतिक्रमण करना अनिवार्य है । परंतु प्रमाद के वशीभूत बने श्रावक इन कर्तव्यों का पूरा-पूरा पालन नहीं कर पाते हैं ।

सुबह-शाम प्रतिक्रमण करनेवाले श्रावक विरले ही मिलते हैं ।

दिन में एक बार प्रतिक्रमण करनेवाले श्रावक थोड़े-बहुत मिलेंगे और दोनों टाइम प्रतिक्रमण नहीं करनेवाले श्रावक बहुत मिलेंगे । जो श्रावक सुबह-शाम प्रतिक्रमण करते हैं, उनको दिन में 7 बार चैत्यवंदन हो जाते हैं । सात बार चैत्यवंदन कैसे होते हैं ? वह बतलाते हैं–

1-2. सुबह के प्रतिक्रमण में दो बार चैत्यवंदन (1 प्रारंभ में `जगचिंतामणि' का और 2 विशाल लोचनदल बोलकर कल्लाणकंदं की थोय का ।)

3-4-5. जिनमंदिर में तीन बार । श्रावक के लिए त्रिकाल-पूजा का विधान है, अतः जब भी मंदिर में जाए, तब चैत्यवंदन अवश्य करे ।

6. शाम के प्रतिक्रमण में एक बार चैत्यवंदन (नमोऽस्तु वर्धमानाय बोलकर)

7. शाम को प्रतिक्रमण के बाद गुरु भगवंत के मुख से संथारा पोरिसी सुननी चाहिए । संथारा पोरिसी के प्रारंभ में चउक्कसाय बोलकर चैत्यवंदन किया जाता है, अथवा शाम को प्रतिक्रमण के बाद सामायिक पारते समय **`चउक्कसाय'** बोलकर चैत्यवंदन करते है ।

इस प्रकार कुल **7** बार चैत्यवंदन हो जाते हैं ।

एक बार प्रतिक्रमण करनेवाले को 5 चैत्यवंदन ।

दिन में एक ही बार सुबह अथवा शाम को प्रतिक्रमण करनेवाले श्रावक के 5 चैत्यवंदन हो जाते हैं ।

सुबह का प्रतिक्रमण करे तो प्रतिक्रमण के दो चैत्यवंदन और मंदिरजी में त्रिकालपूजा के तीन चैत्यवंदन । शाम का प्रतिक्रमण करे तो शाम के प्रतिक्रमण में `नमोऽस्तु वर्धमानाय' का एक तथा `चउक्कसाय' के बाद का एक इस प्रकार दो चैत्यवंदन हुए ।

त्रिकाल पूजा के तीन, इस प्रकार कुल 5 चैत्यवंदन हुए ।

जो श्रावक सुबह-शाम प्रतिक्रमण नहीं करता हो उसे भी कम से कम तीन बार चैत्यवंदन अवश्य करना चाहिए ।

जो श्रावक पौषध में न हो उसे संथारा पोरिसी स्वयं नहीं पढ़ानी चाहिए, बल्कि गुरु भगवंत या पौषधव्रती पढ़ाते हों, उसका उसे श्रवण करना चाहिए, ऐसी शास्त्रीय विधि है ।

10 आशातनाएँ

तंबोल पाण भोयणुवाणह मेहुन्न सुअण निट्ठवणं ।
मुत्तुच्चारं जुअं वज्जे जिणनाह जगइए ।।61।।

शब्दार्थ

तंबोल=पान-सुपारी, **पाण**=पानी, पेय पदार्थ, **भोयण**=भोजन, **उवाणह**=जूते, **मेहुन्न**=मैथुन, **सुअण**=सोना, **निट्ठवणं**=थूकना, **मुत्त**=पेशाब करना, **उच्चारं**=मलत्याग, **जुअं**=जुँआ, **वज्जे**=त्याग करे, **जिणनाह**=जिनेश्वर भगवंत, **जगइए**=कोट क्षेत्र

भावार्थ

जिनेश्वर भगवंत के मंदिर के क्षेत्र में तंबोल (पान-सुपारी), पानी, भोजन, जूते पहिनना, मैथुन सेवन करना, सोना, थूकना, पेशाब करना, मलत्याग करना और जुआ खेलना ये 10 आशातनाएँ कहलाती हैं, इनका त्याग करना चाहिए ।

विवेचन

जिनमंदिर यह पवित्र क्षेत्र है, उस क्षेत्र में हर कोई प्रवृत्ति करना उचित नहीं है। मंदिर के क्षेत्र में कुछ भी प्रवृत्ति करने से प्रभु की आशातना होती है।

जिनमंदिर संबंधी जघन्य से 10, मध्यम से 42 व उत्कृष्ट से 84 आशातनाएँ हैं। जिनमंदिर में इन आशातनाओं का अवश्य त्याग करना चाहिए।

उपर्युक्त गाथा में जिनमंदिर संबंधी जघन्य 10 आशातनाओं का नाम निर्देश किया है। इन आशातनाओं का अवश्य त्याग करना चाहिए।

(1) जिनमंदिर के क्षेत्र में पान-सुपारी आदि खाना।

(2) जिनमंदिर में पानी पीना।

(3) जिनमंदिर में भोजन करना।

(4) जूते पहिनकर जिनमंदिर में प्रवेश करना।

(5) जिनमंदिर में मैथुन संबंधी क्रीड़ा करना।

(6) जिनमंदिर में सोना, नींद लेना।

(7) जिनमंदिर में थूंकना।

(8) जिनमंदिर में पेशाब करना।

(9) जिनमंदिर में मलत्याग करना।

(10) जिनमंदिर में जुआ खेलना।

देववंदन विधि

इरि नमुक्कार नमुत्थुण अरिहंत थुइ लोग सव्व थुइ पुक्ख।
थुइ सिद्धा वेया थुइ-नमुत्थु जावंति थय जयवी ॥62॥

शब्दार्थ

इरि=इरियावहिय, **नमुक्कार**=नमस्कार, **नमुत्थुण**=नमुत्थुणं सूत्र, **अरिहंत**=अरिहंत चेइयाणं, **थुइ**=स्तुति, **लोग**=लोगस्स सूत्र, **सव्व**=सव्वलोए, **थुइ**=स्तुति, **पुक्ख**=पुक्खरवरदी, **थुइ**=स्तुति, **सिद्धा**=सिद्धाणं बुद्धाणं,

वेया=वेयावच्चगराणं, **थुइ**=स्तुति, **नमुत्थु**=नमुत्थुणं सूत्र, **जावंति**=जावंति चेइयाइं, **थय**=स्तवन, **जयवी**=जयवीयराय सूत्र ।

भावार्थ

इरियावहिय, नमस्कार, नमुत्थुणं-अरिहंत चेइयाणं, थोय, लोगस्स, सव्वलोए-थोय पुक्खर. थोय-सिद्धाणं बुद्धाणं वेयावच्चगराणं थोय-नमुत्थुण जावंति-जावंत स्तवन और जयवीयराय-यह देववंदन की विधि है ।

विवेचन

देववंदन अर्थात् उत्कृष्ट चैत्यवंदन करने के लिए सर्वप्रथम सर्व जीवों के साथ हुए अपराधों की क्षमा मांगने के लिए सर्व प्रथम एक खमासमणा देकर आदेश मांगकर इरियावहिय, तस्स उत्तरी, अन्नत्थ बोलकर एक लोगस्स का कायोत्सर्ग कर (25 श्वासोच्छवास प्रमाण चंदेसु निम्मलयरा तक) प्रकट लोगस्स कहे ।

फिर तीन खमासमणा देकर चैत्यवंदन का आदेश मांगकर जघन्य से तीन गाथा वाला व उत्कृष्ट से 108 गाथावाला संस्कृत, प्राकृत या देशी भाषा का चैत्यवंदन बोलकर जं किंचि कहे ।

फिर पहले-दूसरे अधिकार रुप नमुत्थुणं कहकर अर्ध जयवीयराय बोलकर फिर चैत्यवंदन कर नमुत्थुणं कहे, फिर तीसरे अधिकार रुप अरिहंत चेइयाणं अन्नत्थ कहकर एक नवकार का कायोत्सर्ग कर अधिकृत जिन संबंधी पहली स्तुति कहे ।

फिर चौथे अधिकार रुप लोगस्स और पांचवे अधिकार रुप सव्व लोए अरिहंत बोलकर एक नवकार का कायोत्सर्ग कर

यदि पुरुष चैत्यवंदन करते हो तो कायोत्सर्ग पारकर **नमोऽर्हत्** बोलकर पहली स्तुति कहे । यह सूत्र स्त्रियाँ न बोले ।

अकेले ही चैत्य वंदन करते हो तो नमोऽर्हत् बोलकर स्वयं स्तुति बोले ! अनेक लोग एक साथ में चैत्यवंदन करते हो तो एक व्यक्ति नमोऽर्हत् बोलकर स्तुति बोले व अन्य लोग स्तुति पूरी न हो तब तक कायोत्सर्ग में रहकर स्तुति सुने ।

चतुर्विध संघ देववंदन करता हो तो साधु या श्रावक स्तुति बोले और सिर्फ साध्वी—श्राविका देववंदन करते हो तो साध्वी या श्राविका स्तुति बोले ।

◆ जिनमंदिर में सामान्य से चैत्यवंदन करना हो तो मूल नायक प्रभु की स्तुति कहे । अथवा जिस जिन बिंब के आगे चैत्य वंदन करते हो तो उनकी स्तुति कहे ।

सर्व जिन संबंधी दूसरी स्तुति कहे ।

फिर छठे-सातवे अधिकार रुप पुक्खरवरदी० सुअस्स भगवओ० वंदणवत्तियाए, बोलकर एक नवकार का कायोत्सर्ग कर श्रुत वंदना रुप तीसरी स्तुति कहे ।

फिर आठवे-नौवे-दसवे-ग्यारहवें अधिकार रुप सिद्धाणं

और बारहवें अधिकार रुप वेयावच्चगराणं, अन्नत्थ, बोलकर एक नवकार का कायोत्सर्ग कर नमोऽर्हत् बोलकर शासनदेवता के स्मरण रुप चौथी स्तुति कहे ।

फिर नमुत्थुणं, जावंति, खमासमण देकर जावंत, नमोऽर्हत् बोलकर पूर्वाचार्य रचित स्तवन कहे । (फिर अर्ध जयवीयराय कहकर चैत्यवंदन कहकर नमुत्थुणं कहे । फिर संपूर्ण जय वीयराय कहे ।

चैत्यवंदन महाभाष्य में निर्दिष्ट उत्कृष्ट-उत्कृष्ट चैत्यवंदन में उपरोक्त 12 अधिकार के बाद पुनः नमुत्थुणं कहकर अरिहंत चेइयाणं, कहकर चार दंडक पूर्वक दूसरी बार चार स्तुति बोलकर फिर नमुत्थुणं, जावंति, जावंत केवि, स्तवन, अर्ध जयवीयराय, कहे, फिर चैत्यवंदन, नमुत्थुणं तथा संपूर्ण जयवीयराय कहे । इस प्रकार करने से शास्त्रोक्त द्विगुण चैत्यवंदन होता है, उसी को उत्कृष्टोत्कृष्ट चैत्यवंदन होता है ।

वर्तमान में भी उसी द्विगुण चैत्यवंदन को उत्कृष्ट देववंदन कहते है ।

वेयावच्चगराणं के बाद वंदणवत्तियाए आदि न बोलने का यह कारण है कि सम्यग्दृष्टि देव अविरतिधर है ।

अंत्य-मंगल

सव्वोवाहि-विसुद्धं एवं जो वंदए सया देवे ।
देविंद-विंद-महिअं, परम-पयं पावइ लहुं सो ।।63।।

शब्दार्थ

सव्व=सभी, **उवाहि**=उपाधि, **विसुद्ध**=विशुद्ध, **एवं**=इस प्रकार, **जो**=जो, **वंदए**=वंदन करता है, **सया**=हमेशा, **देवे-देविंद विंद**=देवेन्द्रो के समूह, अथवा देवेन्द्रसूरि, **महिअं**=पूजित, **परमपयं**=परमपद (मोक्ष), **पावइ**=प्राप्त करता है, **लहु**=शीघ्र, **सो**=वह ।

भावार्थ

इस प्रकार जो मनुष्य वीतराग परमात्मा को प्रतिदिन वंदन करता है, वह देवेन्द्रों के समूह से पूजित और सभी प्रकार की उपाधि से विशुद्ध ऐसे मोक्षपद को शीघ्र प्राप्त करता है ।

विवेचन

'चैत्यवंदन भाष्य' ग्रंथ का समापन करते हुए पूज्य **आचार्य श्री देवेन्द्रसूरिजी म.** फरमाते हैं कि जो पुण्यशाली आत्मा प्रस्तुत ग्रंथ में निर्दिष्ट विधि के अनुसार जिनेश्वर परमात्मा की भक्ति करता है, वह आत्मा देवेन्द्रों के समूह से पूजित ऐसे परम पद अर्थात् मोक्षपद को शीघ्र ही प्राप्त करती है ।

इस श्लोक में परम पद के दो विशेषण बतलाए हैं 1) यह मोक्षपद सभी प्रकार की उपाधियों से रहित है । संसार में कदम-कदम पर उपाधियाँ रही हुई हैं जबकि मोक्ष एक ऐसा स्थान है, जहाँ नाम मात्र की भी उपाधि नहीं है ।

2) यह परमपद अर्थात् मोक्ष, देवेन्द्रों के समूह से भी पूजित है अर्थात् देवलोक में रहे हुए सम्यग्दृष्टि इन्द्र भी परमपद मोक्ष के प्रति आदर भाव व्यक्त करते हैं ।

'देविंद' पद के द्वारा ग्रंथकार महर्षि ने परोक्ष रूप से अपने नाम का भी निर्देश कर दिया है ।

गुरुवंदन भाष्य (गाथा छंद)

गुरुवंदण मह तिविहं, तं फिट्टा छोभ बारसावत्तं ।
सिरनमणाइसु पढमं, पुन्नखमासमण दुगि बीअं ।।1।।
जह दुओ रायाणं, नमिउं कज्जं निवेइउं पच्छा ।
विसज्जिओ वि वंदिय, गच्छइ एमेव इत्थ दुगं ।।2।।
आयारस्स उ मूलं, विणओ सो गुणवओ य पडिवत्ती ।
सा य विहि वंदणाओ, विहि इमो बारसावत्ते ।।3।।
तइयं तु छंदणदुगे, तत्थमिहो आइमं सयलसंघे ।
बीयं तु दंसणीण य, पयट्ठियाणं च तइयं तु ।।4।।
वंदण-चिइ-किइकम्मं, पूयाकम्मं च विणयकम्मं च ।
कायव्वं कस्स व केण, वा वि काहे व कइखुत्तो ।।5।।
कइ ओणयं कइ सिरं, कइहिं व आवस्सएहि परिसुद्धं ।
कइ दोस विप्पमुक्कं, किइ कम्मं कीस कीरइ वा ।।6।।
पण नाम पणाहरणा, अजुग्गपण जुग्गपण चउ अदाया ।
चउदाय पण निसेहा, चउ अणिसेहट्ठ कारणया ।।7।।
आवस्सय मुहणंतय, तणुपेह पणीस-दोस बत्तीसा ।
छ गुण गुरुठवण दुग्गह-दुछवीसक्खर गुरु पणीसा ।।8।।
पय अडवन्न छ ठाणा, छगुरुवयणा आसायण तित्तीसं ।
दुविही दुवीस दारेहिं, चउसया बाणउइ ठाणा ।।9।।
वंदणयं चिइकम्मं, किइकम्मं पूअकम्मं विणय कम्मं ।
गुरुवंदण पण नामा, दव्वे भावे दुहोहेण (दुहाहरणा) ।।10।।
सीयलय खुड्डुए वीर, कन्ह सेवग दु पालए संबे ।
पंचे ए दिट्ठंता, किइकम्मे दव्वभावेहिं ।।11।।
पासत्थो ओसन्नो, कुसील संसत्तओ अहा छंदो ।
दुग-दुग-ति-दुग-णेगविहा, अवंदणिज्जा जिणमयंमि ।।12।।
आयरिय उवज्झाए, पवित्ति थेरे तहेव रायणिए ।
किइकम्म-निज्जरट्ठा, कायव्वमिमेसिं पंचण्हं ।।13।।

माय पिय जिट्ठ भाया, ओमावि तहेव सव्व रायणिए ।
किइकम्म न कारिज्जा, चउ समणाई कुणंति पुणो ।।14।।
विक्खित्त पराहुत्ते, अपमत्ते मा कयाइ वंदिज्जा ।
आहारं नीहारं, कुणमाणे काउकामे अ ।।15।।
पसंते आसणत्थे अ, उवसंते उवट्ठिए ।
अणुन्नवित्तु मेहावी, किइकम्मं पउंजइ ।।16।।
पडिक्कमणे सज्झाए, काउसग्गावराह पाहुणए ।
आलोयण संवरणे, उत्तमट्ठे य वंदणयं ।।17।।
दो वणयमहाजायं, आवत्ता बार चउसिर तिगुत्तं ।
दुपवेसिग निक्खमणं, पणवीसावसय किइकम्मे ।।18।।
किइकम्मं पि कुणंतो, न होइ कम्मनिज्जराभागी ।
पणवीसामन्नयरं, साहू ठाणं विराहंतो ।।19।।
दिट्ठि पडिलेह एगा, छ उड्ढ पफ्फोड तिग तिगंतरिया ।
अक्खोड-पमज्जणया, नव नव मुहपत्ति पणवीसा ।।20।।
पायाहिणेण तिय तिय, वामेयर बाहु सीस मुह हियए ।
अंसुड्ढाओ पिट्ठे, चउ छप्पय देह पणवीसा ।।21।।
आवस्सएसु जह जह, कुणइ पयत्तं अहीणमइरित्तं ।
तिविहकरणोवउत्तो, तह तह से निज्जरा होइ ।।22।।
दोस अणाढिय थड्ढिय, पविद्ध परिपिंडियं च टोलगइं ।
अंकुस कच्छभरिंगिय मच्छुवत्तं मणपउट्ठं ।।23।।
वेइयबद्ध भयंतं, भय गारव मित्त कारणा तिन्नं ।
पडिणीय रूट्ठ तज्जिय, सढ हीलिय विपलिउंचिययं ।।24।।
दिट्ठमदिट्ठं सिंगं, कर तम्मोअण अलिद्धणालिद्धं ।
ऊणं उत्तरचूलिअ, मूअं ढड्ढर चुडलियं च ।।25।।
बत्तीस दोस परिसुद्धं, किइकम्मं जो पउंजइ गुरूणं ।
सो पावइ निव्वाणं, अचिरेण विमाणवासं वा ।।26।।
इह छच्च गुणा विणओवयार माणाइभंग गुरु पूआ ।
तित्थयराण य आणा, सुय धम्माराहणाऽकिरिया ।।27।।

गुरुगुणजुत्तं तु गुरुं, ठाविज्जा अहव तत्थ अक्खाईं ।
अहवा नाणाइतियं, ठविज्ज सक्खं गुरु अभावे ।।28।।
अक्खे वराडए वा, कट्ठे पुत्थे अ चित्तकम्मे अ ।
सब्भावमसब्भावं, गुरुठवणा इत्तरावकहा ।।29।।
गुरु विरहंमि ठवणा, गुरूवएसोवदंसणत्थं च ।
जिणविरहंमि जिण-बिंब-सेवणामंतणं सहलं ।।30।।
चउदिसि गुरुग्गहो इह, अहुट्ठ तेरस करे सपरपक्खे ।
अणणुन्नायस्स सया, न कप्पए तत्थ पविसेउं ।।31।।
पण तिग बारस दुग तिग, चउरो छट्ठाण पय इगुणतीसं ।
गुणतीस सेस आवस्सयाइ, सव्वपय अडवन्ना ।।32।।
इच्छा य अणुन्नवणा, अव्वाबाहं च जत्त जवणा य ।
अवराह खामणा वि अ, वंदणदायस्स छट्ठाणा ।।33।।
छंदेणणुजाणामि, तहत्ति तुब्भं पि वट्टए एवं ।
अहमवि खामेमि तुमं, वयणाइं वंदणरिहस्स ।।34।।
पुरओ पक्खासन्ने, गंता चिट्ठण निसीअणायमणे ।
आलोअण पडिसुणणे, पुव्वालवणे य आलोए ।।35।।
तह उवदंस निमंतण, खद्धाययणे तहा अपडिसुणणे ।
खद्धति य तत्थगए, किं तु तज्जाय नोसुममणे ।।36।।
नो सरसि कहं छित्ता, परिसंभित्ता अणुट्ठियाइ कहे ।
संथार पायघट्टण, चिट्ठुच्च समासणे आवि ।।37।।
इरिया कुसुमिणुसग्गो, चिइवंदण पुत्ति वंदणा-लोयं ।
वंदण खामण वंदण, संवर चउछोभ दुसज्झाओ ।।38।।
इरिया चिइ वंदण पुत्ति, वंदण चरिम वंदणा लोयं ।
वंदण खामण चउ छोभ, दिवसुस्सग्गो दुसज्झाओ ।।39।।
एयं किइकम्मविहिं, जुंजुंता चरणकरण माउत्ता ।
साहू खवंति कम्मं, अणेगभव संचिअमणंतं ।।40।।
अप्पमइ भव्वबोहत्थ, भासियं विवरीयं च जमिह मए ।
तं सोहंतु गीयत्था, अणभिनिवेसी अमच्छरिणो ।।41।।

2

गुरुवंदन भाष्य

जैन शासन में गुरुतत्त्व की महिमा अपरंपार है । भव सागर से पार उतरने में गुरु ही नौका के समान श्रेष्ठ आलंबन है । ठीक ही कहा है-**'गुरु बिन भवनिधि तरइ न जाइ ।'** गुरु के बिना भव सागर से पार उतरना शक्य नहीं है । ऐसे उपकारी गुरु को प्रतिदिन वंदन करना यह साधु व श्रावक का अनिवार्य कर्तव्य है ।

छह आवश्यकों में भी तीसरा आवश्यक गुरुवंदन है ।

गुरुवंदन के प्रकार, गुरुवंदन के योग्य कौन ? अयोग्य कौन ? गुरु वंदन के दोष, गुरु की आशातनाएँ, गुरुवंदन से लाभ, गुरुवंदन न करने से नुकसान इत्यादि अनेकविध पदार्थों का बोध प्रस्तुत गुरुवंदन भाष्य से होता है ।

गुरुवंदण मह तिविहं, तं फिट्टा छोभ बारसावत्तं ।
सिरनमणाइसु पढमं, पुन्न खमासमणदुगि बीअं ।।1।।

शब्दार्थ

गुरुवंदणं=गुरु को वंदन, **अह**=अब, **तिविहं**=तीन प्रकार का, **तं**=वह, **फिट्टा**=फेटावंदन, **छोभ**=छोभवंदन, **बारसावत्तं**=द्वादशावर्तवंदन, **सिरनमणाइसु**=मस्तक झुकाने आदि में, **पढमं**=पहला, **पुन्न**=संपूर्ण, **खमासमण**=खमासमण, **दुगि**=दो देने के द्वारा, **बीअं**=थोभवंदन ।

भावार्थ

देववंदन का वर्णन करने के बाद अब गुरुवंदन का वर्णन करते हैं । गुरुवंदन के तीन प्रकार हैं-फेटा वंदन, थोभ वंदन और द्वादशावर्तवंदन । उसमें मस्तक झुकाना आदि द्वारा पहला फेटावंदन होता है । गुरु को संपूर्ण दो खमासमणे आदि देने द्वारा थोभ वंदन होता है ।

विवेचन

वंदन के पात्र ऐसे पूज्य उपकारी गुरु भगवंतों को भी हर समय हर प्रकार का वंदन नहीं किया जाता है। जब वे विहार में हों, कहीं जा आ रहे हों तो बीच मार्ग में उन्हें थोभ या द्वादशावर्त वंदन नहीं किया जाता है, उस समय तो उन्हें मात्र हाथ जोड़कर फेटावंदन ही किया जाता है।

गुरु अपने आसन पर बैठे हों और प्रसन्नचित्त हों, तब थोभ वंदन किया जाता है। आचार्य आदि गुरु भगवंतों को द्वादशावर्त वंदन किया जाता है।

इन तीन प्रकार के गुरुवंदन के स्वरूप का यहाँ वर्णन किया जा रहा है, उसमें सर्वप्रथम वंदन के स्वरूप को बतलाते हुए कहते हैं कि जिसमें मस्तक झुकाना, हाथ जोड़ना आदि प्रवृत्ति की जाती है, उसे फिट्टा वंदन कहते हैं।

दूसरे प्रकार के थोभ वंदन में दो बार खमासमणे दिए जाते हैं। वर्तमान में दो खमासमणे देने के बाद 'इच्छकार' सूत्र के माध्यम से गुरुदेव की सुखशाता पूछी जाती है, फिर गुरु भगवंत गणी, पंन्यास, उपाध्याय एवं आचार्य आदि पदवी धारक हों तो पुनः खमासमणा दिया जाता है, उसके बाद गुरुखामणासूत्र बोलकर गुरु के पास अपने अपराधों की क्षमा मांगी जाती है।

जह दुओ रायाणं, नमिउं कज्जं निवेइउं पच्छा।
विसज्जिओ वि वंदिय, गच्छइ एमेव इत्थ दुगं ॥2॥

शब्दार्थ

जह=जिसप्रकार, **दूओ**=दूत, **रायाणं**=राजा को, **नमिउं**=नमस्कार करके, **कज्जं**=कार्य, **निवेइउं**=निवेदन करके, **पच्छा**=पश्चात्, **विसज्जिओ**=विसर्जन होने पर, **वि**=भी, **वंदिय**=वंदन करके, **गच्छइ**=जाता है, **एमेव**=इस प्रकार, **इत्थ**=यहाँ, **दुगं**=दो बार वंदना होती है।

भावार्थ

जिस प्रकार राजा का सेवक सर्वप्रथम राजा को निवेदन करके फिर अपने कार्य के संबंध में निवेदन करता है और उसके बाद राजा के द्वारा

विसर्जन करने के बाद पुनः दूसरी बार नमस्कार करके फिर जाता है, उसी प्रकार यहाँ भी दो बार गुरु को वंदन किया जाता है अर्थात् दो बार खमासमण सूत्र बोला जाता है और दो बार वांदना सूत्र बोला जाता है ।

विवेचन

प्रश्न खड़ा होता है कि गुरुवंदन करते समय दो बार खमासमणे क्यों दिये जाते हैं ? इसका समाधान करते हुए कहते हैं कि जिस प्रकार लौकिक व्यवहार में भी जब कोई दूत राजा के पास जाता है, तब सर्वप्रथम राजा को नमस्कार करके ही अपनी बात प्रारंभ करता है ।

राजा के पास आते ही राजा को नमस्कार करना, यह दूत का सर्व प्रथम कर्तव्य है । नमस्कार करने के बाद ही दूत, राजा को अपने कार्य के संबंध में निवेदन करता है ।

जब कार्य की समाप्ति हो जाती है और दूत को राजा के पास से विदाई लेनी होती है, तब विदाई के पूर्व वह दूत पुनः राजा को नमस्कार करता है । इस प्रकार दूत राजा के पास आते समय और राजा के पास से विदाई लेते समय राजा को नमस्कार करता है ।

राजा तो लौकिक पुरुष है, जबकि गुरु भगवंत तो लोकोत्तर पुरुष हैं । अतः उनको भी वंदन करते समय दो बार खमासमणे, दो बार वांदणे आदि देना जरूरी है ।

आयारस्स उ मूलं, विणओ सो गुणवओ य पडिवत्ती ।
सा य विहि वंदणाओ, विहि इमो बारसावत्ते ।।3।।

शब्दार्थ

आयारस्स=आचार का, **उ**=तथा, **मूलं**=मूल, **विणओ**=विनय, **सो**=वह, **गुणवओ**=गुणवानों का, **य**=तथा, **पडिवत्ती**=भक्ति, **सा**=वह (भक्ति), **विहि**=विधिपूर्वक, **वंदणाओ**=वंदन से, **विहि**=विधि, **इमो**=यह, **बारसावत्ते**=द्वादशावर्त वंदन में है ।

भावार्थ

आचार का मूल विनय है और वह विनय गुणवान की भक्ति स्वरूप है । गुणवान की भक्ति विधिपूर्वक वंदन से होती है और वह विधि द्वादशावर्त वंदन में इस प्रकार है ।

विवेचन

जैन शासन की समग्र आराधना पंचाचार स्वरूप है । ज्ञानाचार, दर्शनाचार, चारित्राचार, तपाचार और वीर्याचार इन आचारों के पालन में आत्मा की सच्ची उन्नति है ।

इस पंचाचार की आराधना का मूल विनय धर्म की आराधना है । जो व्यक्ति विनयसंपन्न है, वो ही व्यक्ति पंचाचार का अच्छी तरह से पालन कर सकता है । परंतु जिसके जीवन में विनय गुण नहीं हैं, वह इन पंचाचारों का पालन कैसे कर सकेगा ?

जिसके जीवन में नम्रता नहीं है और जो अभिमान से ग्रस्त है, वह सही मायने में आचार धर्म का पालन नहीं कर सकता है ।

प्रायः हर प्रकरण ग्रंथ के प्रारंभ में पंच परमेष्ठि-नमस्कार रूप मंगलाचरण देखने को मिलता है । यह मंगलाचरण भी हमें जीवन में विनय गुण को आत्मसात् करने की ही प्रेरणा करता है ।

जैन शासन में सर्वप्रथम श्रुतज्ञान के अभ्यास में नवकार महा-मंत्र सिखाया जाता है । इस नवकार मंत्र में पाँच बार नमस्कार आता है । इस सूत्र का प्रारंभ भी 'नमो' पद से हुआ है-अर्थात् यह सूत्र भी विनय गुण का प्रेरक है ।

भगवान महावीर परमात्मा ने अपने निर्वाण के पूर्व जो अंतिम देशना दी जो आज भी **'उत्तराध्ययन सूत्र'** के रूप में विद्यमान है, उस आगम ग्रंथ में कुल 36 अध्ययन हैं । उनमें सबसे पहला अध्ययन विनय अध्ययन ही है । यह अध्ययन हमें अपने जीवन में विनय गुण को आत्मसात् करने की सुंदर प्रेरणा देता है । इस अध्ययन में विनय का स्वरूप, विनीत के लक्षण, अविनीत के लक्षण, विनय से लाभ, अविनय से नुकसान आदि का बहुत ही सुंदर वर्णन किया है ।

जीवन में एक विनय गुण को आत्मसात् किया जाय तो अन्य सभी गुण स्वतः ही खिंचकर आ जाते हैं । विनय के अभाव में अन्य गुणों का अस्तित्व हो या न हो, कुछ फर्क नहीं पड़ता है अतः अपने जीवन को

गुणसंपन्न बनाने के लिए सर्व प्रथम जीवन में विनय गुण को आत्मसात् करने के लिए विशेष प्रयत्न करना चाहिए ।

उपर्युक्त गाथा में कहा है कि आचार का मूल विनय है और यह विनय गुणवान् आत्माओं की भक्ति स्वरूप है ।

गुणीजनों की भक्ति करने से ही विनय गुण की आराधना-साधना होती है ।

गुणवान् ऐसे गुरुजनों की विधि के पालन पूर्वक वंदन क्रिया करने से भी विनय गुण की आराधना होती है, अत: प्रस्तुत में यहाँ द्वादशावर्त-वंदन के माध्यम से गुरुजनों के वंदन की विधि बतलाई जाती है ।

तइयं तु छंदणदुगे तत्थमिहो आइमं सयलसंघे ।
बीयं तु दंसणीण य पयट्ठियाणं च तइयं तु ॥4॥

शब्दार्थ : तइयं=तीसरा वंदन, **तु**=और, **छंदणदुगे**=दो बार वांदणे में, **तत्थ**=वहाँ, **मिहो**=परस्पर, **आइमं**=पहला, **सयलसंघे**=सकल संघ में, **बीयं**=दूसरा, **दंसणीण**=मुनि को, **पयट्ठियाणं**=पद में रहे हुए, **तइयं**=तीसरा ।

भावार्थ

तीसरा द्वादशावर्त वंदन, दो वांदणा देकर किया जाता है । इन तीनों वंदन में पहला फेटा वंदन संघ में परस्पर किया जाता है । दूसरा छोभ वंदन साधु-साध्वी को ही किया जाता है और तीसरा द्वादशावर्त वंदन आचार्य आदि पदस्थ मुनियों को किया जाता है ।

विवेचन

1) फिट्टा वंदन :- हाथ जोड़कर मस्तक झुकाकर 1-2-3 या 4 अंगों द्वारा जो नमस्कार किया जाता है, उसे फिट्टा वंदन कहते हैं ।

2) थोभ वंदन :- दो खमासमणे आदि देकर जो वंदन किया जाता है, उसे छोभ वंदन कहते हैं ।

3) द्वादशावर्त वंदन :- वांदणा सूत्र के माध्यम से जो वंदन किया जाता है, उसे द्वादशावर्तवंदन कहते हैं ।

कौन किसे कौनसा वंदन करेगा ?

1) फिट्टावंदन :- यह वंदन संघ में परस्पर किया जाता है। एक साधु दूसरे साधु को, एक साध्वी दूसरी साध्वी को, एक श्रावक दूसरे श्रावक को व एक श्राविका दूसरी श्राविका को करे! श्रावक, साधु आदि चारों को; श्राविका भी साधु आदि चारों को; साध्वी साधु व साध्वी को एवं साधु सिर्फ साधु को ही फिट्टा वंदन करें।

2) थोभवंदन :- एक साधु अपने से ज्येष्ठ पर्यायवाले साधु को, एक साध्वी अपने से ज्येष्ठ पर्यायवाली साध्वी को तथा छोटे-बड़े पर्यायवाले साधु को, श्रावक सिर्फ सभी साधु भगवंतों को तथा श्राविका, साधु-साध्वी को दो खमासमण आदि देकर थोभवंदन करे।

प्रश्न 1) क्या दीर्घ संयम पर्यायवाली साध्वी, अल्प संयम पर्यायवाले साधु को भी थोभवंदन करेगी ?

उत्तर :- हाँ !

धर्म में पुरुष की प्रधानता होने से 100 वर्ष की दीक्षित साध्वी भी एक दिन के संयम पर्यायवाले साधु को वंदन करती है।

प्रश्न :- क्या श्रावक को थोभवंदन हो सकता है ?

उत्तर :- नहीं! श्रावक उत्कृष्ट रूप से बारह व्रतों का पालन करता हो तो भी उसे थोभ वंदन नहीं किया जा सकता है।

भरत महाराजा को आरीसाभवन में केवलज्ञान हो गया था, उस समय इन्द्र महाराजा वहाँ पर उपस्थित हुए। उन्होंने भरत महाराजा को सर्वप्रथम साधु वेष प्रदान किया। भरत केवली ने भी साधु वेष स्वीकार किया, उसके बाद ही इंद्र महाराजा ने उन्हें वंदन किया। शासन की व्यवस्था व्यवहार-मार्ग से ही चलती है, अतः जीवन में साधुता के साथ साधु वेष भी जरूरी है। श्रावक वेष में रहे व्यक्ति को थोभ वंदन करने से जिनाज्ञा का भंग होता है।

3) द्वादशावर्त वंदन :- आचार्य आदि पदवीधरों को यह वंदन सभी साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविका करते हैं।

वंदण-चिइ-किइकम्मं, पूयाकम्मं च विणयकम्मं च ।
कायव्वं कस्स व केण, वा वि काहे व कइखुत्तो ।।5।।

कइ ओणयं कइ सिरं, कइहिं व आवस्सएहिं परिसुद्धं ।
कइ दोस विप्पमुक्कं, किइ कम्मं कीस कीरइ वा ।।6।।

शब्दार्थ

वंदण=वंदन कर्म, **चिइ**=चितिकर्म, **किइकम्मं**=कृति कर्म, **पूयाकम्मं**=पूजा कर्म, **विणयकम्मं**=विनयकर्म, **कायव्वं**=करना चाहिए, **कस्स**=किसको, **व**=अथवा, **केण**=किससे, **वावि**=अथवा भी, **काहे**=कब, **कइखुत्तो**=कितनी बार ।।**5**।।

कइओणयं=कितनी बार अवनत, **कइसिरं**=कितनीबार शीर्षनमन, **कइहिं**=कितनी बार, **आवस्सएहिं**=आवश्यक द्वारा, **परिसुद्धं**=विशुद्ध, **कइ दोसविप्पमुक्कं**=कितने दोषों से रहित, **किइकम्मं**=कृतिकर्म, **कीस**=किस कारण, **कीरइ**=किया जाता है, **वा**=अथवा ।।6।।

भावार्थ

वंदन कर्म, चिति कर्म, कृति कर्म, पूजा कर्म और विनय कर्म ये पाँच गुरुवंदन के नाम हैं, यह वंदन किसे करे ? कौन करे ? कब करे ? कितनी बार करे ? ।।5।।

वंदन में शिष्य के अवनत कितने ? शीर्षनमन कितने ? कितने दोषों से रहित करे ? कृतिकर्म किसके लिए किया जाता है ? ये नौ द्वार वंदन-विधि में कहे गए हैं ।

विवेचन : उपर्युक्त दो गाथाएँ ग्रंथकार श्री देवेन्द्रसूरिजी म. के द्वारा विरचित नहीं हैं । ये दो गाथाएँ सिद्धांत पर की भक्ति से आवश्यक निर्युक्ति में से यहाँ निर्देश की गई हैं ।

ग्रंथकार महर्षि इस गुरुवंदन भाष्य में 22 द्वारों द्वारा गुरुवंदन पर विशेष प्रकाश डालना चाहते हैं, परंतु सिद्धांत पर की भक्ति के कारण उन्होंने आवश्यक निर्युक्ति में से ये दो गाथाएँ साभार निर्देश की हैं ।

पण नाम पणाहरणा, अजुग्गपण जुग्गपण चउ अदाया ।
चउदाय पण निसेहा, चउ अणिसेहट्ठ कारणया ।।7।।
आवस्सय मुहणंतय तणुपेह पणीस-दोस बत्तीसा ।
छ गुण गुरुठवण दुग्गह-दुछवीसक्खर गुरु पणीसा ।।8।।
पय अडवन्न छ ठाणा, छगुरुवयणा आसायण तित्तीसं ।
दुविही दुवीस दारेहिं चउसमा बाणउइ ठाणा ।।9।।

शब्दार्थ

पण=पाँच, **नाम**=नाम, **पणाहरणा**=पाँच उदाहरण, **अजुग्गपण**=पाँच अयोग्य, **जुग्गपण**=पाँच योग्य, **चउ**=चार, **अदाया**=नहीं देनेवाले, **चउदाय**=चार दाता, **पण**=पाँच, **निसेहा**=निषिद्ध, **चउ**=चार, **अणिसेह**=अनिषेध, **अट्ठ**=आठ, **कारणया**=कारण ।।7।।

आवस्सय=आवश्यक, **मुहणंतय**=मुहपत्ति, **तणुपेह**=शरीर की पडिलेहना, **पणीस**=पच्चीस, **दोसबत्तीसा**=बत्तीस दोष, **छ गुण**=वंदन से छ गुण, **गुरु ठवण**=गुरु स्थापना, **दुग्गह**=दो अवग्रह, **दुछवीसक्खर**=226 अक्षर, **गुरुपणीसा**=25 गुरु अक्षर **।।8।।**

पय=पद, **अडवन्न**=अट्ठावन, **छ ठाणा**=छ स्थान, **छ गुरु वयणा**=छ गुरु वचन, **आसायणतित्तीसं**=33 आशातनाएँ, **दुविही**=दो विधि, **दुवीस**=बाईस, **दारेहिं**=द्वारों द्वारा, **चउसया**=चारसौ, **बाणउइ**=बियानवे, **ठाणा**=स्थान ।।9।।

भावार्थ

गुरु वंदन के पाँच नाम, पाँच दृष्टांत, वंदन के अयोग्य पाँच साधु, वंदन के योग्य पाँच साधु, वंदन नहीं करानेवाले चार साधु, वंदन करानेवाले चार साधु, वंदन के पाँच निषेधस्थान, वंदन के चार अनिषेध स्थान, वंदन के आठ कारण (ये नौ द्वार 7 वीं गाथा में) कहे गए हैं । ।।7।।

25 आवश्यक मुहपत्ति की, 25 प्रतिलेखना शरीर की, 25 प्रतिलेखना वंदन समय, छोड़ने योग्य 32 दोष, वंदन से छ गुण, गुरु की स्थापना, दो

प्रकार का अवग्रह, वंदन सूत्र के 226 अक्षर (ये आठ द्वार आठवीं गाथा में कहे गए हैं) ।।8।।

वंदन सूत्र में 58 पद, वंदन के छ स्थान, वंदन समय गुरु को बोलने योग्य छ वचन, गुरु संबंधी 33 आशातनाएँ, वंदन की 2 विधि इस प्रकार 22 मुख्य द्वारों के 492 स्थान होते हैं ।

विवेचन

ग्रंथकार महर्षि देवेन्द्रसूरिजी म. ने 22 द्वारों के द्वारा प्रस्तुत गुरुवंदन भाष्य में `गुरु-वंदन' संबंधी विस्तृत जानकारी प्रदान की है ।

उपर्युक्त तीन गाथाओं में उन 22 द्वारों के नाम एवं उनके भेदों की भी संख्या का निर्देश किया है । 22 द्वारों के कुल 492 भेद होते हैं ।

पहला द्वारः गुरुवन्दन के पाँच नाम

वंदणयं चिइकम्मं किइकम्मं पूअकम्मं विणय कम्मं ।
गुरुवंदण पण नामा, दव्वे भावे दुहोहेण (दुहाहरणा) ।।10।।

शब्दार्थ

वंदणयं=वंदन कर्म, **चिइकम्मं**=चितिकर्म, **किइकम्मं**=कृतिकर्म, **विणयकम्मं**=विनय कर्म, **पूअकम्मं**=पूजा कर्म, **गुरुवंदण**=गुरुवंदन, **पण नामा**=पांच नाम, **दव्वे**=द्रव्य से, **भावे**=भाव से, **दुहा**=दो प्रकार से, **ओहेण**=सामान्य से, **दुहाहरणा**=दो उदाहरण ।

भावार्थ

वंदन कर्म, चितिकर्म, कृतिकर्म, विनय कर्म और पूजा कर्म ये गुरुवंदन के पाँच नाम हैं । प्रत्येक के द्रव्य और भाव से दो-दो भेद समझने चाहिए ।

विवेचन

दुनिया में हर पदार्थ के अनेक पर्यायवाची नाम होते हैं । जैसे-कमल को पंकज, सरोज भी कहा जाता है, घड़े को कुंभ, कलश भी कहा जाता

है उसी प्रकार यहाँ वंदन के पाँच पर्यायवाची नामों का निर्देश किया है। यद्यपि शब्दभेद से कुछ अर्थभेद भी होता है, फिर भी सामान्य से समानार्थक कहलाते हैं। ये सभी द्रव्य और भाव से दो-दो प्रकार के हैं।

1. वंदन कर्म :- प्रशस्त अर्थात् शुभ मन, वचन और काया के द्वारा जो गुरु को वंदन, नमस्कार, प्रणाम आदि किया जाता है, उसे वंदन कर्म कहते हैं। इसके दो भेद हैं–

क) द्रव्यवंदन :- जो क्रिया वास्तविक फल देने में समर्थ न हो, उसे द्रव्य क्रिया कहते हैं और जो क्रिया वास्तविक फल देने में समर्थ हो, उसे भाव क्रिया कहते हैं। यहाँ वंदन के भी दो भेद बतलाए हैं।

मिथ्यादृष्टि की वंदन क्रिया को द्रव्यवंदन कहते हैं तथा उपयोग रहित सम्यग्दृष्टि की वंदन क्रिया को भी द्रव्यवंदन कहते हैं।

ख) भाववंदन :- उपयोग सहित सम्यग्दृष्टि की गुरुवंदन क्रिया को भाव वंदन कहा जाता है।

2. चितिकर्म :- रजोहरण आदि उपधि के साथ वंदन आदि शुभ क्रिया से शुभ कर्म का संचय करानेवाले कर्म को चितिकर्म कहते हैं अथवा कारण में कार्य का उपचार करके रजोहरण आदि उपधि के संग्रह को भी चितिकर्म कहते हैं, इसके भी दो भेद हैं–

क) द्रव्य चितिकर्म :- तापस आदि मिथ्यादृष्टि जीवों की तापस आदि के योग्य उपधि उपकरणपूर्वक की क्रिया को द्रव्यचितिकर्म कहते हैं तथा सम्यग्दृष्टि की उपयोगशून्य रजोहरण आदि उपधिपूर्वक की कुशल क्रिया को द्रव्य चितिकर्म कहते हैं।

ख) भाव चिति कर्म :- सम्यग्दृष्टि जीवों की उपयोगपूर्वक रजोहरण आदि उपकरण पूर्वक की क्रिया को भाव चितिकर्म कहते हैं।

3. कृतिकर्म :- मोक्ष के उद्देश्य से वंदन-नमस्कार आदि क्रिया की जाती है, उसे कृतिकर्म कहते हैं।

क) द्रव्यकृतिकर्म :- निह्नव आदि मिथ्यादृष्टियों की तथा उपयोग रहित सम्यग्दृष्टि की नमस्कार क्रिया को द्रव्य कृतिकर्म कहते हैं।

ख) भावकृतिकर्म :- उपयोगपूर्वक सम्यग्दृष्टि की नमस्कार आदि क्रिया को भावकृतिकर्म कहते हैं।

4. पूजाकर्म :- मन-वचन और काया के प्रशस्त-शुभ व्यापार को पूजा कर्म कहते हैं। इसके भी दो भेद हैं–

क) द्रव्य पूजा कर्म :- उपयोग रहित सम्यग्दृष्टि एवं मिथ्यादृष्टि के द्वारा प्रशस्त व्यापार को द्रव्य पूजा कर्म कहते हैं।

ख) भाव पूजा कर्म :- उपयोगपूर्वक सम्यग्दृष्टि के प्रशस्त शुभ व्यापार को भावपूजा कर्म कहते हैं।

5. विनय कर्म :- मिथ्यादृष्टि का और उपयोग रहित सम्यग्दृष्टि का जो गुरु के प्रति विनय होता हैं, उसे द्रव्य विनय कर्म कहते हैं और उपयोगपूर्वक सम्यग्दृष्टि का जो गुरु के प्रति विनय होता हैं उसे भाव विनय कर्म कहते है।

दूसरा द्वारः पाँच दृष्टान्त

सीयलय खुड्डुए वीर कन्ह सेवग दु पालए संबे ।
पंचे ए दिट्ठंता, किइकम्मे दव्वभावेहिं ॥11॥

शब्दार्थ

सीयलए=शीतलाचार्य, **खुड्डुए**=क्षुल्लकाचार्य, **वीर**=वीरक सालवी, **कन्ह**=कृष्ण, **सेवगदु**=दो राजसेवक, **पालए**=पालक, **संबे**=शांब, **पंचे**=पाँच, **ए**=ये, **दिट्ठंता**=दृष्टांत, **किइकम्मे**=कृतिकर्म में, **दव्वभावेहिं**=द्रव्य और भाव से ।

भावार्थ

द्रव्य कृति कर्म और भाव कृति कर्म अर्थात् द्रव्यवंदन और भाववंदन में क्रमशः शीतलाचार्य, क्षुल्लकाचार्य, वीरक शालवी और कृष्ण, दो राजसेवक तथा पालक एवं शांबकुमार ये पाँच दृष्टांत हैं।

विवेचन

पहले गुरुवंदन के जो पाँच पर्यायवाची नाम बतलाए थे, उनके संदर्भ में यहाँ पाँच दृष्टांत बतलाए हैं। इनमें पहले और दूसरे दृष्टांत में पहले एक ही मुनि का द्रव्य वंदन और बाद में उसी मुनि का भाववंदन बतलाया

गया है जबकि शेष तीन दृष्टांतों में दो व्यक्तियों में एक की द्रव्य वंदना और दूसरे की भाववंदना कही गई है ।

वंदन कर्म में शीतलाचार्य

श्रीपुरनगर में शीतल नाम का राजा राज्य करता था । एक बार उस नगर में आचार्यश्री धर्मघोषसूरिजी म. का आगमन हुआ । उनकी धर्मदेशना सुनकर शीतलराजा का मन संसार से विरक्त हो गया । एक शुभ दिन संसार के मोह माया के बंधनों को तोड़कर शीतल राजा ने भागवती दीक्षा अंगीकार की ।

दीक्षा अंगीकार कर वे ज्ञान-ध्यान की साधना में आकंठ डूब गए । उनकी योग्यता, पात्रता देखकर पूज्य गुरुदेव ने उन्हें आचार्य पद से अलंकृत किया । जैन शासन की वे सुंदर प्रभावना करने लगे ।

शीतलाचार्य की सांसारिक बहिन शृंगारमंजरी के चार पुत्र थे । शृंगारमंजरी के दिल में भी संसार के प्रति तीव्र वैराग्यभाव था । वह अपने पुत्रों को निरंतर संसार की असारता का उपदेश देने लगी । उस उपदेश को सुनकर उन पुत्रों के दिल में वैराग्य का अंकुर प्रस्फुटित हुआ और एक दिन उन्होंने भी किसी अन्य गुरु भगवंत के पास भागवती दीक्षा ले ली । दीक्षा लेकर वे चारित्र धर्म का अच्छी तरह से पालन करने लगे ।

एक बार उन्होंने अपने गुरुदेव की आज्ञा प्राप्तकर शीतलाचार्य को वंदन हेतु विहार प्रारंभ किया । क्रमशः विहार करते हुए वे उस नगर के बाहर तक आ पहुँचे, जिस नगर में शीतलाचार्य विराजमान थे ।

नगर के बाहर पहुँचते-पहुँचते संध्या का समय हो चुका था, अतः उन्होंने सोचा, `प्रातःकाल होने पर हम नगर में जाएंगे और आचार्य भगवंत को वंदना करेंगे, इस प्रकार सोचकर उन्होंने नगर के बाहर रात्रि विश्राम किया ।

आचार्य भगवंत को वंदन करने की भावना-भावना में ही उन सबको केवलज्ञान की प्राप्ति हो गई । केवलज्ञान प्राप्त हो जाने के कारण प्रातःकाल होने पर वे चारों मुनि, आचार्य भगवंत को वंदन करने के लिए नगर में नहीं गए ।

इधर दूसरे दिन सुबह शीतलाचार्य भगवंत अपने सांसारिक भाणेज मुनियों के आगमन की इंतजारी कर रहे थे, परंतु काफी समय व्यतीत होने

पर भी जब वे नहीं आए तो उन्होंने सोचा, `उनके नहीं आने का क्या कारण होगा, क्यों न मैं खुद ही वहाँ चला जाऊँ' इस प्रकार सोचकर शीतलाचार्य स्वयं नगर के बाहर आ गये। वहाँ आने पर उन केवली बने सांसारिक भाणेज मुनियों ने उनको नमस्कार नहीं किया तो उनके मन में थोड़ासा रोष पैदा हो गया।

उन्होंने सोचा, `ये कैसे अविनयी हैं, जो मुझे वंदना नहीं करते हैं।' इस प्रकार सोचकर वे स्वयं रोष से उन केवली मुनियों को वंदन करने लगे।

(मन में वंदन का भाव नहीं होने से उनका यह वंदन द्रव्य वंदन था।)

शीतलाचार्य की इस वंदन क्रिया के बाद उन केवली मुनियों ने कहा, `आपकी यह वंदना द्रव्य वंदना हुई है, अतः अब भाव वंदना करो।'

शीतलाचार्य ने पूछा, `आपको कैसे पता चला ?' मुनियों ने कहा, `ज्ञान से।'

शीतलाचार्य ने कहा, `कौन से ज्ञान से ?'

मुनियों ने कहा, `अप्रतिपाती ज्ञान से।'

अप्रतिपाती ज्ञान की बात सुनते ही शीतलाचार्य एकदम चौंक उठे **``अहो ! इनको केवलज्ञान हो गया है ! अभिमान में आकर मैंने इन केवली भगवंतों की आशातना ही की है। धिक्कार है मेरी आत्मा को।''**

इस प्रकार मन में तीव्र पश्चाताप भाव को धारण करते हुए शीतलाचार्य ने उन केवली भगवंतों को भावपूर्वक वंदना की। इस वंदना के प्रभाव से उन्हें भी तत्क्षण केवलज्ञान हो गया।

चितिकर्मः क्षुल्लकाचार्य

किसी गच्छ के नायक गुणसुंदरसूरिजी ने अपने ज्ञान के बल से देखा, `अब मेरा आयुष्य बहुत थोड़ा ही बाकी है।' इस प्रकार विचार कर उन्होंने संघ की सम्मति के साथ एक छोटी उम्रवाले क्षुल्लक मुनि को आचार्य पद प्रदान कर दिया। वे क्षुल्लक मुनि क्षुल्लकाचार्य के नाम से प्रसिद्ध हुए।

आचार्य गुणसुंदरसूरिजी म. के कालधर्म के बाद गच्छ के सभी मुनि क्षुल्लकाचार्य की आज्ञा में रहने लगे। वे क्षुल्लकाचार्य भी किसी गीतार्थ गुरु के पास शास्त्रों का अभ्यास करने लगे।

एक बार क्षुल्लकाचार्य को मोहनीय कर्म का तीव्र उदय हुआ, इसके फलस्वरूप वे साधुवेष छोड़ने के लिए तैयार हो गए ।

किसी एक मुनि को साथ में लेकर क्षुल्लकाचार्य स्थंडिल भूमि की ओर आगे बढ़े ।

साथ में आए मुनि किसी वृक्ष की ओट में खड़े थे, तभी क्षुल्लकाचार्य तीव्र गति से किसी एक दिशा की ओर आगे बढ़ गए ।

क्षुल्लकाचार्य ने किसी वन में प्रवेश किया । उस वन में चंपा, अशोक, तिलक आदि के अनेक वृक्ष थे, फिर भी लोग उन वृक्षों को छोड़कर चबूतरे के बीच रहे खदिर (खीजडे) वृक्ष की पूजा कर रहे थे । यह दृश्य देख क्षुल्लकाचार्य ने लोगों को पूछा- ``तुम अन्य वृक्षों को छोड़कर इस खीजड़े की पूजा क्यों कर रहे हो ?''

लोगों ने कहा, ``हमारे पूर्वज इस चबूतरे के बीच में रहे खीजड़े के वृक्ष की पूजा करते आ रहे हैं, अतः हम भी इसकी पूजा कर रहे हैं ।''

लोगों के मुख से इस जवाब को सुनकर क्षुल्लकाचार्य ने अपने मन में सोचा, ``अहो ! मैं भी इस खीजड़े के वृक्ष की तरह अत्यंत निर्गुणी हूँ । गच्छ में अनेक योग्य आत्माएँ होने पर भी पूज्य गुरुदेव ने मुझ पर अनुग्रह करके आचार्यपद प्रदान किया है, यह गुरुदेव की कृपा का ही फल है । मुझ में वास्तविक साधुता तो है नहीं फिर भी इन रजोहरण आदि उपकरण रूप चिति कर्म के कारण पूज्य गुरुदेव ने मुझे आचार्यपद प्रदान किया है ।'' इस प्रकार विचार कर वे जंगल में से वापस उपाश्रय में लौट आए ।

क्षुल्लकाचार्य के अचानक गायब हो जाने से गच्छ में रहे मुनि चिंतातुर हो गए थे ।

गच्छ के साधुओं ने आचार्य भगवंत को पूछा, ``इतनी देर आप कहाँ थे ?''

क्षुल्लकाचार्य ने कहा, ``स्थंडिल जाते समय अचानक शूल की पीड़ा हो गई, इस कारण इतनी देर हो गई ।''

उसके बाद गच्छ के मुनि स्वस्थ हुए । क्षुल्लकाचार्य ने भी अपनी भूल का प्रायश्चित्त किया ।

व्रत छोड़ने की इच्छा समय क्षुल्लकाचार्य का रजोहरण आदि उपकरणों का संचय द्रव्य चितिकर्म था और भावपूर्वक प्रायश्चित्त करते समय उनके उन्हीं उपकरणों का संचय `भाव चितिकर्म' हो गया ।

कृतिकर्म कृष्ण और वीरक

द्वारिकानगरी में श्रीकृष्ण महाराजा राज्य करते थे । उनके `वीरक' नाम का एक राजसेवक था, उसकी यह प्रतिज्ञा थी कि `कृष्ण महाराजा का मुँह देखने के बाद ही भोजन करूंगा ।'

श्रीकृष्ण महाराजा वर्षाऋतु में चातुर्मास दरम्यान राजवाटिका के लिए बाहर नहीं निकलते थे, अतः उनके दर्शन के अभाव में वीरक शालवी ने चार मास तक भोजन नहीं किया । चार महीने के बाद जब उसने श्रीकृष्ण महाराजा के दर्शन किए, तब श्रीकृष्ण ने पूछा, ``तुम इतने दुबले कैसे हो गए ?''

उसने कहा, ``आपके दर्शन के अभाव में भोजन नहीं करने की प्रतिज्ञा होने से मेरी यह स्थिति हुई है ।'' उसकी इस बात को सुनकर श्रीकृष्ण ने उन्हें अंतःपुर में भी प्रवेश के लिए अपनी अनुमति दे दी ।

कृष्ण महाराजा के अनेक पुत्रियाँ थीं । विवाह के योग्य होने पर उनकी माताएँ उन्हें श्रीकृष्ण के पास भेजती थीं ।

श्रीकृष्ण अपनी पुत्रियों को पूछते, ``तुम्हें रानी बनना है या दासी ?''

सभी पुत्रियाँ रानी बनने की ही बात करतीं । रानी बनने की बात सुनकर श्रीकृष्ण उन्हें ठाट-बाट के साथ नेमिनाथ प्रभु के पास भेजते और उन्हें दीक्षा दिलाते थे ।

एक बार माता की प्रेरणा से एक पुत्री ने श्रीकृष्ण को कहा, ``मुझे तो दासी बनना है ।''

यह जवाब सुनकर श्रीकृष्ण ने उसका विवाह वीरक सालवी के साथ करा दिया और वीरक को भी कहा कि ``इससे खूब कठोर गृहकार्य करवाना ।''

वह वीरक श्रीकृष्ण की पुत्री से खूब कठोर गृहकार्य करवाने लगा,

इसके फलस्वरूप वह कृष्णपुत्री कंटाल गई । उसने श्रीकृष्ण के पास आकर कहा, ``मुझे दासी नहीं, रानी बनना है ।''

उसी समय वीरक सालवी की अनुमति लेकर श्रीकृष्ण ने उस पुत्री को भी नेमिनाथ प्रभु के पास दीक्षा दिलाई ।

अपनी पुत्रियों के प्रति श्रीकृष्ण महाराजा कठोर बनते थे, उसमें भी पुत्रियों के आत्महित की चिंता ही मुख्य कारण थी ।

एक बार गिरनार पर्वत पर श्री नेमिनाथ प्रभु का आगमन हुआ । देवताओं ने आकर समवसरण की रचना की ।

श्रीकृष्ण महाराजा वीरक सालवी के साथ नेमिनाथ प्रभु को वंदन के लिए गए ।

श्रीकृष्ण महाराजा ने नेमिनाथ प्रभु के 18000 साधुओं को विधिपूर्वक द्वादशावर्त वंदना की । उनका अनुकरण करते हुए वीरक सालवी ने भी उन सभी मुनियों को वंदना की ।

18000 साधुओं की वंदनविधि के बाद श्रीकृष्ण महाराजा भी थक चुके थे, उन्होंने प्रभु को कहा, ``हे प्रभो ! 360 युद्ध करते समय मुझे जिस थकावट का अनुभव नहीं हुआ, उतनी थकावट मुझे इस वंदन क्रिया में हुई है ।''

प्रभु ने कहा, ``भाग्यशाली ! इस वंदनक्रिया से तो तुम्हें कितना महान् लाभ हुआ है ! इस वंदनक्रिया से तुम्हारी भवभ्रमण की थकावट दूर हो गई है । इस वंदनक्रिया से तुम्हें तीन महान् लाभ हुए हैं । तुम्हें क्षायिक सम्यक्त्व की प्राप्ति हुई है । तुमने तीर्थंकर नाम कर्म उपार्जित किया है और तुम्हारी चार नरक कम हो गई हैं, सातवीं नरकभूमि के बजाय तुम मरकर तीसरी नरक में जाओगे ।''

श्रीकृष्ण महाराजा ने 18000 साधुओं को जो भावपूर्वक वंदना की थी, यह उनका भाव कृतिकर्म (वंदन) था ।

श्रीकृष्ण के अनुकरण के रूप में श्री वीरक सालवी ने जो वंदन कर्म किया था, वह उसका द्रव्य कृतिकर्म था ।

विनय कर्मः दो राजसेवक

एक बार दो राजसेवकों के बीच अपने नगर की सीमा के विषय को लेकर भारी विवाद हो गया । वे दोनों न्याय पाने के लिए राजदरबार की ओर

आगे बढ़ रहे थे, उसी समय उन दोनों को किसी त्यागी-तपस्वी, संयमी साधु महात्मा के सुकन हुए । महात्मा को देखकर एक राजसेवक ने अत्यंत ही सद्भावपूर्वक मुनि को नमस्कार किया । उसके बाद मुनि को तीन प्रदक्षिणा देकर राजदरबार की ओर आगे बढ़ा ।

दूसरे राजसेवक के दिल में मुनि के प्रति कुछ भी विशेष आदर-बहुमान का भाव नहीं था, फिर भी उसने पहले राजसेवक का अनुकरण करते हुए मुनि को नमस्कार किया ।

राजदरबार में पहुँचने पर राजा ने न्याय किया और मुनि को भाव-पूर्वक वंदन करनेवाले राजसेवक के पक्ष में अपना फैसला दिया ।

जिसने भावपूर्वक मुनि को वंदन किया था, उसे विजयश्री प्राप्त हुई और जिसने मात्र अनुकरण रूप द्रव्य वंदन किया था, उसे हार खानी पड़ी !

पूजा कर्म शांब और पालक

द्वारिका के अधिपति श्रीकृष्ण महाराजा के शांब, प्रद्युम्न, पालक आदि अनेक पुत्र थे । शांब आदि पुत्र उसी भव में मोक्ष में जानेवाले थे, जबकि पालक अभव्य था, उसमें मोक्ष में जाने की लेश भी योग्यता-पात्रता नहीं थी ।

एक बार द्वारिका नगरी में श्री नेमिनाथ प्रभु का आगमन हुआ । देवताओं ने आकर समवसरण की रचना की ।

उस समय श्रीकृष्ण ने अपने पुत्रों को कहा, ***``जो कल सुबह नेमिनाथ प्रभु को सबसे पहले वंदन करेगा, उसे मैं इनाम के रूप में अश्वरत्न प्रदान करूंगा ।''***

दूसरे दिन प्रात:काल होने के पूर्व ही इनाम पाने के लोभ से पालक अश्व पर सवार होकर नेमिनाथ प्रभु के पास पहुँच गया और उसने प्रभु को सर्व प्रथम वंदन कर लिया ।

इधर शांबकुमार ने शय्या पर से उठकर वहीं पर बैठकर हाथ जोड़कर भावपूर्वक नेमिनाथ प्रभु को वंदन किया ।

दूसरे दिन समवसरण में आकर श्रीकृष्ण ने नेमिनाथ प्रभु को पूछा, ``प्रभो ! आपको सर्वप्रथम वंदना किसने की ?''

नेमिनाथ प्रभु ने कहा, ``सर्व प्रथम यहाँ आकर पालककुमार ने द्रव्यवंदना की है, जबकि शय्या पर बैठकर ही शांबकुमार ने मुझे भाव वंदना की है।''

मात्र इनाम पाने के लोभ से यतना-पालन आदि धर्मों की उपेक्षा कर पालक ने जो वंदना की वह द्रव्य वंदना है और निष्काम भाव से प्रभु के चरणों से दूर रहकर शाम्ब ने जो सद्भावपूर्वक वंदना की है, वह भाव वंदना है।

तीसरा द्वार

पाँच अवंदनीय

पासत्थो ओसन्नो, कुसील संसत्तओ अहा छंदो ।
दुग-दुग-ति-दुग-णेगविहा, अवंदणिज्जा जिणमयंमि ।।12।।

शब्दार्थ

पासत्थो=पार्श्वस्थ, **ओसन्नो**=अवसन्न, **कुसील**=कुशील, **संसत्तओ**=संसक्त, **अहाछंदो**=यथाछंद, **दुग-दुग**=दो दो, **ति**=तीन, **दुग**=दो, **णेगविहा**=अनेक प्रकार, **अवंदणिज्जा**=अवंदनीय, **जिणमयंमि**=जिनमत में।

भावार्थ

जैन दर्शन में पार्श्वस्थ, अवसन्न, कुशील, संसक्त और यथाछंद आदि पाँच अवंदनीय कहलाते हैं। इन पाँचों के क्रमश: दो-दो-तीन-दो और अनेक भेद हैं।

विवेचन

पुलिस की वर्दी पहिन लेने मात्र से कोई पुलिस नहीं बन जाता है और उसे किसी पर लाठी चार्ज करने का अधिकार नहीं मिल जाता है। बस, इसी प्रकार साधु का वेष पहिन लेने मात्र से ही कोई साधु नहीं बन जाता है। साधु बनने के लिए जीवन में साधुता भी जरूरी है। साधुता के अभाव में सिर्फ साधु वेष से लक्ष्य की सिद्धि नहीं होती।

1. पासत्थ :- इस शब्द से संस्कृत के दो शब्द निकलते हैं-पार्श्वस्थ व पाशस्थ ।

- **पार्श्वस्थ :-** ज्ञान-दर्शन व चारित्र के समीप रहते हुए भी उनका उपयोग कुछ भी नहीं करने वाला। अर्थात् रत्नत्रय की आराधना से रहित ।
- **पाशस्थ :-** कर्मबंध के हेतुभूत मिथ्यात्व आदि के जाल में फँसा हुआ। इसके दो भेद हैं-सर्वपासत्थ और देशपासत्थ ।
- **सर्वपासत्थ :-** ज्ञान-दर्शन-चारित्रादि गुणों से रहित, मात्र वेषधारी।
- **देशपासत्थ :-** निष्कारण शय्यातरपिंड, राजपिंड, नित्यपिंड का भोक्ता, कुलनिश्रा रखनेवाला, स्थापनाकुलों में जाने वाला।
- **शय्यातर-पिंड :-** 'बसति' दाता का आहार ।
- **अग्रपिंड :-** पकाकर सीधे नीचे उतारे गये भात आदि का ऊपरी भाग।
- **नित्यपिंड :-** 'आप मेरे घर आना, मैं आपको नित्य भिक्षा दूँगा।' इस प्रकार निमन्त्रण देने वाले के घर का आहार ।
- **स्थापना-कुल :-** गुरु, आचार्य आदि की भिक्षा के योग्य कुल।
- **कुलनिश्रा :-** अपने द्वारा प्रतिबोधित कुलों से ही भिक्षा ग्रहण करना।

2. अवसन्न :- दस प्रकार की साधु समाचारी के पालन में शिथिल। अवसन्न के दो प्रकार हैं - 1) सर्वतः और 2) देशतः ।

1. **सर्वत :-** जहाँ 'उउबद्ध' ऐसा पाठ है वहाँ अर्थ है कि शेषकाल (चातुर्मास के सिवाय) में भी पाट आदि का उपयोग करने वाला सर्वतः अवसन्न है। अवबद्ध पीठफलक तथा स्थापनाभोजी, सर्वतः अवसन्न हैं ।

1) **अवबद्ध-पीठफलक :-** अवबद्ध अर्थात् छोटे-छोटे बाँस व लकड़ी के टुकड़ों को डोरी से बाँध कर बनाया हुआ संथारा। चातुर्मास में एक लकड़ी से निष्पन्न पाट न मिलने पर यदि इसका उपयोग करना पड़े तो उसे 15 दिन में एक बार

खोलकर अवश्य पडिलेहणा करनी चाहिए, किन्तु जो ऐसा नहीं करता है वह `अवबद्ध-पीठफलक' कहलाता है। अथवा-सारे दिन संथारा बिछाकर रखने वाला अथवा संथारा नहीं बिछानेवाला भी अवबद्धपीठफलक है।

2) **स्थापना भोजी :-** साधु के निमित्त रखी हुई वस्तु को लेने वाला।

2. देशत :- प्रतिक्रमण, पडिलेहण तथा दशविध समाचारी का पालन न करने वाला, न्यूनाधिक करने वाला या गुरु के भय से करने वाला।

प्रतिक्रमण, पडिलेहण, स्वाध्याय, गमनागमन का कायोत्सर्ग आदि विधिपूर्वक न करनेवाला, न्यूनाधिक करनेवाला, नहीं करनेवाला या प्रतिषिद्ध काल में करनेवाला, प्रमादवश अथवा सुखशीलता से गोचरी नहीं जानेवाला, उपयोग-शून्य भ्रमण करनेवाला, अकल्प्य वस्तु ग्रहण करने वाला, मैंने क्या किया ? मुझे क्या करना चाहिए ? करने योग्य मैं क्या नहीं करता ? इस प्रकार का शुभ-ध्यान न करने वाला, प्रत्युत अशुभ ध्यान करने वाला, मंडली में गोचरी नहीं करने वाला, कौए, सियार इत्यादि को देकर गोचरी करने वाला, संयोजना आदि दोषों से युक्त भोजन करने वाला, **'देशतः अव-सन्न'** कहलाता है।

अन्यमते :- गुरु के पास पच्चक्खाण न करने वाला, गुरु के सामने कठोर वचन बोलनेवाला, उपाश्रय से बाहर आते-जाते निसीहि, आवस्सही न बोलनेवाला, गमनागमन सम्बन्धी काउस्सग्ग न करनेवाला अथवा दोषयुक्त करनेवाला, बैठते या सोते संडासा प्रमार्जनादि न करनेवाला, समाचारी के विपरीत आचरण करनेवाला, गुरु द्वारा प्रायश्चित्त देने पर गुरु के सामने कठोर वचन बोलनेवाला, गुरु का आदेश `तहत्ति' करके स्वीकार न करनेवाला, लगे हुए दोषों का मिच्छा मि दुक्कडं न देनेवाला, बिना पडिलेहण-प्रमार्जन के वस्तु को उठाने / रखनेवाला, गुरु की वैयावच्च न करनेवाला, बिना वन्दन के ही प्रत्याख्यान करनेवाला, इस प्रकार समाचारी का पालन न करनेवाला या विपरीत पालन करनेवाला `देशावसन्न' है।

3. कुशील :- `कुत्सितं शीलं अस्य इति कुशीलः।' कुत्सित चारित्रवाला कुशील है। उसके तीन भेद हैं-

1) ज्ञानकुशील :- काल-विनय इत्यादि आठ प्रकार के ज्ञानाचार की विराधना करने वाला ज्ञानकुशील है ।

2) दर्शनकुशील :- निःशंकित...इत्यादि आठ प्रकार के दर्शनाचार की विराधना करनेवाला दर्शनकुशील है ।

(3) चारित्र-कुशील :- 1. कौतुककर्म, 2. भूति-कर्म, 3. प्रश्नाप्रश्न, 4. निमित्त, 5. आजीविका, 6. कल्ककुरुका, 7. लक्षण, 8. विद्या, 9. मंत्रादि के प्रयोग से चारित्र को मलिन बनानेवाला चारित्रकुशील है ।।

1) कौतुक :- लोकप्रियता अर्जित करने के लिए या संतान प्राप्ति के लिए त्रिपथ, चतुष्पथ पर अनेक औषधियों से मिश्रित जलादि द्वारा स्त्रियों को स्नान कराना, उनके शरीर पर जड़ी-बूटी आदि बाँधना अथवा आश्चर्यकारी करतब दिखाना, जैसे बड़े-बड़े गोले मुँह से निगलकर कान-नाक आदि से पुनः निकालना, मुँह से आग निकालना इत्यादि कौतुक कर्म हैं ।

2) भूतिकर्म :- ज्वर आदि रोगों के ताबीज, डोरे आदि करना, रोगी की शय्या को चारों ओर से अभिमंत्रित करना आदि ।

3) प्रश्नाप्रश्न :- पूछे गये या बिना पूछे गये प्रश्नों का कर्णपिशाचिनी आदि विद्या द्वारा या मंत्राभिषिक्त घंटिका द्वारा स्वप्न में समाधान करना ।

4) निमित्त :- भूत, भविष्य या वर्तमान विषयक लाभालाभ बताना ।

5) आजीविक :- जाति आदि के द्वारा आजीविका चलानेवाला ।

6) कल्ककुरुका :- कपट से दूसरों को ठगना ।

7) लक्षण :- स्त्री पुरुष के शारीरिक लक्षणों को बताना । यथा-

अस्थिष्वर्थाः सुखं मांसे, त्वचि भोगा स्त्रियोऽक्षिषु ।
गतौ यानं स्वरे चाज्ञा सर्वं सत्त्वे प्रतिष्ठितम् ।।

हड्डियों के चिकनेपन में धन, मांस में सुख, त्वचा में भोग, नेत्रों में नारी, गति में वाहन, स्वर में आज्ञा तथा सत्त्व में सभी प्रतिष्ठित हैं ।

8) विद्यामंत्र :- विद्या, मंत्र आदि का स्वयं प्रयोग करना या दूसरों को बताना । **विद्या-**जिसकी अधिष्टात्री देवी हो । **मंत्र-**जिसका अधिष्ठायक देव हो । अथवा साधना करने से सिद्ध हो, वह विद्या । बिना साधना के ही सिद्ध हो वह मन्त्र ।

4. संसक्त :- गुण और दोष दोनों से मिश्रित । जिस तरह गाय के चारे में ऐंठा और शुद्ध दोनों तरह का खल-कपास होता है, वैसे संसक्त साधु गुण-दोष दोनों से मिश्रित संयमवाला होता है ।

1) संक्लिष्ट :- हिंसादि महास्रवों में रत, ऋद्धिगारव, रसगारव एवं सातागारव से गर्वित संक्लिष्ट है । यह दो प्रकार का है ।

क) स्त्री का सेवन करने वाला `स्त्री संक्लिष्ट' ।

ख) गृहस्थ सम्बन्धी पुत्र-पुत्री, पशु, धन-धान्यादि की चिन्ता में रत `गृहि संक्लिष्ट ।'

2) असंक्लिष्ट :- जिसके साथ रहे वैसा आचरण करने वाला । संविज्ञ के साथ संविज्ञ जैसा, पार्श्वस्थ के साथ पार्श्वस्थ जैसा आचरण करने वाला । यह प्रियधर्मी व अप्रियधर्मी दो प्रकार का होता है ।

5. यथाच्छन्द :- सूत्र से विपरीत आचरण एवं प्ररूपणा करनेवाला `यथाच्छन्द' है ।

(जिनेश्वर देव के वचन से विरुद्ध, स्वबुद्धि से कल्पित, सिद्धान्त-बाह्य जो भी है, वह उत्सूत्र कहलाता है । स्वयं उत्सूत्र का आचरण करने वाला तथा दूसरों के प्रति उत्सूत्र की प्ररूपणा करनेवाला `यथा-च्छन्द' है ।)

u गृहस्थ सम्बन्धी कार्यों को करने, कराने एवं अनुमोदन करने वाला ।

u किसी के अल्प अपराध में भारी क्रोध करनेवाला, बार-बार झिडकनेवाला ।

u आगम से निरपेक्ष केवल अपनी मति-कल्पना से स्वाध्याय आदि किसी एक सरल अनुष्ठान को पकड़कर शेष आराधना के प्रति उपेक्षा बरतने वाला, सुखलिप्सु एवं विगयसेवी ।

u ऋद्धि, रस, साता गारव से गर्वित यथाछन्द है ।

चौथा द्वार

वंदनीय साधु

आयरिय उवज्झाए, पवत्ति थेरे तहेव रायणिए ।
किइकम्म-निज्जरट्ठा कायव्वमिमेसिं पंचण्हं ॥13॥

शब्दार्थ

आयरिय=आचार्य, **उवज्झाए**=उपाध्याय, **पवत्ति**=प्रवर्तक, **थेरे**=स्थविर, **तहेव**=तथा, **रायणिए**=रत्नाधिक, **किइकम्म**=वंदन, **निज्जरट्ठा**= निर्जरा के लिए, **कायव्वं**=करना चाहिए, **इमेसिं**=इनको, **पंचण्हं**=पांचों को ।

भावार्थ

आचार्य, उपाध्याय, प्रवर्तक, स्थविर और रत्नाधिक इन पाँचों को वंदन करने से होनेवाली निर्जरा का लाभ पाने के लिए इनको वंदन करना चाहिए ।

विवेचन

जिस प्रकार अवंदनीय को वंदन करने से कुछ भी लाभ नहीं होता है, बल्कि नुकसान ही होता है उसी प्रकार वंदनीय को वंदन नहीं करने से भी बहुत बडा नुकसान होता है, जबकि वंदनीय को वंदन करने से कर्मों की भारी निर्जरा होती है ।

जैन शासन में निर्दिष्ट सभी क्रिया-अनुष्ठान कर्मों की निर्जरा के लिए ही हैं, अतःकर्म क्षय के इच्छुक आराधक को वंदन करने के योग्य आचार्य आदि को अवश्य वंदन करना चाहिए ।

श्री नेमिनाथ प्रभु के 18000 साधुओं को भावपूर्वक वंदना करने से श्री कृष्ण महाराजा की चार नरक गति टल गई थी । मिथ्यात्व मोहनीय कर्म का संपूर्ण क्षय हो गया था, जिसके फलस्वरूप उन्हें क्षायिक सम्यक्त्व की प्राप्ति हुई थी, इतना ही नहीं, जगत् में सर्वश्रेष्ठ ऐसी पुण्यप्रकृति तीर्थंकर नाम कर्म का भी बंध हुआ था ।

इस प्रकार गुरु को वंदन करने से होनेवाले महान् लाभ को पाने के लिए सद्‌गुरु के चरणों में अवश्य गुरुवंदन करना चाहिए ।

इस गाथा में वंदन करने के योग्य पाँच प्रकार के गुरुओं का स्वरूप बतलाया है-

1) आचार्य :- गण के नायक और आचार्य पद के धारक को आचार्य कहा जाता है । तारक तीर्थंकर परमात्मा के अभाव में शासन की धुरा को आचार्य भगवंत ही वहन करते हैं । ये आचार्य भगवंत सूत्र और अर्थ के ज्ञाता होते हैं और अपने शिष्यवृंद को अर्थ की वाचना प्रदान करते हैं ।

2. उपाध्याय :- जिनके पास में आकर शिष्यगण शास्त्रों का अभ्यास करते हैं, वे उपाध्याय कहलाते हैं । वे सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र से संपन्न होते हैं । सूत्र और अर्थ के ज्ञाता होते हैं । आचार्य पद के योग्य होते हैं । जैन शासन में आचार्य भगवंत राजा के स्थान पर हैं तो उपाध्याय भगवंत मंत्री के पद पर हैं । शासन की धुरा को अच्छी तरह से वहन करने में वे आचार्य भगवंत को सतत मदद करते रहते हैं ।

ये उपाध्याय भगवंत अपने शिष्यों को सूत्र की वाचना देते हैं ।

3) प्रवर्तक :- तप-संयम आदि योगों में जो जिसके लिए योग्य हो, उसे वहाँ प्रवृत्त करते हैं, वे प्रवर्तक कहलाते हैं । प्रवर्तक गच्छ के हित की सदैव चिंता करनेवाले होते हैं ।

4. स्थविर :- ज्ञान, दर्शन और चारित्र की आराधना-साधना में शिथिल बने हुए मुनियों को हितशिक्षा आदि प्रदानकर जो पुनः ज्ञान, दर्शन व चारित्र की आराधना में जोड़ते हैं, वे स्थविर कहलाते हैं । पतित परिणामी को स्थिर करनेवाले स्थविर होते हैं ।

5. रात्निक या रत्नाधिक :- रत्नाधिक शब्द का सामान्य अर्थ तो **'ज्ञान दर्शन और चारित्र में जो अपने से आगे हो, बढ़कर हो'** यह कहलाता है, परंतु यहाँ दीक्षा पर्याय में जो बड़ा है, उसी को रत्नाधिक मानकर उन्हें वंदन करना चाहिए ।

यद्यपि गुणों की प्राप्ति में पर्याय का एकांत संबंध नहीं है । कई बार अल्प पर्याय में भी साधु ज्ञान, दर्शन और चारित्र में अधिक प्रगति कर सकता है और कई बार दीर्घ पर्याय होने पर भी ज्ञान, दर्शन-चारित्र में प्रगति नहीं होती है ।

आचार्य आदि चार पदस्थ दीक्षा पर्याय में न्यून हो तो भी उन्हें वंदन करना चाहिए ।

पाँचवाँ द्वार
वंदन न कराएँ

माय पिय जिट्ठ भाया, ओमावि तहेव सव्व रायणिए ।
किइकम्म न कारिज्जा, चउ समणाई कुणंति पुणो ।।14।।

शब्दार्थ

माय=माता, **पिय**=पिता, **जिट्ठभाया**=ज्येष्ठ भ्राता, **ओमावि**=वयमें न्यून फिर भी, **तहेव**=तथा, **सव्वरायणिए**=सभी रत्नाधिक, **किइकम्म**=वंदन, **न**=नहीं, **कारिज्ज**=कराए, **चउ**=चार, **समणाइ**=श्रमणादि, **कुणंति**=करते हैं, **पुणो**=पुनः ।

भावार्थ

माता, पिता, बड़े भाई तथा कम दीक्षा पर्याय हो, फिर भी सर्व रत्नाधिक के पास वंदन नहीं कराना चाहिए । इसके सिवाय शेष साधु आदि परस्पर वंदना करें ।

विवेचन

दीक्षित साधु को दीक्षित चार व्यक्तियों की वंदना नहीं लेनी चाहिए ।

1) दीक्षित माता :- पुत्र ने पहले दीक्षा ली है और उसके बाद माता दीक्षा ले तो भी दीक्षितमाता के पास वंदना नहीं करानी चाहिए ।

2) दीक्षित पिता :- पुत्र ने पहले दीक्षा ली हो और पिता ने बाद में दीक्षा ली हो तो भी पुत्र, पिता मुनि के पास वंदना नहीं करावे ।

3) ज्येष्ठ बंधु :- छोटे भाई ने पहले दीक्षा ली हो और बड़े भाई ने बाद में दीक्षा ली हो तो भी छोटा भाई, बड़े भाई के पास वंदन न करावे ।

4) रत्नाधिक :- वय में छोटे हों किंतु दीक्षा पर्याय में बड़े हों तो उनके पास भी वंदन नहीं कराना चाहिए ।

माता, पिता और बड़े भाई आदि सांसारिक अवस्था में हों तो वे अपने दीक्षित पुत्र मुनि को वंदन कर सकते हैं, परंतु बाद में भी यदि दीक्षित बने हों तो वंदना न करें ।

छट्ठा द्वार

वंदना के लिए निषिद्ध स्थल

विक्खित्त पराहुत्ते, अ पमत्ते मा कयाइ वंदिज्जा ।
आहारं नीहारं, कुणमाणे काउकामे अ ।।15।।

शब्दार्थ

विक्खित=व्याक्षिप्त व्यग्रचित्त, **पराहुत्ते**=पराङ्मुख हो, **पमत्ते**=प्रमाद में, **मा**=नहीं, **कयाइ**=कभी भी, **वंदिज्जा**=वंदन करे, **आहारं**=आहार, **नीहारं**=स्थंडिल, **कुणमाणे**=करते हुए, **काउकाये**=करने की इच्छावाले हो, **अ**=तथा ।

भावार्थ

गुरु भगवंत जब धर्मकार्य की चिंता में व्याकुल हों, विपरीत मुख करके बैठे हों, क्रोध-निद्रा आदि प्रमाद में हों, आहार-नीहार करते हों या करने की इच्छावाले हों, उस समय उन्हे वंदन नहीं करना चाहिए ।

विवेचन

गुरुवंदन करने की भावना अति उत्तम है, परंतु वह वंदन भी योग्य समय में करना चाहिए । जैसे शोक के प्रसंग पर विवाह के गीत नहीं गाए जाते हैं उसी प्रकार कुछ समय ऐसा होता है कि उस समय वंदन करना उचित नहीं माना जाता है ।

निम्नलिखित संयोगों में गुरु को वंदन नहीं करना चाहिए ।

1) व्याक्षिप्त चित्तवाले हों :- गुरुदेव किसी को धर्मबोध देने में व्यस्त हों, उस समय उन्हें वंदन करने से उनके उपदेश की धारा खंडित हो जाती है, अतः जब वे धर्मचिंता में व्यग्र हों अर्थात् धर्मकार्य में व्यस्त Busy हों, उन्हें वंदन नहीं करना चाहिए । उस समय वंदन करने से धर्मबोध के अंतराय का दोष लगता है ।

2. पराङ्मुख हों :- गुरुदेव अपने सम्मुख बैठे हुए न हों अर्थात् विपरीत मुखवाले हों तब भी वंदन नहीं करना चाहिए, क्योंकि उस समय उनका लक्ष्य अपनी ओर नहीं होता है, उस समय वंदन करने से हमें ऐसा लगता है कि उन्होंने हमारे वंदन की ओर कुछ भी ध्यान नहीं दिया ।

3. प्रमाद में हों :- गुरुदेव निद्राधीन हों, तब भी उन्हें वंदन नहीं करना चाहिए क्योंकि उस समय वंदन करने से उनकी निद्रा भंग होती है । इससे भी हमें दोष लगता है ।

गुरुदेव किसी के ऊपर कोपायमान हों तब भी वंदन नहीं करना चाहिए, उस समय वंदन करने से शायद उनके कोप में वृद्धि हो सकती है ।

4. आहार करते हों :- गुरु भगवंत गोचरी के लिए जा रहे हों, गोचरी वापर रहे हों या गोचरी वापरने की तैयारी में हों, तब भी उन्हें वंदन नहीं करना चाहिए, क्योंकि उस समय उन्हें वंदन करने से उनके आहार में अंतराय का दोष लगता है ।

गुरुदेव के वापरने का समय हो और उन्हें देरी कराना किसी भी तरह से उचित नहीं है ।

5. स्थंडिल हेतु जा रहे हों :- गुरुदेव स्थंडिल हेतु जा रहे हों या जाने की इच्छा वाले हों, उस समय भी उन्हें वंदन नहीं करना चाहिए । उस समय वंदन करने से उनके स्थंडिल में अवरोध हो सकता है । गुरुदेव को लघुनीति या बड़ीनीति में कभी अंतरायभूत नहीं बनना चाहिए ।

गुरुदेव रास्ते में चल रहे हों, उस समय उन्हें खड़े रखकर वंदन नहीं करना चाहिए । गर्मी के दिन हों और वे धूप में खड़े हों, तब भी वंदन नहीं करना चाहिए । ऐसे संयोगों में उन्हें वंदन करना, यह अपने विवेक की कमी को प्रकट करता है ।

सातवाँ द्वार

वंदन कब करें ?

पसंते आसणत्थे अ, उवसंते उवट्ठिए ।
अणुन्नवित्तु मेहावी, किइकम्मं पउंजइ ।।16।।

शब्दार्थ

पसंते=प्रशांत, **आसणत्थे**=आसन पर बैठे हों, **उवसंते**=क्रोध रहित हों, **उवट्ठिए**=उपस्थित, **अणुन्नवित्तु**=अनुज्ञा मांगकर, **मेहावी**=बुद्धिशाली, **किइकम्मं**=वंदन कर्म, **पउंजइ**=करे ।

भावार्थ

गुरुदेव स्वस्थ हों, आसन पर बैठे हों, शांत हों, और सम्मुख बैठे हों, ऐसे गुरुदेव की अनुज्ञा प्राप्त कर बुद्धिशाली शिष्य को वंदन करना चाहिए ।

विवेचन

पहले की गाथा में गुरुवंदन के लिए प्रतिषिद्ध स्थानों का निषेध करके अब इस गाथा में गुरुवंदन के लिए योग्य चार स्थानों का निर्देश करते हैं अर्थात् ऐसे संयोग उपलब्ध होने पर उपकारी गुरुदेव को अवश्य वंदन करना चाहिए ।

1) प्रशांत हों :- गुरुदेव किसी अन्य धर्मकार्य में व्यस्त न हों अर्थात् व्याकुल चित्तवाले न हों ।

2) आसन पर बैठे हों :- गुरुदेव अपने आसन पर बैठे हों, तभी वंदन करना चाहिए । अपने आसन पर खड़े हों, या चल रहे हों, तब उन्हें वंदन करना योग्य नहीं है ।

3. उपशांत हों :- क्रोध, निद्रा आदि प्रमाद से रहित हों ।

4. उपस्थित हों :- गुरुवंदन करते समय जिस प्रकार शिष्य सूत्र आदि बोलता है, उस समय बीच में गुरुदेव को भी `छंदेण' आदि बोलने का होता है । वंदन करते समय गुरुदेव `छंदेण' आदि कहने में तत्पर हों तभी गुरुवंदन करना चाहिए ।

गुरुवंदन करते समय गुरुदेव के पास वंदन की अनुमति अवश्य लेनी चाहिए ।

आठवाँ द्वार

वंदन के 8 कारण

पडिक्कमणे सज्झाए, काउसग्गावराह पाहुणए ।
आलोयण संवरणे, उत्तमट्ठे य वंदणयं ।।17।।

शब्दार्थ

पडिक्कमणे=प्रतिक्रमण में, **सज्झाए**=स्वाध्याय में, **काउसग्ग**=कायोत्सर्ग में, **अवराह**=अपराध, **पाहुणए**=मेहमान के रूप में आए हों। **आलोयण**=पापों की आलोचना, **संवरणे**=प्रत्याख्यान लेना हो। **उत्तमट्ठे**=संलेखना समय, **वंदणयं**=वंदन।

भावार्थ

प्रतिक्रमण, स्वाध्याय, कायोत्सर्ग, अपराध की क्षमा याचना, पाहुने मुनि का आगमन, पाप की आलोचना, प्रत्याख्यान और संलेखना आदि महान् कार्य इन आठ निमित्तों को पाकर द्वादशावर्त वंदन करना चाहिए।

विवेचन

गुरुवंदन के आठ कारण बतलाए हैं अर्थात् इन आठ कारणों में से कोई भी कारण उपस्थित होने पर गुरु को सद्भावपूर्वक वंदन करना चाहिए।

गुरुवंदन के 8 कारण निम्नलिखित हैं :–

1) प्रतिक्रमण :- पाप कर्मों से पीछे लौटना, उसे प्रतिक्रमण कहते हैं। प्रतिक्रमण करना हो तो भी सर्व प्रथम गुरु को अवश्य वंदन करना चाहिए।

प्रतिक्रमण दरम्यान चार बार दो-दो वांदणा दिए जाते हैं।

2) स्वाध्याय :- गुरु भगवंत के पास वाचना लेनी हो तो उसके लिए भी गुरु को वंदन करना चाहिए।

3) कायोत्सर्ग :- योगोद्वहन करते समय आयंबिल का छोड़ नीवि का पच्चक्खाण करना हो तो उसके लिए भी गुरु को वंदन करना जरूरी है।

4) अपराध :- गुरु के प्रति कोई अपराध हो गया हो तो उस अपराध की क्षमायाचना करने के लिए भी गुरु को अवश्य वंदन करना चाहिए।

5) पाहुने :- विहार करते हुए कोई साधु भगवंत पधारे हों तो उन्हें वंदन करना चाहिए।

आनेवाले प्राघूर्णिक दो प्रकार के होते हैं—

1) सांभोगिक :- समान सामाचारी-क्रिया अनुष्ठान होने के कारण जिनके साथ आहार-पानी आदि का व्यवहार हो वे मुनि सांभोगिक कहलाते हैं।

2) असांभोगिक :- मान्यता भेद के कारण जिनके साथ आहार-पानी का व्यवहार न हो, वे असांभोगिक कहलाते हैं ।

आगंतुक मुनि सांभोगिक हों तो गुरु को पूछकर यदि वे रत्नाधिक हों तो उन्हे वंदन करें ।

आगंतुक मुनि असांभोगिक हो तो गुरु जैसी आज्ञा करे, वैसा वंदन आदि व्यवहार करें ।

6. आलोचना :- व्रतपालन में लगे अतिचारों की शुद्धि करने के लिए गुरु के पास प्रायश्चित्त लेना हो तो सर्वप्रथम गुरु को वंदन करना चाहिए ।

7. प्रत्याख्यान :- अनेक आगारवाले एकाशनादि में भोजन करने के बाद अल्प आगारवाले दिवस चरिम को तिविहार आदि का पच्चक्खाण लेना हो तो गुरु को अवश्य वंदन करना चाहिए ।

अथवा पहले नवकारसी का पच्चक्खाण लिया हो और उसके बाद भाव बढ़ जाने से पोरिसी आदि का बड़ा पच्चक्खाण करना हो तो भी गुरु को वंदन करके पच्चक्खाण लेना चाहिए ।

8) अनशन :- जीवन के अंतिम समय में चारों प्रकार के आहार के त्याग रूप अनशन आदि करना हो तो भी सर्वप्रथम गुरु को वंदन करके फिर अनशन व्रत स्वीकार करना चाहिए ।

ध्रुववंदन :- दिन के पूर्वार्ध में प्रतिक्रमण के 4 और स्वाध्याय के 3, इस प्रकार कुल 7 तथा दिन के उत्तरार्ध में प्रतिक्रमण के 4 व स्वाध्याय के 3 इस प्रकार कुल 7, दोनों मिलाकर 14 ध्रुववंदन कहलाते हैं । ये 14 वंदन प्रतिदिन करने योग्य हैं । शेष कायोत्सर्ग आदि वंदन प्रसंग उपस्थित होने पर करने योग्य होने से अध्रुव वंदन कहलाते हैं ।

नौवाँ द्वार

25 आवश्यक

दो वणयमहाजायं, आवत्ता बार चउसिर तिगुत्तं ।
दुपवेसिग निक्खमणं, पणवीसावसय किइकम्मे ।।18।।

शब्दार्थ

दोवणयं=दो अवनमन, **अहाजायं**=यथाजात, **आवत्ता**=आवर्त, **बार**=बारह, **चउसिर**=चार मस्तक, **तिगुत्तं**=तीन गुप्ति, **दुपवेसि**=दो प्रवेश, **इग निक्खमणं**=एक निष्क्रमण, **पणवीसा**=पच्चीस**,** **अवसय**=आवश्यक, **किइकम्मे**=कृतिकर्म में ।

भावार्थ

द्वादशावर्त वंदन में दो अवनत, एक यथाजात मुद्रा, बारह आवर्त्त, चार शीर्षनमन, तीन गुप्ति, दो बार प्रवेश और एक बार बाहर निकलना ये कुल पच्चीस आवश्यक हैं ।

विवेचन

आवश्यक :- आवश्यक के 25 स्थान हैं । इनका वर्णन स्वयं ग्रन्थकार ने किया है । अवश्य करने योग्य क्रिया आवश्यक कहलाती है । वे इस प्रकार हैं-

अवनमन :- सिर झुकाकर नमन करना अवनमन है । गुरुवन्दन में दो अवनमन हैं ।

1) **'इच्छामि खमासमणो-अणुजाणह'** इन पदों के द्वारा गुरु के अवग्रह में प्रवेश करने हेतु आज्ञा माँगते हुए सिर झुकाना प्रथम **'अवनमन'** है ।

2) दूसरी बार के वन्दन में पुनः इन्हीं पदों के उच्चारणपूर्वक सिर झुकाना ।

यथाजात :- जिस आकार में जन्म लिया था, उस आकार से युक्त होकर वन्दन करना 'यथाजात' आवश्यक है । जन्म दो प्रकार का है ।

1) भवजन्म :- माता के गर्भ से बाहर आना ।

2) दीक्षाजन्म :- संसारमायारूपी स्त्री की कुक्षि से बाहर आना । यहाँ दोनों ही जन्मों का प्रयोजन है । दीक्षा लेते समय मुनि के चोलपट्टा, रजोहरण व मुहपत्ति ये तीन उपकरण ही होते हैं वैसे द्वादशावर्त वन्दन करते समय भी मुनि तीन ही उपकरण रखे । 'भवजन्म' के समय बच्चे के दोनों हाथ ललाट पर लगे हुए होते हैं, वैसे ही वन्दन करते समय शिष्य भी दोनों हाथ ललाट पर लगाते हुए विनम्र मुद्रा से गुरुवन्दन करे । भवजन्म और

दीक्षाजन्म दोनों प्रकार के जन्म के आकार से युक्त होकर वन्दन करना 'यथाजात' वन्दन कहलाता है।

आवर्त्त :- सूत्रोच्चारणपूर्वक विशेष प्रकार की शारीरिक क्रिया। सूत्र बोलते हुए, मुहपत्ति या चरवले पर कल्पित गुरु के चरण कमल को स्पर्श कर, हाथों को मस्तक पर लगाना आवर्त्त कहलाता है।

वन्दन में प्रथम बार...अहो...कायं...कायसंफासं...3 आवर्त्त।

वन्दन में प्रथम बार...जत्ता भे...जवणि...जं च भे...3 आवर्त्त।

इस प्रकार दूसरी बार के वन्दन में भी 6 आवर्त्त होते हैं। कुल 6 + 6 = 12 आवर्त्त हुए।

'अहोकायं...' आदि शब्द बोलने की विशिष्ट रीति है। जैसे-

अ=आसन पर रखे हुए चरवले, मुहपत्ति अथवा रजोहरण पर कल्पित गुरुचरणों को, दोनों हाथों की दसों अङ्गुलियों से स्पर्श करते हुए बोला जाता है।

हो=दसों अङ्गुलियों से ललाट को स्पर्श करते हुए बोला जाता है।

का=चरवले आदि को स्पर्श करते हुए बोला जाता है।

य=ललाट को स्पर्श करते हुए बोला जाता है।

का=चरवले आदि को स्पर्श करते हुए बोला जाता है।

य=ललाट को स्पर्श करते हुए बोला जाता है।

ज=गुरुचरणों की स्थापना को स्पर्श करते हुए अनुदात्त स्वर से बोला जाता है।

त्ता=चरणों की स्थापना से उठाये हुए दोनों हाथों को चरवले, रजोहरण और ललाट के बीच में सीधे चौड़े करते हुए स्वरित स्वर से बोला जाता है।

भे=दृष्टि गुरु के समक्ष रखकर दोनों हाथ ललाट पर लगाते हुए उदात्तस्वर में बोला जाता है।

ज=चरण स्थापना को स्पर्श करते हुए अनुदात्त स्वर से बोला जाता है।

व=मध्य में हाथों को सीधे चौड़े करते हुए स्वरित स्वर में बोला जाता है।

णि=ललाट को स्पर्श करते हुए **उदात्त स्वर** में बोला जाता है ।

ज्जं=चरणस्थापना को स्पर्श करते हुए **अनुदात्त स्वर** में बोला जाता है ।

च=मध्य में हाथों को सीधे चौड़े करके **स्वरित स्वर** में बोला जाता है ।

भे=ललाट को स्पर्श करते हुए **उदात्त स्वर** में बोला जाता है ।

सिरनमन :- सिर झुकाना वन्दन देते समय । वन्दन के बीच चार बार सिर-नमन होता है । दो शिष्य के तथा दो गुरु के होते हैं ।

खामेमि खमासमणो...देवसियं वइक्कमं...शिष्य का 1.

अहमवि खामेमि तुमं...गुरु का...2.

इस प्रकार दुबारा वन्दन करते समय शिष्य का व गुरु का 1...1. नमन ।

अन्यमत में-`कायसंफासं' पद बोलकर, हाथ मुहपत्ति पर स्थापन कर उस पर मस्तक लगाना यह एक `सिरनमन' । इसी प्रकार दूसरी बार की वन्दना में दूसरा `सिरनमन' । `खामेमि खमासमणो' बोलते हुए मस्तक लगाना तीसरा `सिरनमन' व पुनः वन्दन देते समय वही पद बोलते हुए चौथा `सिरनमन' । इस मतानुसार चारों `सिरनमन' शिष्य के ही हैं । वर्तमान में भी यही व्यवहार प्रचलित है ।

त्रिगुप्ति :- मन-वचन और काया की गुप्तिपूर्वक वन्दन त्रिगुप्ति वन्दन है ।

अप्रशस्त इच्छा :- स्त्री आदि का अनुराग ।

यहाँ वन्दन के सम्बन्ध में प्रशस्त भाव-इच्छा उपयोगी है ।

2) अनुज्ञापना :- इसके भी इच्छा की तरह छह भेद हैं । प्रथम दो सुगम होने से नहीं बताये । अनुज्ञापना का अर्थ है-सम्मति, आज्ञा आदि ।

अ) द्रव्य-अनुज्ञापना :- इसके तीन भेद हैं-लौकिक, लोकोत्तर व कुप्रावचनिक ।

लौकिक अनुज्ञा :- सचित्त-अचित्त व मिश्र तीन प्रकार की हैः-

u अश्व-हाथी आदि सचित्त जीवों की अनुज्ञा...प्रथम ।

u मोती-रत्न आदि अचित्त पदार्थों की अनुज्ञा...द्वितीय ।

u विविध अलंकारों से विभूषित स्त्री-विषयक अनुज्ञा...तृतीय ।

लोकोत्तर अनुज्ञा :- इसके भी पूर्ववत् तीन भेद हैं—

u शिष्य आदि की आज्ञा देना...प्रथम ।

u वस्त्रादि की आज्ञा देना...द्वितीय ।

u वस्त्रादि सहित शिष्यादि की अनुज्ञा...तृतीय ।

कुप्रावचनिक-अनुज्ञा :- यह भी पूर्ववत् तीन प्रकार की है-

ब) क्षेत्र-अनुज्ञापना :- जितने क्षेत्र की अनुज्ञा दी जाय अथवा जिस क्षेत्र में अनुज्ञा की व्याख्या की जाय वह क्षेत्र-अनुज्ञापना है ।

स) काल-अनुज्ञापना :- जिस काल की आज्ञा दी जाय अथवा जिस काल में अनुज्ञा की व्याख्या की जाय ।

द) भाव-अनुज्ञापना :- `आचारांग' आदि आगमग्रन्थों की अनुज्ञा देना । यहाँ यही अनुज्ञा उपयोगी है ।

3) अव्याबाध :- जहाँ किसी प्रकार की बाधा न हो, वह अव्याबाध वन्दन है । बाधा के दो प्रकार हैं-द्रव्यबाधा और भावबाधा ।

अ) द्रव्य-बाधा :- खड्ग आदि शस्त्रों के द्वारा होने वाले आघात से जन्य वेदना ।

ब) भाव-बाधा :- मिथ्यात्वादि से जन्य भवदुःख ।

पूर्वोक्त दोनों प्रकार की बाधा जहाँ नहीं है ऐसा वन्दन अव्याबाध वन्दन है । वन्दन की अव्याबाधता `बहुसुभेण भे' से स्पष्ट होती है ।

4) यात्रा :- शुभ प्रवृत्ति । इसके दो भेद हैं-द्रव्य यात्रा और भाव यात्रा ।

अ) द्रव्य यात्रा :- तापस आदि मिथ्यादृष्टियों की क्रिया में प्रवृत्ति ।

ब) भाव यात्रा :- मुनियों की अपनी-अपनी क्रिया में प्रवृत्ति ।

5) यापना :- निर्वाह करना । इसके भी दो भेद हैं-द्रव्ययापना और भावयापना ।

1) मन की एकाग्रता पूर्वक वन्दन करना...**मनगुप्ति ।**

2) सूत्रों का अस्खलित उच्चारण करते हुए वन्दन करना...**वचन-गुप्ति ।**

3) दोष रहित आवर्त्त करना...**कायगुप्ति ।**

प्रवेश :- गुरु के मर्यादित क्षेत्र में वन्दना के लिए प्रवेश करना । वन्दन करते हुए प्रवेश दो बार होता है ।

1) प्रथम वन्दन के समय गुरु की अनुज्ञा लेकर **`निसीहिआए'** बोलते हुए गुरु के `अवग्रह' में प्रवेश करना...1 प्रवेश ।

2) इसी प्रकार दूसरे वन्दन के समय प्रवेश करना...2 प्रवेश ।

u **निष्क्रमण :-** गुरु के अवग्रह में से बाहर निकलना, `निष्क्रमण' आवश्यक है । यह वन्दन में एक बार ही होता है । कारण प्रथम बार `आवर्त्त' करके `आवस्सिआए' बोलते हुए अवग्रह से बाहर निकलना होता है । पर दुबारा वन्दन में आवर्त्त करने के बाद अवग्रह में रहकर ही सूत्र बोलना होता है । यही विधि मार्ग है ।

किइकम्मं पि कुणंतो न होइ कम्मनिज्जराभागी ।
पणवीसामन्नयरं साहू ठाणं विराहंतो ।।19।।

शब्दार्थ

किइकम्मं=कृतिकर्म, **पि**=भी, **कुणंतो**=करता हुआ, **न होइ**=नहीं होती है, **कम्मनिज्जरा**=कर्मनिर्जरा, **भागी**=भागी, **पणवीसां**=पच्चीस, **अन्नयरं**=कोई भी एक, **साहू**=साधु, **ठाणं**=स्थान, **विराहंतो**=विराधना करता हुआ ।

भावार्थ

वंदन करने वाला साधु, इन पच्चीस आवश्यकों में से किसी एक आवश्यक की भी विराधना करता हो तो वह कर्म निर्जरा का भागी नहीं बनता है ।

विवेचन

व्यवहार में भी कोई भी कार्य विधि के पालन पूर्वक करते हैं तो ही वह कार्य व्यवस्थित होता है । जैसे-तैसे करने से या अविधि से करने से कोई भी कार्य सिद्ध नहीं होता है । वह कार्य बिगड़ता ही है ।

मोक्षमार्ग की आराधना-साधना में भी गुरुवंदन जैसी क्रिया विधि के पालन पूर्वक करे तो ही महान् लाभ अर्थात् श्रेष्ठ कर्मनिर्जरा होती है ।

अपने महान् उपकारी भवोदधितारक गुरुदेव को द्वादशावर्त वंदन करते समय गुरु वंदन संबंधी पच्चीस आवश्यकों का अच्छी तरह से पालन करना चाहिए। यदि ये आवर्त नहीं आते हों तो उन्हें सीखने का प्रयत्न करना चाहिए।

अज्ञानतावश इन पच्चीस आवश्यकों के पालन में अविधि होती हो तो उसका मन में अत्यंत खेद होना चाहिए।

जिसके दिल में विधि के पालन में तत्परता न हो और अविधि करने का मन में दुःख भी न हो तो ऐसा साधु, गुरुवंदन से होनेवाली कर्मनिर्जरा का भागी नहीं बनता है।

दसवाँ द्वार

मुहपत्ति की 25 पडिलेहणा

दिट्ठि पडिलेह एगा छ उड्ढ पप्फोड तिग तिगंतरिया।
अक्खोड-पमज्जणया, नव नव मुहपत्ति पणवीसा ॥20॥

शब्दार्थ

दिट्ठि=दृष्टि, **पडिलेह**=प्रतिलेखना, **एगा**=एक, **छ**=छह, **उड्ढ**=ऊर्ध्व, **पप्फोड**=प्रस्फोटक, **तिगतिग**=तीन-तीन, **अंतरिया**=अंतर में, **अक्खोड**=आस्फोटक, **पमज्जणया**=प्रमार्जना, **नवनव**=नौ-नौ, **मुहपत्ति**=मुह पत्ति, **पणवीसा**=पच्चीस।

भावार्थ

एक दृष्टि प्रतिलेखना, छह ऊर्ध्व प्रस्फोटक और तीन-तीन के बीच नौ अक्खोड़ा और नौ प्रमार्जना यह मुहपत्ति की 25 प्रतिलेखना है।

विवेचन

मुहपत्ति :- इसे मुखानन्तक भी कहते हैं। मुखस्य=मुख का, अनन्तक = वस्त्र अर्थात् मुहपत्ति। इससे सम्बन्धित 25 स्थान हैं। यद्यपि ये स्थान प्रसिद्ध होने से मूल में नहीं बताये हैं तथापि शिष्यों के अनुग्रहार्थ टीकाकार महर्षि बता रहे हैं।

वन्दन करने का इच्छुक भव्यात्मा गुरु को खमासमण देकर अनुमति-पूर्वक उत्कटिक आसन में बैठकर मुहपत्ति खोले व देखे **1 दृष्टिपडिलेहण।**

मुहपत्ति को पलटकर देखे तथा बायें हाथ तरफ के भाग को इस प्रकार उपयोग-पूर्वक झाड़े, जैसे किसी लगी हुई वस्तु को गिरा रहे हों। पुनः दूसरी ओर पलटकर भी इसी प्रकार करें। ये पूर्वक्रिया रूप `पुरिम' कहलाते हैं। दोनों ओर तीन-तीन बार होते हैं...**6 पुरिम।**

पुरिम करने के बाद `मुहपत्ति' को बायें हाथ पर डालकर दायें हाथ से बीच से इस प्रकार खींचे कि `मुहपत्ति' के दो पट हो जायें। तत्पश्चात् दायें हाथ की अङ्गुलियों के बीच दो या तीन `वधूटक' करें। वधूटक-बहू जैसे घूंघट निकालती है वैसा ही अङ्गुलियों के अन्तराल में मुहपत्ति का झूलता हुआ आकार बनाना।

अक्खोड़ा :- आकर्षण करना, खींचकर लाना। यहाँ अक्खोड़ा का यही अर्थ ठीक बैठता है। क्योंकि सुदेव, सुगुरु, सुधर्म, ज्ञान, दर्शन, चारित्र, मनोगुप्ति, वचनगुप्ति व कायगुप्ति को ग्रहण करना है। आत्मा में लाना है। अक्खोड़ा के द्वारा हम यही भाव प्रकट करते हैं। वधूटक (दायें हाथ पर) करने के पश्चात् दोनों जंघाओं के बीच रहे हुए बायें हाथ पर हथेली का स्पर्श न करते हुए, जैसे किसी को अन्दर ले जा रहे हों-इस प्रकार मुहपत्ति से, कलाई से लेकर कुहनी तक हाथ की तीन बार प्रमार्जना करें। प्रत्येक प्रमार्जन में 3-3 अक्खोड़ा होने से 3 x 3 = 9 अक्खोड़ा हैं।

पक्खोड़ा :- प्रस्फोटक= झाड़ना, गिराना, इसमें लगी हुई वस्तु को झाड़ने...गिराने का भाव है। वधूटक की हुई मुहपत्ति वाले दायें हाथ से बायें हाथ पर ऊपर से नीचे की ओर मुहपत्ति द्वारा स्पर्श करते हुए इस प्रकार प्रमार्जन करना जैसे किसी लगी हुई वस्तु को झाड़ रहे हों। यहाँ भी प्रत्येक प्रमार्जना में 3-3 पक्खोड़ा होने से 3 x 3 = 9 पक्खोड़ा हैं।

ये अक्खोड़ा-पक्खोड़ा क्रमशः एक दूसरे के अन्तराल में होते हैं। जैसे-पहले 3 अक्खोड़ा, फिर 3 पक्खोड़ा, फिर अक्खोड़ा...पक्खोड़ा इस प्रकार दोनों तीन-तीन बार किये जाते हैं। इस प्रकार कुल मिलाकर मुहपत्ति पडिलेहण के-1 दृष्टिपडिलेहण + 6 पुरिम + 9 अक्खोड़ा + 9 पक्खोड़ा = 25 स्थान हुए ॥

मुहपत्ति की क्रमशः 25 प्रतिलेखना के समय मन में चिंतन करने योग्य बोल-

कौनसी पडिलेहना के समय कौनसा बोल

पहला भाग देखते समय : सूत्र

दूसरा भाग देखते समय : अर्थ तत्त्वकरी सद्दहुं- 1 बोल

पहले पुरिम समय : समकित मोहनीय, मिश्र मोहनीय, मिथ्यात्व मोहनीय परिहरूँ। 3 बोल

दूसरे पुरिम समय : कामराग, स्नेहराग, दृष्टिराग, परिहरूँ (3 बोल)

पहले तीन अक्खोड़ा करते समय : सुदेव सुगुरु सुधर्म आदरूँ (3 बोल)

पहले तीन पक्खोड़ा करते समय : कुदेव, कुगुरु, कुधर्म परिहरूँ (3 बोल)

दूसरे तीन अक्खोड़ा करते समय : ज्ञान दर्शन चारित्र आदरूँ (3 बोल)

दूसरे तीन पक्खोड़ा करते समय : ज्ञानविराधना, दर्शनविराधना, चारित्र विराधना परिहरूँ (3 बोल)

तीसरे तीन अक्खोड़ा करते समय : मनगुप्ति वचनगुप्ति कायगुप्ति आदरूँ (3 बोल)

तीसरे तीन पक्खोड़ा करते समय मन दंड, वचन दंड, कायदंड परिहरूँ (3 बोल)

ग्यारहवाँ द्वार

शरीर की 25 प्रतिलेखना

पायाहिणेण तिय तिय, वामेयर बाहु सीस मुह हियए ।
अंसुड्ढाओ पिट्ठे, चउ छप्पय देह पणवीसा ।।21।।

शब्दार्थ

पायाहिणेण=प्रदक्षिणा अनुसार, **तियतिय**=तीन तीन, **वाम**=बायाँ, **इयर**=दायाँ, **बाहु**=हाथ, **सीस**=मस्तक, **मुह**=मुख, **हियए**=हृदय, **अंस**=स्कंध,

उड्ढ=ऊर्ध्व, **अहो**=नीचे, **पिट्ठे**=पीछे, **चउ**=चार, **छप्पय**=पैर की छ, **देह**=शरीर, **पणवीसा**=पच्चीस ।

भावार्थ

प्रदक्षिणा के क्रम से बायाँ और दायाँ हाथ, मस्तक, मुख और छाती की तीन-तीन, दो स्कंध के ऊपर नीचे व पीछे की चार और पैर की छह इस प्रकार शरीर की 25 पडिलेहणा होती है ।

विवेचन

देह (शरीर) :- शरीर से सम्बन्धित पडिलेहण के 25 प्रकार हैं ।

दायें हाथ के वधूटक द्वारा सर्वप्रथम बायें हाथ के मध्य में, दायीं तरफ व बायीं तरफ क्रमशः प्रमार्जना करना...1 त्रिक ।

फिर बायें हाथ के वधूटक द्वारा दायें हाथ की पूर्ववत् प्रमार्जना करना...2 त्रिक ।

तत्पश्चात् `वधूटक' खोलकर मुहपत्ति के दोनों किनारों को दोनों हाथ से पकड़कर मस्तक के मध्य, बायें और दायें अनुक्रम से प्रमार्जना करना... 3 त्रिक ।

इसी क्रम से (सिर की तरह) मुख व हृदय की प्रमार्जना करना... 4-5 वाँ त्रिक ।

मुहपत्ति को समेटकर दाये हाथ में लेकर दाये कन्धे से पीठ के ऊपर के दाये भाग का प्रमार्जन करना । इसी तरह बायीं ओर करना...2 प्रमार्जन ।

बायें हाथ में ग्रहण की हुई मुहपत्ति द्वारा दायीं कक्षा (काँख) से पीठ के नीचे के भाग की प्रमार्जना करना । इसी तरह दायें हाथ में मुहपत्ति लेकर बायीं ओर करना...2 प्रमार्जन ।

तत्पश्चात् दायें हाथ में ओघे या चरवले द्वारा दायें-बायें पाँवों के मध्य, दायें व बायें भाग की क्रमशः प्रमार्जना करना...3 त्रिकद्वय ।

इस प्रकार सात त्रिक + एक चतुष्क=25 पडिलेहण । ये पुरुष के होती हैं ।

टीका में **'गोप्यावयव-विलोकन-रक्षणाय'** पाठ है । इसमें विलोकन शब्द इस बात का द्योतक है कि कक्षा, हृदय आदि गोप्य अवयव स्वयं व्यक्ति को भी नहीं देखना चाहिए, क्योंकि इन्हें देखना रागवर्धक है ।

स्त्री देह की 15 प्रतिलेखना

स्त्रियों का हृदय, मस्तक और स्कंध सदैव वस्त्र से ढका होता है, अतः इन तीन अंगों की 3 + 3 + 4 = 10 प्रतिलेखना नहीं होती हैं ।

दो हाथ (3 + 3), मुख (3) तथा दो पैर (3 + 3) = 15 प्रतिलेखना स्त्रियों के शरीर की होती हैं ।

आवस्सएसु जह जह, कुणइ पयत्तं अहीणमइरित्तं ।
तिविहकरणोवउत्तो, तह तह से निज्जरा होइ ।।22।।

शब्दार्थ

आवस्सएसु=आवश्यकों में, **जह-जह**=जैसे जैसे, **कुणइ**=करता है, **पयत्तं**=प्रयत्न, **अहीणं**=अहीन, **अइरित्तं**=अतिरिक्त, **तिविह**=तीन प्रकार, **करणोवउत्तो**=करण से उपयुक्त, **तह तह**=वैसे-वैसे, **से**=उसे, **निज्जरा**=निर्जरा, **होइ**=होती है ।

भावार्थ

तीन प्रकार के करण में उपयोगवाला, आवश्यकों में योग्य (न हीन, न अधिक) प्रयत्न करता है, उसे निर्जरा होती है ।

विवेचन

तारक तीर्थंकर परमात्मा ने जगत् के जीवों के कल्याण के लिए अनेकविध धर्मानुष्ठान बतलाए हैं । जो-जो पुण्यवंत आत्माएँ उन अनुष्ठानों का विधिवत् पालन करती हैं, उन आत्माओं का शीघ्र कल्याण हुए बिना नहीं रहता है ।

सद् गुरुवंदन का अनुष्ठान भी जिनेश्वर भगवंत ने ही बतलाया है । जो पुण्यशाली आत्मा गुरुवंदन में आनेवाले 25 आवश्यकों का विधिपूर्वक पालन करती है और उन अनुष्ठानों के आचरण समय अपने मन-वचन और काया को अच्छी तरह से जोड़ती है, वह आत्मा उस अनुष्ठान के माध्यम से

अनेक भवों में संचित किए हुए पाप कर्मों को जलाकर भस्मीभूत कर देती है। विशुद्ध अनुष्ठानों के माध्यम से आत्मा ज्यों-ज्यों कर्मनिर्जरा करती है त्यों-त्यों आत्मा का मौलिक स्वभाव प्रकट होता जाता है। कर्म के क्षय होने पर आत्मा अपने विशुद्ध स्वरूप को प्राप्त करती है।

मन, वचन और काया की एकता पूर्वक किए गए धर्मानुष्ठान में कर्मक्षय की इतनी ताकत है कि एकदम विशुद्ध भावपूर्वक अनुष्ठान किया जाय तो उसी भव में घाति कर्मों के समस्त बंधन टूट जाते हैं और आत्मा अपने वीतराग एवं विशुद्ध स्वरूप को प्राप्त कर लेती है।

बारहवाँ द्वार
वर्जनीय 32 दोष

दोस अणाढिय थड्ढय, पविद्ध परिपिंडियं च टोलगइं।
अंकुस कच्छभरिंगिय, मच्छुवत्तं मणपउट्ठं ॥23॥
वेइयबद्ध भयंतं, भय गारव मित्त कारणा तिन्नं।
पडिणीय रूट्ठ तज्जिय, सढ हीलिय विपलिउंचिययं ॥24॥
दिट्ठमदिट्ठं सिंगं, कर तम्मोअण अलिद्धणालिद्धं।
ऊणं उत्तरचूलिअ, मूअं ढड्ढर चुडलियं च ॥25॥

शब्दार्थ

दोस=दोष, **अणाढिय**=अनादर, **थड्ढय**=स्तब्ध, **पविद्ध**=प्रविद्ध, **परिपिंडिय**=परिपिंडित, **च**=और, **टोलगइ**=टोलगति, **अंकुस**=अंकुश, **कच्छभरिंगिय**=कच्छ परिंगित, **मच्छुव्वत्तं**=मत्स्योद्वृत्त, **मणपउट्ठं**=मन:प्रदुष्ट, **वेइयबद्ध**=वेदिकाबद्ध, **भयंतं**=भजंत, **भय**=भय, **गारव**=गौरव, **मित्त**=मित्र, **कारणा**=कारण, **तिन्नं**=स्तेन, **पडिणीय**=प्रत्यनीक, **रुट्ठ**=रुष्ट, **तज्जिय**=तर्जित, **सढ**=शठ, **हीलिय**=हीलित, **विपलिउं चिययं**=विपरिकुंचित, **दिट्ठमदिट्ठं**=दृष्ट-अदृष्ट, **सिंगं**=शृंग, **कर**=कर, **तम्मोअण**=करमोचन, **अलिद्धणालिद्धं**=आश्लिष्ट-अनाश्लिष्ट, **ऊणं**=ऊन, **उत्तरचूलिअ**=उत्तरचूलिका, **मूअं**=मूक, **ढड्ढर**=ढड्ढर, **चुडलियं**=चुड़लिक।

भावार्थ

अनादर दोष, स्तब्ध दोष, प्रविद्ध दोष, परिपिंडित दोष, टोलगति दोष, अंकुश दोष, कच्छ परिंगित दोष, मत्स्योद्वृत्त दोष, मनः प्रदुष्ट दोष, वेदिकाबद्ध दोष, भजंत दोष, भय दोष, गौरव दोष, मित्र दोष, कारण दोष, स्तेन दोष, प्रत्यनीकदोष, रुष्ट दोष, तर्जित दोष, शठ दोष, हीलित दोष, विपरिकुंचित दोष, दृष्टादृष्ट दोष, शृंगदोष, करदोष, करमोचनदोष आश्लिष्ट-अनाश्लिष्ट दोष, ऊन दोष, उत्तरचूड़ दोष, मूक दोष, ढड्ढर दोष तथा चुड़लिक दोष इन 32 दोषों को टालते हुए गुरुवंदन करना चाहिए।

विवेचन

निम्नलिखित 32 दोषों से रहित वन्दना करना शुद्ध वन्दन है।

1. अनाढिय :- उत्सुकता के बिना अनादर से वन्दना करना।

2. थद्द :- जात्यादि मद से गर्वित होकर वन्दना करना स्तब्धदोष युक्त वंदन है। द्रव्य और भाव के भेद से गर्वित दो तरह के हैं। इनकी चतुर्भंगी बनती है।

चतुर्भंगी :-

1. द्रव्य से गर्वित, भाव से नहीं। वायुजन्य पीड़ादि के कारण शरीर से गर्वित पर भाव से विनम्र।

2. भाव से गर्वित, द्रव्य से नहीं। भाव से गर्वित, शरीर से विनम्र।

3. द्रव्य से गर्वित, भाव से गर्वित। शरीर व भाव दोनों से गर्वित।

4. द्रव्य से नहीं, भाव से भी नहीं। शरीर-भाव दोनों से विनम्र चौथा भंगा सर्वशुद्ध है। दूसरा व तीसरा भंगा सर्वथा अशुद्ध। प्रथम भंगा शुद्धा-शुद्ध। कोई उदर-पृष्ठ में शूलादि से पीड़ित होने के कारण द्रव्य से स्तब्ध रहता हो फिर भी भाव से अकड़ न हो तो प्रथम भङ्ग भी शुद्ध है। यदि निष्कारण स्तब्ध रहे तो अशुद्ध है।

3. पविद्ध :- जैसे-तैसे वन्दन करना अथवा आधा वन्दन करके भाग जाना।

जैसे-एक गाड़ी वाला घरेलू सामान लेकर दूसरे गाँव जा रहा था। वहाँ पहुँच कर उसने मालिक से कहा कि गाँव आ गया है। अतः अपनी शर्त

पूरी हो गई । मालिक ने कहा-थोड़ी देर प्रतीक्षा करो जब तक मैं सामान रखने का उचित स्थान खोज लूँ । लेकिन वह सामान रास्ते में ही उतारकर भाग गया, वैसे साधु भी वन्दन अधूरा छोड़कर भाग जाय ।

4. परिपिंडिय :- साथ में बैठे हुए सभी आचार्यों को एक ही विधि से वन्दन करना अथवा घुटनों पर हाथ टेककर अव्यक्त सूत्रोच्चारपूर्वक वन्दन करना ।

5. टोलगइ :- टिड्डी की तरह आगे-पीछे कूदते हुए वन्दन करना ।

6. अंकुस :- अङ्कुश से जैसे हाथी को वश किया जाता है, वैसे सोये हुए, खड़े या काम में व्यग्र आचार्य या गुरु को चोलपट्टक या हाथ पकड़ कर अवज्ञा से खींचते हुए जबर्दस्ती वन्दन करना । आशातना का कारण होने से ऐसा नहीं करना चाहिए, किन्तु प्रणाम करके कहे कि `उपविशन्तु भगवन्तो येन वन्दनकं प्रयच्छामि' भगवन् ! आप विराजिये, जिससे मैं वन्दन कर सकूँ । ऐसा कहकर गुरु को बिठायें, फिर वन्दन करें ।

- आवश्यक वृत्ति मते :- दोनों हाथों में अङ्कुश की तरह रजोहरण पकड़कर वन्दन करना वह `अङ्कुश वन्दन' कहा है ।

- अन्यमत :- अङ्कुश से पीड़ित हाथी की तरह सिर को ऊँचा-नीचा करते हुए वन्दन करना । पूर्वोक्त दोनों मत सूत्रानुयायी नहीं हैं (तत्त्वं केवलीगम्यं) ।

7. कच्छभरिंगिय :- कछुए की तरह आगे-पीछे खिसकते हुए वन्दन करना ।

8. मच्छुव्वत्त :- एक आचार्य को वन्दन करके पास में बैठे हुए दूसरे आचार्य को वन्दन करने के लिए वहाँ बैठे-बैठे ही मत्स्य की तरह शरीर पलट कर वन्दन करना ।

9. मणसापउट्ठ :- प्रद्वेषपूर्वक वन्दन करना । प्रद्वेष दो प्रकार से:

(1) आत्मप्रत्यय :- गुरु द्वारा शिष्य को साक्षात् उपालंभ देने से उत्पन्न प्रद्वेष ।

(2) परप्रत्यय :- गुरु द्वारा शिष्य के सम्बन्धी, मित्रादि के समक्ष शिष्य के सम्बन्ध में अप्रिय बात कह देने से उत्पन्न प्रद्वेष ।

10. वेइयाबद्ध :- घुटनों पर हाथ टेककर, घुटनों से बाहर या गोद में हाथ रखकर, बायें पैर को दोनों हाथों के बीच रखकर अथवा दायें पैर को दोनों हाथों के बीच रखकर वन्दन करना ।

11. भयन्त :- हे आचार्य महाराज ! हम आपको वन्दन करने के लिए खड़े हैं, इस तरह गुरु पर अहसान चढ़ाते हुए वन्दन करना अर्थात् गुरु मेरे अनुकूल हैं, भविष्य में भी मेरे अनुकूल रहेंगे, इस अभिप्राय से वन्दन करना।

12. भयसा :- यदि मैं वन्दन नहीं करूंगा तो गुरु मुझे गच्छ बाहर कर देंगे, इस भय से वन्दन करना। भय के अन्य हेतु भी यथासंभव समझ लेना चाहिए ।

13. मित्ती :- आचार्य के साथ मैत्री (प्रीति) चाहते हुए वन्दन करना।

14. गारव :- **`वन्दनादि समाचारी में मैं कुशल हूँ।'** अन्य साधु ऐसा समझें। इस प्रकार प्रशंसा पाने के लिए आवर्तादि व्यवस्थित करते हुए वन्दन करना ।

15. कारण :- ज्ञान, दर्शन, चारित्र के लाभ को छोड़कर इहलौकिक वस्त्र, कम्बल आदि वस्तुओं की अभिलाषा से गुरु को वन्दन करना।

प्रश्न :- ज्ञानादि की चाहना से वन्दन करना शुद्ध वन्दन है क्या ?

उत्तर :- यदि वन्दन के पीछे यह आशय हो कि मैं ज्ञानादि को प्राप्त करूंगा तो लोग मुझे मानेंगे, पूजेंगे, मेरा गौरव करेंगे, इस प्रकार ज्ञानादि के लिए किया जानेवाला वन्दन भी अशुद्ध ही है। केवलज्ञानादि की प्राप्ति के लिए किया जाने वाला वन्दन शुद्ध वन्दन है। आदि पद से दर्शन व चारित्र का ग्रहण होता है ।

16. तेणिय :- दूसरा कोई श्रावक या साधु न देखे इस तरह चोरी छुपे वन्दन करना। दूसरे यदि देखेंगे तो कहेंगे कि `अहो ! ये विद्वान् होते हुए भी वन्दन करते हैं। इससे मेरी अपभ्राजना होगी ।'

17. पडिणीय :- आहार, नीहार के समय वन्दन करना, प्रत्यनीक वन्दन है ।

18. रुट्ठ :- क्रोधावेश में वन्दन करना रुष्ट वन्दन है ।

19. तज्जिय :- तुम कठपुतली की तरह हो, न तो वन्दन करने से खुश होते हो, न नाराज। फिर तुम्हें वन्दन करने से क्या लाभ ? इस प्रकार

तर्जना करते हुए वन्दन करना अथवा `अभी लोगों के बीच मेरे से वन्दन करवा लो, किन्तु अकेले में बताऊँगा' इस प्रकार मस्तक, भृकुटी, अङ्गुली आदि से तर्जना करते हुए वन्दन करना ।

20. सढ :- लोकों में विश्वास पैदा करने के लिए, बिना भाव से कपटपूर्वक वन्दन करना, शठ वन्दन कहलाता है ।

21. हीलिय :- हे गणि ! वाचक ! ज्येष्ठार्य ! आपको वन्दन करने से क्या लाभ है ? इस प्रकार हीलना करते हुए वन्दन करना ।

22. विपलिउंचियय :- विकथा करते हुए वन्दन करना यह `विपरीत कुंचित वन्दन' है ।

23. दिट्ठमदिट्ठ :- वन्दन करते समय, सबके पीछे जाकर बैठ जाना और कोई देखे तो वन्दन करना अन्यथा बैठे रहना, यह `दृष्टादृष्ट' वन्दन है ।

24. सिंग :- `अहो-कायं-काय' वगैरह आवर्त्त ललाट के मध्य में न करते हुए बायें, दायें भाग पर करना, `श्रृंग-वन्दन' है । जहाँ `सिंगं पुण कुम्भपासेहिं' ऐसा पाठ है वहाँ कुंभ का अर्थ ललाट होने से यही अर्थ समझना ।

25. कर :- राज्य के `कर' की तरह वन्दन को गुरु का `कर' समझकर करना ।

26. तम्मोयण :- अरे ! संयम लिया इसलिए लौकिक कर से तो मुक्त हो गये किन्तु अरिहंत के कर से अभी मुक्त नहीं हुए ऐसा समझ कर वन्दन करना ।

27. अणिद्धणालिद्ध :- आवर्त्त के समय रजोहरण तथा मस्तक को हाथ से स्पर्श करना चाहिए किन्तु ऐसा न करना ।

चतुर्भंगी :-

1. रजोहरण स्पर्श करना, मस्तक स्पर्श करना ।
2. रजोहरण स्पर्श करना, मस्तक स्पर्श नहीं करना ।
3. मस्तक स्पर्श करना, रजोहरण स्पर्श नहीं करना ।
4. रजोहरण स्पर्श नहीं करना, मस्तक भी स्पर्श नहीं करना ।

- इन चारों भंगों में से प्रथम भंगा शुद्ध, शेष तीनों अशुद्ध हैं ।

28. उण :- अक्षर, वाक्य, पद न्यूनाधिक बोलते हुए वन्दन करना अथवा उत्सुकतावश जल्दी-जल्दी वन्दन समाप्त करना। 'अवनमन' आदि आवश्यक न्यून करना, वह आवश्यक 'न्यून-वन्दन' कहलाता है।

29. उत्तरचूलिय :- वन्दन करने के बाद 'मत्थएण-वंदामि' जोर से बोलना, यह 'उत्तरचूल वन्दन' कहलाता है।

30. मूय :- वन्दन करते समय सूत्र, आवर्त्तों का स्पष्ट उच्चारण नहीं करना, किन्तु गूंगे की तरह मन में बोलते हुए वन्दन करना, 'मूक-वन्दन' कहलाता है।

31. ढड्ढर :- वन्दन करते समय सूत्र जोर-जोर से बोलना, यह 'तीव्र-स्वर वन्दन' कहलाता है।

32. चुडलिय :- रजोहरण को अलात (जलते हुए काष्ठ) की तरह गोल घुमाते हुए वन्दन करना ॥

वंदन-फल

बत्तीस दोस परिसुद्धं, किइकम्मं जो पउंजइ गुरूणं।
सो पावइ निव्वाणं, अचिरेण विमाणवासं वा ॥26॥

शब्दार्थ

बत्तीसदोस=बत्तीस दोष, **परिसुद्धं**=विशुद्ध, **किइकम्मं**=वंदन, **जो**=जो, **पउंजइ**=करता है, **गुरूणं**=गुरु को, **सो**=वह, **पावइ**=प्राप्त करता है, **निव्वाणं**=निर्वाण, **अचिरेण**=शीघ्र, **विमाणवासं**=वैमानिक, **वा**=अथवा।

भावार्थ

जो साधु (साध्वी, श्रावक या श्राविका) बत्तीस दोष से रहित (अत्यंत शुद्ध) गुरु वंदन करता है, वह शीघ्र ही निर्वाण या वैमानिक देवगति प्राप्त करता है।

विवेचन

जैन शासन में निर्दिष्ट प्रत्येक क्रिया अनुष्ठान का मुख्य उद्देश्य मोक्ष-प्राप्ति है। तारक परमात्मा ने मोक्ष को लक्ष्य में रखकर ही सभी आराधना अनुष्ठान बतलाए हैं।

ये सभी अनुष्ठान विधिपूर्वक करें तो ही लाभ करते हैं । मोक्षफलदायी इन अनुष्ठानों में विधिपालन अनिवार्य है ।

गुरुवंदन भी एक महान् क्रिया है । गुरुवंदन संबंधी 32 दोषों से बचकर गुरुवंदन की क्रिया की जाय तो यह क्रिया अवश्य ही मोक्षफल प्रदान करती है ।

गुरुवंदन की क्रिया से कदाचित् मोक्षसुख न मिले तो भी वैमानिक देवगति तो अवश्य प्राप्त होती है ।

तेरहवाँ द्वार

छह गुणों की प्राप्ति

इह छच्च गुणा विणओवयार माणाइभंग गुरु पूआ ।
तित्थयराण य आणा, सुय धम्माराहणाऽकिरिया ।।27।।

शब्दार्थ

इह=यहाँ, **छच्च**=छह, **गुणा**=गुण, **विणओवयार**=विनयोपचार, **माणाइभंग**=मान आदि का नाश, **गुरुपूआ**=गुरुपूजा, **तित्थयराण**=तीर्थंकरों की, **य**=और, **आणा**=आज्ञा, **सुयधम्म**=श्रुतधर्म, **आराहणा**=आराधना, **अकिरिया**=मोक्ष ।

भावार्थ

गुरुवंदन करने से छह गुणों की प्राप्ति होती है–

1) विनयोपचार 2) मानभंग 3) गुरुपूजा 4) तीर्थंकर आज्ञा की आराधना 5) श्रुत धर्म की आराधना 6) मोक्ष ।

विवेचन

सद्गुरु को भावपूर्वक वंदन करने से आत्मा में छह गुण पैदा होते हैं ।

1) विनय :- अर्थात् नम्रतापूर्ण व्यवहार । गुरुवंदन करते समय 'खमासमणा' आदि देने से गुरु का विनय होता है । जिस प्रकार लोहचुंबक अपने आसपास में रहे लोहकणों को अपनी ओर खींच लेता है, उसी प्रकार यह विनय गुण भी एक ऐसा चुंबक है, जो अन्य सभी गुणों को अपनी ओर

खींच लेता है । जीवन में एक विनय गुण आ जाय तो अन्य गुण भी आए बिना नहीं रहते हैं । विनय के अभाव में अन्य गुणों की विशेष कीमत नहीं है ।

2) माननाश :- देवगति में लोभ, नरक गति में क्रोध और तिर्यंच गति में माया की प्रधानता है, जबकि मनुष्य को सबसे अधिक हैरान करने-वाला मान कषाय है, यह कषाय आदमी को झुकने नहीं देता है । गुरुवंदन करने से हमारे मान कषाय का नाश होता है ।

3) गुरुपूजा :- सद्भावपूर्वक गुरु को किया गया वंदन, गुरुपूजा रूप है । गुरु की पूजा करने से उनकी आत्मा में रहे सद्गुण हमें प्राप्त होते हैं ।

4) आज्ञापालन :- अपने उपकारी सद्गुरु के चरणों में भावपूर्वक नमस्कार करना, यह तीर्थंकर परमात्मा की आज्ञा है । गुरु को वंदन करने से हमें तीर्थंकर परमात्मा की आज्ञापालन का लाभ मिलता है ।

5) श्रुत धर्म की आराधना :- श्रुत की प्राप्ति गुरु से होती है और गुरु से ज्ञान पाने के लिए गुरु का विनय जरूरी है । गुरु का विनय करने से हमें श्रुतज्ञान की प्राप्ति होती है ।

6) मोक्षप्राप्ति :- सद्भावपूर्वक गुरु को वंदन करने से कर्मों की अपूर्व निर्जरा होती है । सभी कर्मों की निर्जरा होने पर आत्मा को मोक्षपद की प्राप्ति होती है ।

गुरुवंदन करने से उपर्युक्त छह फायदे होते हैं, जबकि गुरु को वंदन नहीं करने से अभिमान का पोषण, अविनय, नीच गोत्र कर्म का बंध, सम्यक्त्व का अलाभ (हानि) तथा संसार की अभिवृद्धि होती है ।

गुरु-स्थापना

गुरुगुणजुत्तं तु गुरुं, ठाविज्जा अहव तत्थ अक्खाई ।
अहवा नाणाइतियं, ठविज्ज सक्खं गुरु अभावे ।।28।।

शब्दार्थ : गुरुगुण=गुरु के गुणों से, **जुत्तं**=युक्त, **तु**=तथा, **ठाविज्जा**=स्थापना करे, **अहव**=अथवा, **तत्थ**=वहाँ, **अक्खाई**=अक्ष आदि, **अहवा**=अथवा, **नाणाइ**=ज्ञान आदि, **तियं**=त्रिक, **ठविज्ज**=स्थापना करे, **सक्खं**=साक्षात्, **गुरु अभावे**=गुरु के अभाव में ।

भावार्थ

साक्षात् गुरु के अभाव में गुरु के गुणों से युक्त गुणवाले गुरु की स्थापना करे । अथवा वहाँ अक्षादि या ज्ञान आदि तीन के उपकरणों में गुरु की स्थापना करे ।

विवेचन

साक्षात् गुरु के अभाव में गुरु की सद्भूत स्थापना करे । सद्भूत स्थापना अर्थात् गुरु के समान आकारवाली मूर्ति में गुरुपद की स्थापना करे । पुरुषाकार सिवाय की अन्य किसी आकारवाली वस्तु में गुरु की स्थापना करना, उसे गुरु की असद्भूत स्थापना कहते हैं ।

सद्भूत स्थापना का योग न हो तो अक्ष, चंदन आदि में अथवा ज्ञान, दर्शन और चारित्र के उपकरणों में गुरु की स्थापना करनी चाहिए ।

अक्खे वराडए वा, कट्ठे पुत्थे अ चित्तकम्मे अ ।
सब्भावमसब्भावं, गुरुठवणा इत्तरावकहा ।।29।।

शब्दार्थ

अक्खे=अक्ष में, **वराडए**=वराटक में, **कट्ठे**=काष्ठ में, **पुत्थे**=पुस्तक में, **चित्तकम्मे**=चित्रकर्म में, **सब्भावं**=सद्भूत, **असबभाव**=असद्भूत, **गुरुठवणा**=गुरु की स्थापना, **इत्तर**=इत्वर-अल्पकालीन, **आवकहा**=हमेशा ।

भावार्थ

अक्ष, कौड़ी, काष्ठ, पुस्तक और चित्रकर्म में गुरु की स्थापना की जा सकती है ।

गुरु की स्थापना दो प्रकार की होती है सद्भूत और असद्भूत ! यह स्थापना भी दो प्रकार की होती है अल्पकालीन और यावत्कथित ।

विवेचन

गुरु की स्थापना किन-किन पदार्थों में की जा सकती है, उसका सामान्य निर्देश उपर्युक्त गाथा में किया गया है ।

1) अक्ष :- अक्ष अर्थात् समुद्र में पैदा होने वाले बेइन्द्रिय जीव का कलेवर ! समुद्र में शंख की तरह यह पैदा होता है । वर्तमान समय में साधु

भगवंत इसी अक्ष में गुरु की स्थापना करते हैं। शंख की तरह यह भी उत्तम पदार्थ होने से उसमें गुरु स्थापना की जाती है।

2) वराटक :- तीन लाइनवाले कौडे को वराटक कहते हैं। वर्तमान समय में इसका प्रचार नहीं है।

अक्ष और वराटक में गुरु की जो स्थापना होती है, वह असद्भूत स्थापना कहलाती है, क्योंकि गुरु का जो आकार होता है, वह उनमें नहीं होता है।

3) चंदन :- चंदन के काष्ठ में गुरु के समान आकार बनाकर उसमें गुरु के **36** गुणों की प्रतिष्ठा कर, उसे गुरु मानना, यह गुरु की सद्भूत स्थापना कहलाती है।

चारित्र के उपकरण दंड आदि में और रजोहरण की चंदन की डंडी में गुरु की स्थापना करना, उसे असद्भूत स्थापना कहते हैं।

4) लेप्य कर्म :- रंग आदि से गुरु की मूर्ति का आलेखन करना, उसे लेप्यकर्म कहते हैं। पाषाण आदि में भी शिल्प द्वारा गुरु का आकार बनाया जा सकता है, गुरु की उस प्रकार की मूर्ति को सद्भूत स्थापना कहते हैं।

5) पुस्तक :- ज्ञान के उपकरण पुस्तक आदि में गुरु की स्थापना करना, उसे असद्भूत स्थापना कहते हैं।

सामायिक आदि क्रिया करते समय अल्पकाल के लिए जो गुरु की स्थापना की जाती है, उसे इत्वर स्थापना कहते हैं और प्रतिष्ठा विधि में निर्दिष्ट विधि के अनुसार, जबतक वह द्रव्य रहेगा, तब तक के लिए उस द्रव्य में गुरु की स्थापना को यावत् कथित स्थापना कहते हैं।

गुरु विरहंमि ठवणा, गुरूवएसोवदंसणत्थं च।
जिणविरहंमि जिण-बिंब-सेवणामंतणं सहलं ।।30।।

शब्दार्थ

गुरु विरहंमि=गुरु के विरह में, **ठवणा**=स्थापना, **गुरुवएसो**=गुरु के उपदेश, **उवदंसणत्थं**=बताने के लिए, **जिणविरहंमि**=जिनेश्वर के विरह में,

जिणबिंब=जिनेश्वर के बिंब, **सेवणा**=सेवा, **आमंतणं**=आमंत्रण, **सहलं**=सफल ।

भावार्थ

श्री जिनेश्वर परमात्मा के विरह में जिस प्रकार उनकी प्रतिमा की सेवा और आमंत्रण सफल माना जाता है, उसी प्रकार गुरु भगवंत के अभाव में उनके आदेश व दर्शन के लिए उनकी स्थापना सफल और सार्थक है ।

विवेचन

जगत् के जीवों के उद्धार के लिए तारक तीर्थंकर परमात्मा धर्मशासन की स्थापना करते हैं, परंतु उस शासन की स्थापना के बाद भी जगत् में उनका अस्तित्व तो मर्यादित काल के लिए ही रहता है ।

ऋषभदेव प्रभु ने शासन की स्थापना की, उसके बाद वे 1000 वर्ष न्यून 1 लाख पूर्व वर्ष तक पृथ्वीतल पर रहे, जबकि उनके द्वारा स्थापित शासन 50 लाख करोड़ सागरोपम तक रहा ।

प्रभु के विरह में प्रभु की भक्ति करने का एक मात्र साधन उनकी प्रतिमा ही है ।

साक्षात् परमात्मा के अस्तित्वकाल में उनकी सेवा-भक्ति करने से जो फल प्राप्त कर सकते हैं, वो ही फल उनके अस्तित्व के अभाव में उनकी प्रतिमा की पूजा-भक्ति द्वारा प्राप्त कर सकते हैं ।

जिस प्रकार जिनेश्वर के विरह में उनकी प्रतिमा हमारे लिए श्रेष्ठ आलंबनभूत है, उसी प्रकार गुरु के विरह में गुरु की स्थापना करके ही हम गुरु से प्राप्त करने योग्य आदेश प्राप्त कर सकते हैं और गुरु के दर्शन का लाभ प्राप्त कर सकते हैं ।

गुरु के विरह में गुरु की स्थापना की भी उतनी ही अधिक कीमत है ।

चौदहवाँ द्वार

अवग्रह

चउदिसि गुरुग्गहो इह, अहुट्ठ तेरस करे सपरपक्खे ।
अणणुन्नायस्स सया, न कप्पए तत्थ पविसेउं ।।31।।

शब्दार्थ

चउदिसि=चारों दिशाओं में, **गुरुग्गहो**=गुरु का अवग्रह, **इह**=यहाँ, **अह**=अब, **उट्ठ**=साढ़े तीन हाथ, **सपरपक्खे**=स्वपर पक्ष में, **परपक्खे**=पर पक्ष में, **अणणुन्नायस्स**=अनुज्ञा लिये बिना, **सया**=हमेशा, **न कप्पए**=कल्पता नहीं है, **तत्थ**=वहाँ, **पविसेउं**=प्रवेश करने के लिए ।

भावार्थ

चारों दिशाओं में गुरु का अवग्रह स्वपक्ष के विषय में साढ़े तीन हाथ और पर-पक्ष के विषय में गुरु का अवग्रह 13 हाथ का होता है। गुरु की आज्ञा लिये बिना उनके अवग्रह में प्रवेश करना कभी कल्पता नहीं है ।

विवेचन

पुरुष की अपेक्षा पुरुष अर्थात् साधु की अपेक्षा साधु व गृहस्थ का अवग्रह स्वपक्ष कहलाता है और पुरुष की अपेक्षा स्त्री का अर्थात् साधु की अपेक्षा साध्वी व श्राविका का अवग्रह पर-पक्ष कहलाता है ।

स्वपक्ष की अपेक्षा से यह अवग्रह 3.5 हाथ व पर-पक्ष की अपेक्षा से 13 हाथ का है ।

स्वपक्ष अवग्रह

गुरु से साधु का 3½ हाथ

गुरु से श्रावक का 3½ हाथ

गुरुणी से साध्वी का 3½ हाथ

गुरुणी से श्राविका का 3½ हाथ

पर-पक्ष अवग्रह

गुरु से साध्वी का 13 हाथ

गुरु से श्राविका का 13 हाथ

गुरुणी से साधु का 13 हाथ

गुरुणी से श्रावक का 13 हाथ

किसी अनिवार्य कारणवश गुरु के अवग्रह में प्रवेश करना हो तो गुरु की आज्ञा प्राप्त करना, बहुत ही जरूरी है। गुरु की अनुमति बिना गुरु के अवग्रह में प्रवेश करने से गुरु की आज्ञा के भंग का दोष लगता है।

अपने ब्रह्मचर्य व्रत की रक्षा के लिए विजातीय क्षेत्र में इस अवग्रह की मर्यादा का पालन अवश्य होना चाहिए। इस मर्यादा के भंग से व्रत-भंग की भी संभावना रहती है। अतः व्रतपालन के इच्छुक साधक को इस अवग्रह की मर्यादा के पालन में खूब जागरूक रहना चाहिए।

पंद्रहवाँ द्वार

अक्षर व पद संख्या

पण तिग बारस दुग तिग, चउरो छट्ठाण पय इगुणतीसं।
गुणतीस सेस आवस्सयाइ, सव्वपय अडवन्ना ।।32।।

शब्दार्थ

पण=पाँच, **तिग**=तीन, **बारस**=बारह, **दुग**=दो, **चउरो**=चार, **छट्ठाण**=छह स्थान, **पय**=पद, **इगुणतीसं**=उनतीस, **गुणतीस**=उनतीस, **सेस**=बाकी, **आवस्सयाइ**=आवश्यक आदि, **सव्वपय**=सभी पद, **अडवन्ना**=अट्ठावन ।

भावार्थ

छह स्थान में पांच, तीन, बारह, दो, तीन और चार कुल मिलाकर उनतीस और शेष आवस्सियाए आदि उनतीस पद हैं। इस प्रकार कुल **58** पद हैं।

विवेचन

17 वाँ अक्षर द्वार सुगम होने से गाथा में उसका निर्देश नहीं किया है। यहाँ उसका निर्देश करते हैं। वांदणा सूत्र में कुल 226 अक्षर हैं। इनमें 201 लघु अक्षर और 25 संयुक्ताक्षर हैं।

33वीं गाथा में वंदन करनेवाले के जो 6 स्थान बतलाए हैं, उनमें क्रमशः 5-3-12-2-3-4 पद हैं।

पहले स्थान में 5 पद (इच्छामि खमासमणो वंदिउं जावणिज्जाए निसीहियाए)

दूसरे स्थान में 3 पद (अणुजाणह मे मिउग्गहं)

तीसरे स्थान में 12 पद (निसीहि अहो कायं कायसंफासं खमणिज्जो भे किलामो-अप्पकिलंताणं-बहुसुभेण भे दिवसो वइक्कंतो)

चौथे स्थान में 2 पद (जत्ता भे)

पाँचवें स्थान में 3 पद (जवणिज्जं च भे)

छठे स्थान में 4 पद (खामेमि खमासमणो देवसिअं वइक्कमं)

इन छह स्थानों में 5+3+12+2+3+4 = 29 पद हुए।

शेष-`आवस्सियाए से अप्पाणं वोसिरामि में 29 पद होते हैं।

आवस्सियाए पडिक्कमामि खमासमणाणं देवसियाए आसायणाए तित्तीसन्नयराए जं किंचि मिच्छाए मणदुक्कडाए वयदुक्कडाए कायदुक्कडाए कोहाए माणाए मायाए लोभाए सव्वकालियाए सव्वमिच्छोवयाराए सव्वधम्माइक्कमणाए आसायणाए जो मे अइआरो कओ तस्स खमासमणो पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि।

सोलहवाँ द्वार

शिष्य के छह स्थान

इच्छा य अणुन्नवणा, अव्वाबाहं च जत्त जवणा य।
अवराह खामणा वि अ वंदणदायस्स छट्ठाणा ॥33॥

शब्दार्थ

इच्छा **य**=तथा, **अणुन्नवणा**=अनुज्ञापना / आज्ञा, **अव्वाबाहं**=अव्याबाध, **च**=तथा, **जत्त**=यात्रा, **जवणा**=देह समाधि, **अवराह**=अपराध, **खामणा**=क्षमापना, **वि**=भी, **अ**=और, **वंदणदायस्स**=वंदन करनेवाले, **छट्ठाणा**=छह स्थान ।

भावार्थ

इच्छा, अनुज्ञा, अव्याबाधं, संयम-यात्रा, देहसमाधि और अपराध-क्षमापना ये वंदन करनेवाले शिष्य के छह स्थान हैं ।

विवेचन

1. इच्छा 2. अनुज्ञापना 3. अव्याबाध, 4. यात्रा, 5. यापना, 6. खामणा-क्षमापना-गुरु के ये छह स्थान हैं ।

1) इच्छा :- `इच्छामि' इत्यादि बोलकर शिष्य सर्वप्रथम गुरु को वन्दन करने की अपनी इच्छा प्रकट करता है अतः इच्छा शिष्य का प्रथम वन्दन स्थान है । नाम, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, काल व भाव के भेद से इच्छा के छह प्रकार हैं । नाम-इच्छा और स्थापना-इच्छा सुगम होने से यहाँ नहीं बताई गई है । शेष भेद बताये हैं-

अ) द्रव्य इच्छा :- सचित्त-शिष्यादि, अचित्त-उपधि आदि व मिश्र-उपधि सहित शिष्यादि की अभिलाषा अथवा अनुपयुक्त शिष्य का **`इच्छामि खमासमणो'** आदि बोलना ।

ब) क्षेत्र इच्छा :- मगध आदि क्षेत्र विषयक इच्छा ।

स) काल इच्छा :- रात-दिन आदि कालविषयक इच्छा । जैसे-अभिसारिका, चोर व परस्त्रीगामी रात को पसन्द करते हैं । नट-नर्तक आदि सुकाल चाहते हैं । पर, अनाज के व्यापारी अकाल की कामना करते हैं ।

द) भाव-इच्छा :- भाव-इच्छा के दो भेद हैं-प्रशस्त इच्छा व अप्रशस्त इच्छा । प्रशस्त इच्छा-ज्ञानादि को पाने की इच्छा ।

अप्रशस्त इच्छा-स्त्री आदि का अनुराग ।

यहाँ वन्दन के सम्बन्ध में प्रशस्त भाव-इच्छा उपयोगी है ।

2) अनुज्ञापना :- इसके भी इच्छा की तरह छह भेद हैं। प्रथम दो सुगम होने से नहीं बताये। अनुज्ञापना का अर्थ है-सम्मति, आज्ञा आदि।

अ) द्रव्य-अनुज्ञापना :- इसके तीन भेद है-लौकिक, लोकोत्तर व कुप्रावचनिक।

लौकिक अनुज्ञा-सचित्त-अचित्त व मिश्र तीन प्रकार की है–

l अश्व-हाथी आदि सचित्त जीवों की अनुज्ञा...प्रथम।

l मोती-रत्न आदि अचित्त पदार्थों की अनुज्ञा...द्वितीय।

l विविध अलङ्कारों से विभूषित स्त्री-विषयक अनुज्ञा...तृतीय।

u लोकोत्तर अनुज्ञा-इसके भी पूर्ववत् तीन भेद हैं-

l शिष्य आदि की आज्ञा देना...प्रथम।

l वस्त्रादि की आज्ञा देना..द्वितीय।

l वस्त्रादि सहित शिष्यादि की अनुज्ञा...तृतीय।

u कुप्रावचनिक-अनुज्ञा यह भी पूर्ववत् तीन प्रकार की है-

ब) क्षेत्र-अनुज्ञापना :- जितने क्षेत्र की अनुज्ञा दी जाय अथवा जिस क्षेत्र में अनुज्ञा की व्याख्या की जाय वह क्षेत्र-अनुज्ञापना है।

स) काल-अनुज्ञापना :- जिस काल की आज्ञा दी जाय अथवा जिस काल में अनुज्ञा की व्याख्या की जाय।

द) भाव-अनुज्ञापना :- `आचारांग' आदि आगमग्रन्थों की अनुज्ञा देना। यहाँ यही अनुज्ञा उपयोगी है।

3) अव्याबाध :- जहाँ किसी प्रकार की बाधा न हो, वह अव्याबाध वन्दन है। बाधा के दो प्रकार हैं-द्रव्यबाधा और भावबाधा।

अ) द्रव्य-बाधा :- खड्ग आदि शस्त्रों के द्वारा होने वाले आघात से जन्य वेदना।

ब) भाव-बाधा :- मिथ्यात्वादि से जन्य भवदुःख।

पूर्वोक्त दोनों प्रकार की बाधा जहाँ नहीं है, ऐसा वन्दन अव्याबाध वन्दन है। वन्दन की अव्याबाधता `बहुसुभेण भे' से स्पष्ट होती है।

4) यात्रा :- शुभ प्रवृत्ति। इसके दो भेद हैं-द्रव्य यात्रा और भाव यात्रा।

अ) द्रव्य यात्रा :- तापस आदि मिथ्यादृष्टियों की क्रिया में प्रवृत्ति।

ब) भाव यात्रा :- मुनियों की अपनी-अपनी क्रिया में प्रवृत्ति ।

5) यापना :- निर्वाह करना । इसके भी दो भेद हैं-द्रव्ययापना और भावयापना ।

अ) द्रव्ययापना :- मिश्री, द्राक्ष, गुड़ आदि उत्तम औषधियों के द्वारा शरीर को समाधि पहुँचाना ।

ब) भावयापना :- इन्द्रिय-संयम व मन की शान्ति के द्वारा शरीर को समाधि पहुँचाना ।

6) क्षमापना :- क्षमापना करना । इसके भी दो भेद हैं: द्रव्यक्षमापना व भावक्षमापना ।

अ) द्रव्य क्षमापना :- दुर्भाव से युक्त व्यक्ति का वर्तमान भव सम्बन्धी हानि से डर कर क्षमापना करना ।

ब) भाव क्षमापना :- भवभीरु, मोक्षाभिलाषी आत्मा की क्षमापना ।

सत्तरहवाँ एवं अठारहवाँ द्वार

छह गुरुवचन

छंदेणणुजाणामि, तहत्ति तुब्भं पि वट्टए एवं ।
अहमवि खामेमि तुमं, वयणाइं वंदणरिहस्स ।।34।।

शब्दार्थ

छंदेण=इच्छा द्वारा, **अणुजाणामि**=आज्ञा देता हूँ, **तहत्ति**=उसी प्रकार, **तुब्भंपि**=तुझे भी, **वट्टए**=हैं, **एवं**=उसी प्रकार, **अहमवि**=मैं भी, **खामेमि**=खमाता हूँ, **तुमं**=तुमको, **वयणाइं**=ये वचन, **वंदणरिहस्स**=वंदन करने योग्य गुरु के ।

भावार्थ

छंदेण, अणुजाणामि, तहत्ति, तुब्भं पि वट्टए एवं और 'अहमवि खामेमि' तुमं, ये गुरु के छह वचन होते हैं ।

विवेचन

हे भगवन् ! साधु-पुरुषों की वन्दना, उपासना का क्या लाभ है ? हे गौतम ! साधु-पुरुषों की वन्दना, उपासना के 10 लाभ (फल) हैं-

1. श्रवण फल 2. ज्ञान फल 3. विज्ञान फल 4. प्रत्याख्यान फल 5. संयम फल 6. आस्त्रवरोध फल अर्थात् संवर 7. तप फल 8. निर्जरा फल 9. अक्रिया फल 10. सिद्धिगमन फल ।

6. गुरुवचन :- वंदन के इच्छुक शिष्य द्वारा वन्दन की अनुज्ञा माँगने पर, गुरु जो प्रत्युत्तर देते हैं वे गुरुवचन कहलाते हैं और वे छह हैं ।

चूर्णिकारमते :-

1. शिष्य :- `इच्छामि खमासमणो...निसीहिआए' वन्दन करने की आज्ञा माँगना ।

गुरु :- `छंदेण'** वन्दन कराना मुझे इष्ट है, कहकर आज्ञा देना । यदि गुरु क्षोभ या बाधा युक्त हैं तो **`प्रतीक्षस्व' प्रतीक्षा करो, कहते हैं । क्षोभ या बाधा का कारण बताने योग्य होता है तो बताते हैं अन्यथा नहीं ।

वृत्तिकारमते :- वन्दन कराना है तो **`छंदेण'** ही कहते हैं पर क्षोभादि है तो **`त्रिविधेन'** अर्थात् मन, वचन, काया से वन्दन करना निषिद्ध है, ऐसा कहते हैं । तब शिष्य संक्षेप में वन्दन करता है ।

2. शिष्य :- `अणुजाणह मे मि उग्गहं' गुरु के अवग्रह में प्रवेश करने की आज्ञा माँगना ।

गुरु :- `अणुजाणामि' अवग्रह में प्रवेश करने की आज्ञा देना ।

3. शिष्य :- निस्सीहि...दिवसो वइक्कंतो' इन बारह पदों के द्वारा गुरु को रात्रि या दिवस सम्बन्धी सुखशाता पूछना ।

गुरु :- `तहत्ति' जैसा तुम कह रहे हो, वैसा ही मेरी रात अथवा दिन व्यतीत हुआ है ।

4. शिष्य :- `जत्ता भे' आपकी संयम यात्रा सुखपूर्वक चल रही है ?

गुरु :- `तुब्भंपि वट्टए' हाँ, मेरी तो सुखपूर्वक चल रही है, पर तुम्हारी भी सुखपूर्वक चल रही है न ?

5. शिष्य :- `जवणिज्जं च भे' आपके शारीरिक व मानसिक शाता है ?

गुरु :- `एवं' हाँ, शाता है ।

6. शिष्य :- `खामेमि खमासमणो ! देवसिअं वइक्कमं' हे

क्षमाश्रमण ! आज दिन या रात में मेरे से आपका जो कुछ भी अपराध हुआ हो तो मैं आपसे क्षमा माँगता हूँ ।

उन्नीसवाँ द्वार

गुरु की 33 आशातनाएँ

पुरओ पक्खासन्ने, गंता चिट्ठण निसीअणायमणे ।
आलोअण पडिसुणणे, पुव्वालवणे य आलोए ।।35।।

तह उवदंस निमंतण, खद्धाययणे तहा अपडिसुणणे ।
खद्धति य तत्थगए, किं तु तज्जाय नोसुमणे ।।36।।

नो सरसि कहं छित्ता, परिसंभित्ता अणुट्ठियाइं कहे ।
संथार पायघट्टण, चिट्ठुच्च समासणे आवि ।।37।।

शब्दार्थ

पुरओ=आगे, **पक्ख**=पास में, **आसन्ने**=नजदीक में, **गंता**=चलना, **चिट्ठण**=खड़ा रहना, **निसीअणा**=बैठना, **आयमणे**=आचमन करना, **आलोअण**=आलोचना करना, **अपडिसुणणे**=नहीं सुनना, **पूव्वालवणे**=पहले बोलना, **आलोए**=पहले आलोचन, **तह**=तथा, **उवदंस**=उपदर्शन, **निमंतण**=निमंत्रण, **खद्धाययणे तहा**=खद्धदान तथा खद्धादन, **अपडिसुणणे**=अप्रतिश्रवण, **तत्थगए**=वहीं पर रहकर, **किं**=क्या, **तुं**=तुच्छवचन, **तज्जाय**=सामने बोलना, **नोसुमणे**=खराब मन, **नोसरसि**=याद नहीं है, **कहं छित्ता**=कथा छेद, **परिसंभिता**=पर्षदा भेद, **अणुट्ठियाइ कहे**=सभा के नहीं उठने तक कहना **संथार पायघट्टण**=संथारे को पाँव लगना, **चिट्टुच्च**=संथारे पर खड़ा रहना तथा ऊंचे आसन पर बैठना, **समासणे**=समान आसन पर बैठना, **आवि**=वह भी ।

भावार्थ एवं विवेचन

गुरुसम्बन्धी 33-आशातनाएँ

1,2,3. पुरओ :- बिना कारण गुरु के आगे चलना, खड़े रहना या बैठना=**3**

4, 5 ,6. पक्खासन्न :- बिना कारण गुरु के पीछे / नजदीक में चलना, खड़े रहना या बैठना=**3**

7,8,9. गंताचिट्ठण निसीयण :- बिना कारण गुरु के दायें / बायें चलना, खड़े रहना, बैठना = **3**

विनयभङ्ग, आगे चलने से गुरु को पीठ, पीछे नजदीक चलने से खांसी, छींक आदि के कारण थूंक आदि उछलने से आशातना, दायें-बायें चलने से गुरु की बराबरी । इसी तरह खड़े रहने व बैठने के भी दोष समझना ।

3. अपवाद :- मार्गदर्शनादिके तु कारणे न दोषः रास्ता दिखाने के लिए आगे चलने में कोई दोष नहीं है ।

10. आयमण :- स्थंडिल से लौटकर आचार्य से पहले हाथ-पाँव धोना ।

11. आलोयण :- स्थंडिलादि बहिर्भूमि से लौटकर गुरु से पहले गमन-आगमन विषयक आलोचना करना ।

12. अप्पडिसुणण :- रात में 'रत्नाधिक' पूछे कि कौन सो रहा है ? कौन जग रहा है ? तब जागृत होने पर भी जवाब न देना ।

13. पुव्वालवण :- गुरु के साथ बातचीत करने आये हुए व्यक्ति से गुरु से पूर्व शिष्य का बातचीत करना ।

14. आलोए :- भिक्षादि लाकर पहले अन्य के समक्ष आलोचना करके पश्चात् गुरु के समक्ष आलोचना करना ।

15. उवदंस :- गोचरी आदि पहले अन्य मुनि को बताकर पश्चात् गुरु को दिखाना ।

16. निमंतण :- गोचरी आदि लाकर गुरु को निमन्त्रण देने से पहले अन्य साधुओं को निमन्त्रण देना ।

17. खद्ध :- गोचरी लाने के बाद आचार्य, गुरु आदि के योग्य

अशनादि उनसे पूछे बिना ही अन्य साधुओं को रुचि-अनुसार प्रचुर मात्रा में बाँटना ।

प्रश्न :- आशातना की संग्राहक गाथा में `खद्ध' शब्द नहीं है तो सत्तरहवीं आशातना के रूप में इसकी व्याख्या कैसे की ?

उत्तर :- 18वाँ `खद्धाइयण' दोष है । सूत्र शैली की विचित्रता के कारण `खद्धाइयण' में से `खद्ध' शब्द अलग करके **17**वाँ `खद्ध' दोष बनाया जाता है । इस प्रकार `खद्ध' शब्द का पुनरावर्तन होता है। इसलिए विवरण गाथा में सूत्रकार ने स्वयं कहा है कि `यद्यपि' आशातना की संग्राहक गाथा में `खद्ध' शब्द अलग नहीं कहा गया है तथापि `खद्धाइयण' में से इसे अलग करके **17**वाँ दोष अलग से बताया गया है ।

18. खद्धाइयण :- इस आशातना का विवरण **दशाश्रुतस्कंध** के अनुसार बताया गया है-रत्नाधिक के साथ गोचरी करते हुए शिष्य का सुसंस्कृत वृन्ताक, ककड़ी, छौले आदि भाजीयुक्त शाक प्रचुरमात्रा में ले लेकर खाना । शुभ वर्ण, गन्ध रसादि से युक्त किसी प्रकार अचित्त किये हुए अनार, आम्र आदि फलों को उठा-उठाकर खाना । भव्य अभव्य, रूखे-सूखे, चिकने-चुपड़े आहार में से जो कुछ प्रिय लगे वह प्रचुरमात्रा में खाना । इस प्रकार रत्नाधिक के साथ बैठकर अच्छा-अच्छा इच्छानुसार खाना, आशा-तना का कारण है ।

अन्यमते :- भिक्षा में से आचार्य को थोड़ा देकर शेष स्निग्ध, मधुर, मनोज्ञ भोजन, शाक आदि स्वयं खा लेना `खद्धाइयण' दोष है ।

19. अपडिसुणण :- आचार्य की आवाज सुनकर भी प्रत्युत्तर न देना (यह आशातना दिन से सम्बन्धित है । पूर्व में जो `अप्रतिश्रवण' रूप आशातना कही वह रात्रि सम्बन्धी है)

20. खद्धन्ति :- रत्नाधिक के साथ कर्कश व तीखी आवाज में बोलना ।

21. तत्थगय :- गुरु व रत्नाधिक के बुलाने पर आसन पर बैठे-बैठे ही प्रत्युत्तर देना ।

22. किं :- आचार्य के बुलाने पर क्या है ? क्या कहते हो ? ऐसा

बोलना । वस्तुतः आचार्य द्वारा आवाज देने पर, शिष्य को तुरन्त वहाँ जाकर `मत्थएण वंदामि' कहकर गुरु के सम्मुख खड़ा रहना चाहिए ।

23. तम्हं :- रत्नाधिक को `तू' ऐसे एकवचन से सम्बोधित करना । कहना कि मुझे उपदेश देने वाले तुम कौन होते हो ? वस्तुतः गुरु को `भगवान ! श्रीपूज्य !' आदि शब्दों से सम्बोधित करना चाहिए ।

24. तज्जाय :- गुरु जिन शब्दों में कहे, पुनः उन्हीं शब्दों में गुरु के सामने जवाब देना । आचार्य कहे-`तू बीमार की सेवा क्यों नहीं करता ?' शिष्य जवाब दे, `तुम क्यों नहीं करते ?' आचार्य कहे-**`तू प्रमादी है'** शिष्य कहे **`तुम आलसी हो ।'**

25. नोसुमण :- वस्तुतः गुरु के प्रवचनादि की प्रशंसा करनी चाहिए कि `अहो ! आपने बहुत अच्छा कहा ।' किन्तु शिष्य प्रशंसा न करके गुरु व्याख्यान देते हो तब मन बिगाड़े, मुँह बिगाड़े ।

26. नोसरसि :- गुरु व्याख्यान देते हो तब शिष्य बीच में कहे- `आपको याद नहीं है, इसका अर्थ इस तरह नहीं है ।'

27. कहंमणछित्ता :- चालू व्याख्यान के बीच **`अब मैं कथा कहूँगा'** ऐसा कहकर गुरु का व्याख्यान भङ्ग करे ।

28. परिसंभित्ता :- पर्षदा जब प्रवचन में तन्मय हो रही हो तब ऐसा कहकर कि **`प्रवचन कितना लम्बा करोगे ?' `अब गोचरी का समय हो गया है, सूत्र-पोरसी का समय हो गया है'** इस तरह कहकर प्रवचन सभा भङ्ग करना ।

29. अणुट्ठियाए कह :- गुरु के प्रवचन के बीच अपनी विद्वत्ता बताने हेतु शिष्य द्वारा सभा को यह कहना कि **`देखो, आप अच्छी तरह से नहीं समझे होंगे, मैं आपको अच्छी तरह विस्तार से समझाता हूँ ।'**

30. संथार पायघट्टण :- गुरु के संथारे, शय्या आदि को पैर लगने पर या अनुमति के बिना छूने पर क्षमायाचना नहीं करना । शय्या=शरीर प्रमाण बिछौना, संथारा=ढाई हाथ प्रमाण ।

31.चिट्ठ :- गुरु के संथारे पर सोना, बैठना या करवट बदलना ।

32. उच्चासण :- गुरु के संमुख ऊँचे आसन पर बैठना ।

33. समासण :- गुरु के सामने समान आसन पर बैठना ।

बावीसवाँ द्वार

लघु प्रतिक्रमण

इरिया कुसुमिणुसग्गो चिइवंदण पुत्ति वंदणा-लोयं ।
वंदण खामण वंदण, संवर चउछोभ दुसज्झाओ ।।38।।

शब्दार्थ

इरिया=इरियावहिय, **कुसुमिण**=कुस्वप्न, **उसग्गो**=कायोत्सर्ग, **चिइवंदण**=चैत्यवंदन, **पुत्ति**=मुहपत्ति, **वंदणा**=वंदन, **आलोयं**=आलोचना, **वंदण**=वंदन, **खामण**=क्षमापना, **संवर**=संवर, **चउ**=चार, **छोभ**=छोभवंदन, **दुसज्झाओ**=दो स्वाध्याय ।

भावार्थ

इरियावहिय, कुसुमिण का कायोत्सर्ग, चैत्यवंदन, मुहपत्ति, दो वांदणा, आलोचन, वंदन, खामणा, वंदन, पच्चक्खाण, चार छोभवंदन, दो आदेश और दो स्वाध्याय आदेश यह संक्षेप में प्रातःकालीन गुरुवंदन विधि है ।

विवेचन

प्रातःकाल में प्रतिक्रमण करने का नियम होने पर भी जो श्रावक प्रतिक्रमण की सामग्री के अभाव में या शक्ति के अभाव में प्रतिक्रमण न कर सकता हो तो उसे कम-से-कम इस गाथा में निर्दिष्ट बृहद् गुरुवंदन अर्थात् लघु प्रतिक्रमण अवश्य करना चाहिए ।

प्रातःकाल में बृहद् गुरुवंदन अर्थात् लघु प्रतिक्रमण की विधि इस प्रकार है-

1) इरियावहिय :- सर्व प्रथम गुरु के पास आकर इरियावहिय का प्रतिक्रमण कर अंत में लोगस्स कहना चाहिए ।

2. कुसुमिण का कायोत्सर्ग :- स्वप्न में स्त्रीभोग आदि का रागजन्य कुस्वप्न आया हो या द्वेषजन्य दुःस्वप्न आया हो तो उसके निमित्त उस दोष के निवारण के लिए कुसुमिण-दुसमिण का कायोत्सर्ग करना चाहिए । कुस्वप्न आया हो तो सागरवर गंभीरा तक एवं दुःस्वप्न आया हो तो चंदेसु निम्मलयरा तक 4 लोगस्स का कायोत्सर्ग करना चाहिए ।

3. चैत्यवंदन :- उसके बाद चैत्यवंदन का आदेश मांगकर `जग चिंतामणि से जय वीयराय' तक चैत्यवंदन करना चाहिए ।

4. मुहपत्ति :- उसके बाद खमासमण देकर मुहपत्ति का पडिलेहन करना चाहिए ।

5. वंदन :- उसके बाद द्वादशावर्त वंदन करना चाहिए ।

6. आलोचना :- उसके बाद आदेश मांगकर राइय आलोयणा करनी चाहिए (``इच्छाकारेण संदिसह भगवन् राइयं आलोउं ? इच्छं आलोएमि जो मे राइओ'' । इत्यादि कहना चाहिए । यही लघु प्रतिक्रमण है।)

7. वंदन :- उसके बाद पुनः दो बार द्वादशावर्तवंदन करना चाहिए ।

8. खामणा :- उसके बाद राइय अब्भुट्ठिओ खामणा चाहिए ।

9. वंदन :- उसके बाद द्वादशावर्त वंदन करना चाहिए ।

10. संवर :- उसके बाद यथाशक्ति पच्चक्खाण करना चाहिए ।

11. चार छोभवंदन :- उसके बाद चार खमासमण पूर्वक `भग-वानहं' इत्यादि चार छोभवंदन करना चाहिए ।

12. दो स्वाध्याय आदेश :- उसके बाद दो खमासमण देकर सज्झाय करने के दो आदेश मांगने चाहिए और गुरु के पास स्वाध्याय करना चाहिए ।

शाम को बृहद् गुरुवंदन या लघु प्रतिक्रमण

इरिया चिइ वंदण पुत्ति, वंदण चरिम वंदणा लोयं ।
वंदण खामण चउ छोभ, दिवसुस्सग्गो दुसज्झाओ ।।39।।

शब्दार्थ

इरिया=इरियावहिय, **चिइवंदण**=चैत्यवंदन, **पुत्ति**=मुहपत्ति, **वंदण**=वंदन, **आलोयं**=आलोचना, **वंदण**=वांदना, **खामण**=खामणा, **चउछोभ**=चार छोभ वंदन, **दिवसुस्सग्गो**=देवसिय पायच्छित्त कायोत्सर्ग, **दुसज्झाओ**=दो आदेशपूर्वक सज्झाय ।

भावार्थ

इरियावहिय, चैत्यवंदन, मुहपत्ति, दो वांदणा, दिवस चरिम का

पच्चक्खाण, दो वांदणा, आलोचना, दो वांदणा, खामणा, चार छोभ वंदन, देवसिय पायच्छित्त का कायोत्सर्ग और दो आदेशपूर्वक सज्झाय, यह शाम के संक्षिप्त गुरुवंदन की विधि है ।

विवेचन

शाम के समय प्रतिक्रमण करने के नियमवाला श्रावक यदि अनुकूल संयोगों के अभाव में अथवा शक्ति के अभाव में प्रतिक्रमण न कर सके तो उपर्युक्त गाथा में निर्दिष्ट विधि के अनुसार उसे बृहद् गुरुवंदन अर्थात् संध्या का लघु प्रतिक्रमण अवश्य करना चाहिए ।

1. इरियावहिय :- सर्व प्रथम इरियावहिय करके अंत में लोगस्स बोलना चाहिए ।

2. चैत्यवंदन :- उसके बाद खमासमणा देकर आदेश मांगकर चैत्यवंदन करना चाहिए ।

3. मुहपत्ति :- उसके बाद खमासमणा देकर आदेश मांगकर मुहपत्ति का पडिलेहन करना चाहिए ।

4. वंदन :- उसके बाद दो बार द्वादशावर्त वंदन करना चाहिए ।

5. दिवस चरिम :- उसके बाद दिवसचरिम का पच्चक्खाण करना चाहिए ।

6. वंदन :- उसके बाद द्वादशावर्त वंदन करना चाहिए ।

7. आलोचना :- उसके बाद आदेश मांगकर दिवस संबंधी अतिचारों की आलोचना (इच्छं, आलोएमि जो मे देवसिओ अइआरो' सूत्र बोलना चाहिए) यह सूत्र `लघु प्रतिक्रमण' कहलाता है ।

8. वंदन :- उसके बाद द्वादशावर्त वंदन करना चाहिए ।

9. खामणा :- उसके बाद आदेश मांगकर अब्भुट्ठिओ से क्षमापना करे ।

10. चार छोभवंदन :- उसके बाद चार खमासमण देकर भगवानहं आदि छोभ वंदन करे ।

11. दैवसिक प्रायश्चित्त का कायोत्सर्ग :- उसके बाद आदेश मांगकर चार लोगस्स का कायोत्सर्ग करे ।

12. दो स्वाध्याय का आदेश :- उसके बाद दो खमासमण देकर दो आदेश मांगकर स्वाध्याय करे ।

एयं किइकम्मविहिं, जुंजुंता चरणकरण माउत्ता ।
साहू खवंति कम्मं, अणेगभव संचिअमणंतं ॥40॥

शब्दार्थ

एयं=इस प्रकार, **किइकम्मविहिं**=वंदन की विधि, **जुंजुंता**=करनेवाला, **चरण करणमाउत्ता**=चरण करण से युक्त, **साहू**=साधु, **खवंति**=क्षय करता है, **कम्मं**=कर्मों को, **अणेग**=अनेक, **भव संचिअं**=भवों से संचित, **अणंतं**=अनंत ।

भावार्थ

इस प्रकार विधिपूर्वक गुरु वंदन करनेवाला, चरण सित्तरी और करणसित्तरी के उपयोगवाला साधु अनेक भवों में संचित कर्मों का क्षय कर देता है ।

विवेचन

चरण करण में उपयोगवाला साधु, गुरुवंदन की क्रिया द्वारा अनेक भवों में संचित किए हुए पाप कर्मों का क्षय कर देता है ।

धर्मसंग्रह ग्रंथ में कहा है-

गौतम स्वामीजी ने महावीर प्रभु को पूछा, ``हे प्रभो ! गुरुवंदन करने से क्या फायदा होता है ?''

इसके जवाब में महावीर प्रभु ने कहा, ``गुरुवंदन करने से खूब फायदा होता है । आठ प्रकार के कर्मों के बंधन यदि गाढ़ हों तो वे शिथिल हो जाते हैं ।''

दीर्घकालीन स्थितिवाले कर्म हों तो वे अल्पकालीन स्थितिवाले हो जाते हैं । वे कर्मप्रकृतियाँ तीव्र रसवाली हों तो मंद रसवाली हो जाती हैं ।

वे कर्म प्रकृतियाँ अनेक प्रदेशों के समूह वाली हों तो अल्प प्रदेश के समूहवाली हो जाती हैं ।

इस प्रकार गुरुवंदन से पाप कर्मों का नाश हो जाने से आत्मा पाप के भार से हल्की हो जाती है ।

आत्मा पर लगे हुए पाप कर्मों का भार कम होगा तो स्वाभाविक रूप से भवभ्रमण से उत्पन्न होनेवाले दुःख भी कम हो जाएंगे ।

अप्पमइ भव्वबोहत्थ, भासियं विवरीयं च जमिह मए ।
तं सोहंतु गीयत्था, अणभिनिवेसी अमच्छरिणो ॥41॥

शब्दार्थ

अप्पमइ=अल्प मतिवाला, **भव्व**=भव्य जीवों को, **बोहत्थ**=बोध के लिए, **भासियं**=कहा, **विवरीयं**=विपरीत, **च**=और, **जंमिह**=जो यहाँ, **मए**=मेरे द्वारा, **तं**=उसे, **सोहंतु**=शुद्ध करे, **गीयत्था**=गीतार्थ पुरुष, **अणभिनिवेसी**=आग्रह रहित, **अमच्छरिणो**=मत्सर रहित ।

भावार्थ

अल्प बुद्धिवाले भव्यजीवों के हित के लिए मैंने जो कुछ कहा है । इसमें कोई विपरीत कहा हो तो कदाग्रह व ईर्ष्या से रहित ऐसे गीतार्थ पुरुष उसे सुधार लें ।

विवेचन

ग्रंथकार महर्षि श्रीमद् **देवेन्द्रसूरिजी म.** ग्रंथ की समाप्ति करते हुए कहते हैं कि मैंने अपने अल्प क्षयोपशम के अनुसार इस ग्रंथ की रचना की है, परन्तु मतिमंदता के कारण कदाचित् कहीं कुछ भी जिनाज्ञा से विपरीत वचन कह दिया हो तो अभिनिवेश और ईर्ष्या भाव से रहित ऐसे गीतार्थ पुरुष इस ग्रंथ में रही भूलों का अवश्य परिमार्जन करें ।

जो गीतार्थ पुरुष होते हैं, वे ही मोक्षमार्ग के सच्चे ज्ञाता होते हैं अतः कहीं भी भूलें रह गई हों तो वे उनका संशोधन कर सकते हैं ।

पच्चक्खाण भाष्य (गाथा छंद)

दस पच्चक्खाण चउविहि, आहार दुवीसगार अदुरुत्ता ।
दस विगइ तीस विगइगय, दुह भंगा छ सुद्धि फलं ।।1।।
अणागय-मइक्कंतं, कोडी सहियं नियंटि अणगारं ।
सागार-निरवसेसं, परिमाणकडं सके अद्धा ।।2।।
नवकार सहिय पोरिसि, पुरिमड्ढ-गासणेगठाणे य ।
आयंबिल अभत्तट्ठे, चरिमे अ अभिग्गहे विगई ।।3।।
उग्गए सूरे अ नमो, पोरिसी पच्चक्ख उग्गए सूरे ।
सूरे उग्गए पुरिमं, अभत्तट्ठं पच्चक्खाइ त्ति ।।4।।
भणइ गुरु सीसो पुण, पच्चक्खामित्ति एव वोसिरइ ।
उवओगित्थ पमाणं, न पमाणं वंजणच्छलणा ।।5।।
पढमे ठाणे तेरस, बीए तिन्निउ तिगाइ तइयंमि ।
पाणस्स चउत्थंमि, देसवगासाइ पंचमए ।।6।।
नमु पोरिसि सड्ढा, पुरिमवड्ढ अंगुट्ठमाइ अड तेर ।
निवि विगइं बिल तिय तिय, दुइगासण एगठाणाइं ।।7।।
पढमंमि चउत्थाइ, तेरस बीयंमि तइय पाणस्स ।
देसवगासं तुरीए, चरिमे जह संभवं नेयं ।।8।।
तह मज्झपच्चक्खाणेसु, न पिहु सुरुग्गयाइ वोसिरइ ।
करणविहि उ न भन्नइ, जहावसीआइ बियछंदे ।।9।।
तह तिविह पच्चक्खाणे, भन्नंति य पाणगस्स आगारा ।
दुविहाहारे अच्चित्त-भोइणो तह य फासुजले ।।10।।
इत्तुच्चिय खवणंबिल-निविआइसु फासुयं चियजलं तु ।
सड्ढा वि पियंति तहा, पच्चक्खंति य तिहाहारं ।।11।।
चउहाहारं तु नमो, रत्तिं पि मुणीण सेस तिह चउहा ।
निसि पोरिसि पुरिमेगा, सणाइ सड्ढाण दुति चउहा ।।12।।

खुहपसम खमेगागी, आहारी व एइ देइ वा सायं ।
खुहिओ व खिवइकुट्ठे, जं पंकुवमं तमाहारो ।।13।।
असणे मुग्गोअण सत्तु, मंड पय खज्ज रब्बकंदाई ।
पाणे कंजिय जव कयर-कक्कडोदग सुराइ जलं ।।14।।
खाइमि भत्तोस फलाइ, साइमे सुंठि जीर अजमाई ।
महु गुड तंबोलाई, अणहारे मोअ-निंबाई ।।15।।
दो नवकारि छ पोरिसि, सग पुरिमड्ढे इगासणे अट्ठ ।
सत्तेगठाणि अंबिलि, अट्ठ पण चउत्थि छप्पाणे ।।16।।
चउ चरिमे चउभिग्गहि, पण पावरणे नवट्ठ निव्वीए ।
आगारुक्खित्त विवेग-मुत्तु दवविगइ नियमिट्ठ ।।17।।
अन्न सह दु नमुक्कारे, अन्न सह प्पच्छ दिस य साहु सव्व ।
पोरिसि छ सड्ढपोरिसि, पुरिमड्ढे सत्त समहत्तरा ।।18।।
अन्न सहस्सागारि अ, आउंटण गुरु अ पारि मह सव्व ।
एग बियासणि अट्ठ उ, सग इगठाणे अउंट विणा ।।19।।
अन्नस्सह लेवा गिह, उक्खित्त पडुच्च-पारि-मह-सव्व ।
विगई निव्विगए नव, पडुच्चविणु अंबिले अट्ठ ।।20।।
अन्न सह पारि मह सव्व, पंच खमणे छ पाणिलेवाई ।
चउ चरिमंगुट्ठाइ-भिग्गहि अन्न सह मह सव्व ।।21।।
दुद्ध महु मज्ज तिल्लं, चउरो दव विगइ चउर पिंडदवा ।
घय गुल दहियं पिसियं, मक्खण पक्कन्न दो पिंडा ।।22।।
पोरिसि-सड्ढ-अवड्ढं, दुभत्त निव्विगइ पोरिसाइ समा ।
अंगुठ-मुट्ठि-गंठी-सचित्त-दव्वाइ भिग्गहियं ।।23।।
विस्सरणमणाभोगो, सहसागारो सयं मुहपवेसो ।
पच्छन्नकाल मेहाइ, दिसिविवज्जासु दिसिमोहो ।।24।।
साहुवयण उग्घाडा, पोरिसि तणुसुत्थया समाहित्ति ।
संघाइकज्ज महत्तर, गिहत्थबंदाइ सागारी ।।25।।

आउंटणमंगाणं, गुरु पाहुण साहु गुरु अभुट्ठाणं ।
परिठावण विहिगहिए, जइण पावरणि कडिपट्टो ।।26।।
खरडिय लूहिय डोवाइ, लेव संसट्ठ डुच्च मंडाइ ।
उक्खित्त पिंड विगईण, मक्खियं अंगुलीहिं मणा ।।27।।
लेवाडं आयामाइ, इयर सोवीरमच्छमुसिणजलं ।
धोयण बहुल ससित्थं, उस्सेइम इयर सित्थविणा ।।28।।
पण चउ चउ चउ दु दुविह, छ भक्ख दुद्धाइ विगइ इगवीसं ।
ति दु ति चउविह अभक्खा, चउ महुमाइ विगइ बार ।।29।।
खीय घय दहिय तिल्लं, गुल पक्वन्नं छ भक्ख विगईओ ।
गो महिसि उट्टि अय, एलगाण पण दुद्ध अह चउरो ।।30।।
घय दहिया उट्ठि विणा, तिल सरिसव अयसि लट्ट तिल्लचऊ ।
दव गुड पिंडगुडा दो, पक्वन्नं तिल्ल घयतलियं ।।31।।
पयसाडि खीर पेया, वलेहि दुद्धट्टि दुद्धविगइ गया ।
दक्ख बहु अप्पतंदुल, तच्चुनंबिलसहियदुद्धे ।।32।।
निब्भंजण वीसंदण, पक्कोसहितरिय किट्टि पक्कघयं ।
दहिए करंब सिहरिणि, सलवण दहि घोल-घोलवडा ।।33।।
तिलकुट्टी निब्भंजण, पक्क तिल पक्कुसहितरिय तिल्लमली ।
सक्कर गुलवाणय पाय, खंड अद्धकढि इक्खुरसो ।।34।।
पूरिय तव पूआ बीअ, पूअ तन्नेह तुरिय घाणाई ।
गुल हाणी जल लप्पसि, अ पंचमो पुत्तिकयपूओ ।।35।।
दुद्ध दही चउरंगुल, दवगुल घय तिल्ल एग भत्तुवरिं ।
पिंडगुड मक्खणाणं, अद्दामलयं च संसट्ठं ।।36।।
दव्वहया विगई विगइगय, पुणो तेण तं हयं दव्वं ।
उद्धरिए तत्तंमि य, उक्किट्ठदव्वं इमं चन्ने ।।37।।
तिलसक्कुलि वरसोलाइ रायणं बाइ दक्खवाणाई ।
डोली तिल्लाइ इय, सरसुत्तमदव्व लेवकडा ।।38।।

विगइ गया संसट्ठा, उत्तमदव्वा य निव्विगइयंमि ।
कारणजायं मुत्तुं, कप्पंति न भुत्तुं जं वुत्तं ।।39।।
विगइं विगईभीओ, विगइगयं जो उ भुंजए साहू ।
विगई विगइसहावा, विगई विगइं बला नेइ ।।40।।
कुत्तिय मच्छिय भामर, महुं तिहा कट्ठ पिट्ठ मज्ज दुहा ।
जल-थल-खग मंस तिहा, घयव्व मक्खण चउ अभक्खा ।।41।।
मण वयण काय-मणवय-मणतणु वयतणु तिजोगी सग सत्त ।
कर कारणुमइ दुति जुइ, तिकाली सीयाल भंग सयं ।।42।।
एयं च उत्त काले, सयं च मण वयण तणूहिं पालणियं ।
जाणग जाणग पासत्ति, भंग चउगे तिसु अणुन्ना ।।43।।
फासिय पालिय सोहिय, तीरिय किट्टिय आराहिय छ सुद्धं ।
पच्चक्खाणं फासिय, विहिणोचियकालि जं पत्तं ।।44।।
पालिय पुणपुण सरियं, सोहिय गुरुदत्त सेस भोयणओ ।
तीरिय समहिय काला, किट्टिय भोयण समय सरणा ।।45।।
इय पडियरियं आराहियं तु अहवा छ सुद्धि सद्दहणा ।
जाणण-विणयणुभासण अणुपालण भावसुद्धि त्ति ।।46।।
पच्चक्खाणस्स फलं, इह परलोए य होइ दुविहं तु ।
इह लोए धम्मिलाइ, दामन्नगमाइ परलोए ।।47।।
पच्चक्खाणमिणं सेविऊण भावेण जिणवरुद्दिट्ठं ।
पत्ता अणंत जीवा, सासयसुक्खं अणाबाहं ।।48।।

3

पच्चक्खाण भाष्य

दस पच्चक्खाण चउविहि, आहार दुवीसगार अदुरुत्ता ।
दस विगइ तीस विगइंगय, दुह भंगा छ सुद्धि फलं ।।1।।

शब्दार्थ

दस=दश, **पच्चक्खाण**=प्रत्याख्यान, **चउविहि**=चार प्रकार की विधि, **आहार**=भोजन, **दुवीसगार**=बाईस आगार, **अदुरुत्ता**=दूसरी बार नहीं कहे गए, **दस विगइ**=दश विकृति, **तीस**=तीस, **विगइगय**=विकृतिगत, **दुह भंगा**=दो प्रकार के भंग, **छ**=छह, **सुद्धि फलं**=शुद्धि का फल ।

भावार्थ

10 प्रकार का प्रत्याख्यान, चार प्रकार की उच्चार विधि, चार प्रकार का आहार, दूसरी बार नहीं बोले गए ऐसे 22 आगार, 10 विगई, 30 नीवियाते, दो प्रकार के भंग, छह प्रकार की शुद्धि और दो प्रकार के फल इस प्रकार कुल मूल नौ द्वार के 90 उत्तर भेद होते हैं ।

विवेचन

आत्मा का मूलभूत स्वभाव अशरीरीपना है। जब तक आत्मा का कर्म के साथ संयोग है, तब तक संसार में आत्मा को जन्म धारण करना पड़ता है। संसारी आत्मा को अपने देह को टिकाने के लिए आहार लेना ही पड़ता है।

आहार लेना, यह आत्मा का स्वभाव नहीं होने पर भी संसार में आत्मा को आहार लेना पड़ता है, उस आहार की जंजाल में से मुक्ति पाने के लिए तारक तीर्थंकर परमात्मा ने आहार के आंशिक त्याग रूप अनेक प्रकार के पच्चक्खाण बतलाए हैं। इन पच्चक्खाणों का सेवन करने से आत्मा धीरे-धीरे अपने मूलभूत स्वभाव को प्राप्त कर सकती है ।

पच्चक्खाण का स्वरूप क्या है ? उसके कितने प्रकार हैं ? पच्चक्खाण की आराधना कैसे और किस प्रकार होती है ? इत्यादि अनेकविध प्रश्नों का जवाब इस **'पच्चक्खाण भाष्य'** से प्राप्त होता है ।

इस गाथा में पच्चक्खाण के मूलभूत **9** द्वारों का नामनिर्देश किया है ।

1. दश पच्चक्खाण द्वार :- इस द्वार में पच्चक्खाण के अनागत आदि 10 मूलभेद और 10 वें अद्धा पच्चक्खाण के 10 प्रतिभेदों का वर्णन किया जाएगा ।

2. चार विधि द्वार :- इस द्वार में पच्चक्खाण के पाठ उच्चार के चार प्रकार बताए जाएंगे ।

3. चार आहार द्वार :- इस द्वार में अशन, पान, खादिम और स्वादिम रूप आहार के चार प्रकारों का वर्णन किया गया है ।

4. बाईस आगार द्वार :- विविध पच्चक्खाणों में कुल बाईस प्रकार के आगार आते हैं । उन आगारों के स्वरूप का निर्देश इस द्वार में किया गया है ।

5. दश विगई द्वार :- इस द्वार में दूध, दही आदि छह भक्ष्य विगई और मांस, मद्य आदि चार अभक्ष्य विगई का निर्देश किया गया है ।

6. तीस नीवियाता द्वार :- उपधान तथा साधु-साध्वीजी के योगोद्वहन में कच्ची भक्ष्य विगई का त्याग होता है, परंतु उन छह विगई के नीवियाते द्रव्यों के उपयोग की छूट होती है । छह विगई के कुल 30 नीवियातों का वर्णन इस द्वार में किया गया है ।

7. दो भंग द्वार :- पच्चक्खाण के मूलगुण और उत्तर गुण पच्चक्खाण इस प्रकार दो भेद (भंग) किए हैं, उनका वर्णन इस द्वार में किया गया है ।

8. छह शुद्धि द्वार :- इस द्वार में पच्चक्खाण की शुद्धि के छह द्वारों का वर्णन किया गया है ।

9. फल द्वार :- इस द्वार में इस लोक और परलोक में होनेवाले पच्चक्खाण के दो प्रकार के फलों का वर्णन किया गया है ।

इस प्रकार इन 9 मूल द्वारों के 10 + 4 + 4 + 22 + 10 + 30 + 2 + 6 + 2 = 90 उत्तर भेदों का वर्णन किया गया है ।

1. पच्चक्खाण द्वार के 10 भेद

अणागय-मइक्कंतं कोडी सहियं नियंटि अणगारं ।
सागार-निरवसेसं, परिमाणकडं सके अद्धा ।।2।।

शब्दार्थ

अणागयं=अनागत (भविष्य संबंधी), **अइक्कंतं**=अतिक्रांत (भूतकाल संबंधी), **कोडी सहियं**=कोटि सहित, **नियंटि**=नियंत्रित, **अणगारं**=आगार रहित, **सागार**=आगार सहित, **परिमाणकडं**=परिमाणकृत, **सके**=संकेत, **अद्धा**=काल ।

भावार्थ

अनागत पच्चक्खाण, अतिक्रांत पच्चक्खाण, कोटि सहित पच्चक्खाण, नियंत्रित पच्चक्खाण, निरपवाद पच्चक्खाण, सागार पच्चक्खाण, निरव-शेष पच्चक्खाण, परिमाण कृत पच्चक्खाण, संकेत पच्चक्खाण और काल पच्चक्खाण इस प्रकार पच्चक्खाण के कुल 10 भेद होते हैं ।

विवेचन

अनागत आदि 10 प्रकार के पच्चक्खाण मुख्यतया सर्वविरतिधर साधु-साध्वी भगवंतों को लागू पड़ते हैं परंतु उनमें से कुछ पच्चक्खाण गृहस्थों को भी लागू पड़ते हैं ।

1) अनागत पच्चक्खाण :- अनागत अर्थात् भविष्य काल । भविष्य में जो तप आदि करने का हो वह तप कारणवश पहले कर लेना, उसे अनागत पच्चक्खाण कहते हैं । जैसे पर्युषण पर्व में अट्ठम करने का विधान है परंतु पर्युषण में व्याख्यान आदि की जवाबदारी होने से वह तप उस समय शक्य न हो तो पर्युषण के पहले ही वह अट्ठम कर लेना, यह **अनागत पच्चक्खाण** कहलाता है ।

2. अतिक्रान्त पच्चक्खाण :- अतिक्रांत अर्थात् भूतकाल का पच्चक्खाण । पर्युषण में अट्ठम करने की अनुकूलता न हो तो पर्युषण में करने योग्य अट्ठम तप पर्युषण के बाद भी किया जाय, उसे **अतिक्रांत पच्चक्खाण** कहते हैं ।

3. कोटि सहित पच्चक्खाण :- दो तप की संधि वाले पच्चक्खाण को कोटि सहित पच्चक्खाण कहते हैं । जैसे-पहले दिन उपवास किया हो और दूसरे दिन भी उपवास हो तो पहले दिन का अंत भाग और दूसरे दिन के प्रारंभ के भाग की संधि होने से यह पच्चक्खाण कोटि सहित कहलाता है ।

यह पच्चक्खाण दो प्रकार से होता है, सम कोटिवाला और विषम कोटिवाला ।

पहले दिन उपवास हो और दूसरे दिन भी उपवास हो अथवा पहले दिन आयंबिल हो और दूसरे दिन भी आयंबिल हो तो यह समकोटिवाला पच्चक्खाण कहलाता है । पहले दिन उपवास हो और दूसरे दिन आयंबिल या एकासना हो तो यह विषम कोटि वाला पच्चक्खाण कहलाता है ।

4. नियंत्रित पच्चक्खाण :- नियंत्रित अर्थात् निश्चयपूर्वक पच्चक्खाण करना । कैसी भी विकट परिस्थिति आ जाय तो भी अमुक समय में अमुक तप अवश्य करूंगा, इसे नियंत्रित पच्चक्खाण कहते हैं ।

यह पच्चक्खाण जिनकल्पी और चौदह पूर्वधर मुनियों को तथा प्रथम संघयणवाले स्थविर आदि मुनियों को होता है परंतु जिनकल्प का विच्छेद होने से इस पच्चक्खाण का भी विच्छेद हो गया है ।

5. अनागार पच्चक्खाण :- अपवाद रहित पच्चक्खाण को अनागार पच्चक्खाण कहते हैं । अनाभोग और सहसा आगार को छोड़ अन्य सभी प्रकार के आगारों से रहित पच्चक्खाण को अनागार पच्चक्खाण कहते हैं । अनाभोग और सहसा आगार ये बुद्धिपूर्वक नहीं होते हैं, परंतु अनायास हो जाते हैं, अत: इनको छोड़ अन्य सभी आगारों से रहित पच्चक्खाण अनागार पच्चक्खाण कहलाता है ।

यह पच्चक्खाण प्रथम संघयणवाले मुनि प्राणांत कष्ट के समय अथवा भिक्षा के सर्वथा अभाववाले प्रसंग में करते हैं । वर्तमानकाल में प्रथम संघयण का अभाव होने से यह पच्चक्खाण नहीं किया जाता है ।

6. सागार पच्चक्खाण :- यथायोग्य 22 प्रकार के अपवादों से युक्त पच्चक्खाण को सागार पच्चक्खाण कहते हैं ।

7. निरवशेष पच्चक्खाण :- चारों प्रकार के आहार के सर्वथा त्याग को निरवशेष पच्चक्खाण कहते हैं । यह पच्चक्खाण अंत समय में संलेखना करते समय किया जाता है ।

8. परिमाणकृत पच्चक्खाण :- इस पच्चक्खाण में दत्ति, कवल, घर व द्रव्यों का प्रमाण कर शेष भोजन का त्याग करना, उसे परिमाणकृत पच्चक्खाण कहते हैं ।

दत्ति : हाथ अथवा बर्तन द्वारा जितना अन्न या पानी एक ही धारा से साधु भगवंत के पात्र में दिया जाता है, उसे एक दत्ति कहते हैं । इस प्रकार 1-2-3 दत्ति का प्रमाण निश्चित करना, उसे दत्ति प्रमाण कहते हैं ।

2. कवल प्रमाण :- मुख में सुखपूर्वक प्रवेश हो, ऐसे कवल का प्रमाण निश्चित करना । पुरुष के लिए 32 कवल व स्त्री के लिए 28 कवल का प्रमाण बतलाया है, उनमें कुछ कम कर प्रमाण निश्चित करना ।

3. गृह प्रमाण :- अमुक संख्या प्रमाण घरों में से आहार लेना, उसे गृह प्रमाण कहते हैं ।

4. द्रव्य प्रमाण :- खीर, मूंग आदि अमुक द्रव्य को ही ग्रहण करना, द्रव्य प्रमाण कहलाता है ।

9. संकेत पच्चक्खाण :- केत अर्थात् घर सहित गृहस्थों के पच्चक्खाण को संकेत पच्चक्खाण कहते हैं अथवा केत अर्थात् चिह्न, चिह्न सहित पच्चक्खाण को संकेत पच्चक्खाण कहते हैं ।

यह पच्चक्खाण साधु और श्रावक दोनों को हो सकता है । आठ प्रकार के चिह्न के भेद से यह पच्चक्खाण 8 प्रकार का होता है ।

किसी गृहस्थ ने पोरिसी का पच्चक्खाण किया हो परंतु पच्चक्खाण का समय पूरा होने पर भी भोजन तैयार नहीं हुआ हो तो वह उतने समय के लिए भी पच्चक्खाण बिना कैसे रहे ? इसलिए वह अंगूठे आदि आठ प्रकार के चिह्न में से किसी भी चिह्न की धारणा कर पच्चक्खाण करता है ।

1) अंगुठसहियं :- 'जब तक मुट्ठी में अंगूठा डालकर अलग न करूँ, तब तक मुझे आहार का त्याग है' इस प्रकार की धारणा कर मुट्ठी में से अंगूठा अलग करने पर ही जो मुँह में कुछ भी डाले, इसे अंगुठसहियं संकेत पच्चक्खाण कहते हैं ।

2) मुट्ठिसहियं :- मुट्ठी करके जब तक पच्चक्खाण न पारूँ, तब तक चार आहार के त्याग को मुट्ठिसहियं संकेत पच्चक्खाण कहते हैं ।

3) गंठि सहियं :- वस्त्र अथवा डोरी में गाँठ बाँधकर उसे अलग न करे, तब तक आहार के त्याग को **गंठि सहियं** संकेत पच्चक्खाण कहते हैं ।

4) घर सहियं :- जब तक घर में प्रवेश न करूँ तब तक चार प्रकार के आहार के त्याग को घरसहियं संकेत पच्चक्खाण कहते हैं ।

5) स्वेद सहियं :- जब तक पसीने की बूंदें सूखे नहीं, तब तक चार प्रकार के आहार के त्याग को स्वेदसहियं संकेत पच्चक्खाण कहते हैं ।

6) उच्छ्वास सहियं :- जब तक अमुक श्वासोच्छ्वास न हो जाय, तब तक चार प्रकार के आहार के त्याग को उच्छ्वास सहियं संकेत पच्चक्खाण कहते हैं ।

7) स्तबिकु सहियं :- जब तक खाट-पलंग आदि पर लगे जलबिंदु सूख न जाय, तब तक चार प्रकार के आहार के त्याग को स्तबिकुसहियं संकेत पच्चक्खाण कहते हैं ।

8) दीपक सहियं :- जब तक यह दीपक जलता रहेगा, तब तक मैं चार प्रकार के आहार का त्याग करता हूँ, इस प्रकार के पच्चक्खाण को **दीपक सहियं** संकेत पच्चक्खाण कहते हैं ।

ये संकेत पच्चक्खाण एक या तीन नवकार गिनकर पार सकते हैं । उसके बाद भोजन करके पुनः ये संकेत पच्चक्खाण ले सकते हैं । इस प्रकार बार-बार संकेत पच्चक्खाण करने से भोजन सिवाय का शेषकाल विरति में व्यतीत होने से महान् लाभ होता है ।

प्रतिदिन एकासना करने वाले को इस संकेत पच्चक्खाण से महीने में 29 उपवास और बियासना करनेवाले को महीने में 28 उपवास का लाभ मिलता है ।

10 अद्धा पच्चक्खाण :- अद्धा अर्थात् काल । यह काल मुहूर्त, प्रहर, दो प्रहर, पक्ष, मास आदि अनेक प्रकार का समझना चाहिए ।

नवकारसी, पोरिसी, सार्द्ध पोरिसी, पुरिमड्ढ, अवड्ढ, एकासना, उपवास आदि के पच्चक्खाण को अद्धा पच्चक्खाण कहते हैं । इसके 10 प्रकार बतलाए गए हैं, जो आगे की गाथा में बताए जाएंगे ।

10 प्रकार के पच्चक्खाण में से अंतिम दो पच्चक्खाण हमेशा उपयोगी होते हैं ।

नवकार सहिय पोरिसि, पुरिमड्ढे-गासणेगठाणे य ।
आयंबिल अभतट्ठे, चरिमे अ अभिग्गहे विगई ।।3।।

शब्दार्थ

नवकार सहिय=नवकार सहित (नवकारसी), **पोरिसि**=पौरुषी, **पुरिमड्ढे**=पुरिमार्ध, **एगासणे**=एकासना, **एगठाणे**=एकलठाणा, **य**=और, **आयंबिल**=आयंबिल, **अभतट्ठे**=अभक्तार्थ (उपवास), **चरिमे**=दिवस चरिम, **अभिग्गहे**=अभिग्रह, **विगई**=विकृति ।

भावार्थ

नवकार सहित (नवकारसी), पौरुषी, पुरिमार्ध, एकाशन, एकस्थान, आयंबिल, उपवास, दिवस चरिम, अभिग्रह और विकृति ये दश प्रकार के अद्धा पच्चक्खाण हैं ।

विवेचन

उपर्यक्त गाथा में दश प्रकार के अद्धा पच्चक्खाण के स्वरूप का वर्णन किया गया है ।

1) नवकार सहियं :- सूर्योदय से लेकर एक मुहूर्त (दो घड़ी-48 मिनिट) तक तीन नवकार गिनकर जो पच्चक्खाण पारा जाता है, उसे नवकार सहियं अर्थात् नवकारसी कहते हैं ।

यह पच्चक्खाण सूर्योदय से पहले ले लेना चाहिए, अन्यथा अशुद्ध कहलाता है ।

2) पोरिसी प्रत्याख्यान :- सुबह में जब पुरुष की छाया स्वदेह प्रमाण की होती है, उसे पोरिसी अर्थात् एक प्रहर कहते हैं ! एक दिन में कुल चार प्रहर होते हैं । दिन का एक प्रहर व्यतीत होने पर पोरिसी का पच्चक्खाण आता है । यह पच्चक्खाण भी सूर्योदय के पहले धारणा चाहिए ।

सार्ध पोरिसी अर्थात् डेढ़ प्रहर । सूर्योदय से डेढ़ प्रहर व्यतीत होने पर जो पच्चक्खाण आता है, उसे साढ़ पोरिसी कहा जाता है ।

3. पुरिमार्ध प्रत्याख्यान :- दिन के पहले आधे भाग के काल को पुरिमार्ध कहते हैं अर्थात् सूर्योदय से दो प्रहर व्यतीत होने पर यह पच्चक्खाण आता है ।

सूर्योदय से तीन प्रहर व्यतीत होने पर अवड्ढ का पच्चक्खाण आता है । इसका समावेश पुरिमुड्ढ के पच्चक्खाण में हो जाता है ।

4. एकाशन अथवा एकासन :- दिन में एक ही बार भोजन करना, उसे एकाशन कहते हैं, अथवा खड़े होकर पुनः नहीं बैठना अर्थात् एक ही आसन-बैठक में भोजन करना उसे एकासन कहते हैं । इस बैठक में नीचे का भाग निश्चल होता है परंतु हाथ, गर्दन आदि अंगों का हलन-चलन हो सकता है ।

एकासन करने के बाद उठते समय तिविहार अथवा चोविहार अवश्य करना चाहिए ।

5. एकस्थान (एकल ठाणु) :- दाहिने हाथ और मुख को छोड़कर अन्य अंगों का हलन-चलन न हो, ऐसे निश्चल आसन वाले एकासने को एकलठाणा कहते हैं । एकासने में अन्य अवयवों को हिलाने की छूट होती है, जबकि एकलठाणे में नहीं होती है । एकासने में उठते समय चोविहार तिविहार दोनों कर सकते हैं, जबकि एकलठाणे में चोविहार ही करने का होता है ।

6. आयंबिल :- आयंबिल में दिन में एक ही बार रस-कस बिना का नीरस आहार लिया जाता है । आयंबिल में छ विगई, विगई के नीवियाते, हरी वनस्पति, सूखा मेवा, आदि सभी स्वादिष्ट पदार्थों का त्याग होता है ।

7. अभक्तार्थ (उपवास) :- भक्त अर्थात् भोजन । जिसमें भोजन का त्याग हो, वह अभक्तार्थ कहलाता है । आज के सूर्योदय से आनेवाले कल के सूर्योदय तक के आहार का त्याग किया जाता है । उपवास चोविहार और तिविहार दोनों प्रकार से हो सकता है । तिविहार उपवास में सिर्फ गर्म पानी की छूट होती है । सूर्यास्त बाद उसका भी त्याग होता है ।

उपवास के आगे पीछे (पहले दिन और पारणे के दिन) में एकासना हो तो कुल चार बार के भोजन का त्याग होने से उसे चतुर्थभक्त भी कहते हैं ।

8. चरिम प्रत्याख्यान :- यह पच्चक्खाण दो प्रकार का होता है । दिन के अंत में जो पच्चक्खाण होता है, उसे दिवस चरिम कहा जाता है और आयुष्य के अंत समय में जो पच्चक्खाण होता है, वह भवचरिम पच्चक्खाण कहलाता है ।

साधु-साध्वी के लिए दिवस चरिम का पच्चक्खाण चोविहार रूप होता है, जबकि गृहस्थ के लिए दिवस चरिम का पच्चक्खाण चोविहार, तिविहार और दुविहार रूप भी होता है।

एकासना आदि के पच्चक्खाण में एकासने आदि के बाद पानी की छूट रखी हो तो शाम के समय में पाणाहार का पच्चक्खाण करना चाहिए।

9. अभिग्रह प्रत्याख्यान :- 'अमुक कार्य होने के बाद ही मैं आहार ग्रहण करूंगा' इस प्रकार के संकल्प को अभिग्रह प्रत्याख्यान कहा जाता है। यह अभिग्रह द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव इन चारों प्रकार से ले सकते हैं।

जैसे 1) अमुक द्रव्य देंगे तो ही लूंगा। यह द्रव्य अभिग्रह है।

2) अमुक गाँव या अमुक क्षेत्र से आहार प्राप्त होगा तो ही लूंगा, यह क्षेत्र अभिग्रह है।

3) अमुक समय में वस्तु प्राप्त होगी तो ही लूंगा, इसे काल अभिग्रह कहते हैं।

4) 'कोई हँसता हुआ देगा, रोता हुआ देगा या खड़े-खड़े देगा तो ही आहार लूंगा।' यह भाव अभिग्रह है।

10) विगई प्रत्याख्यान :- विगई अर्थात् विकृति। इन्द्रियों के विकार को प्रबल करनेवाले दूध, दही, घी, तेल, गुड़ और पक्वान्न ये छह विगई कहलाते हैं। इनमें से 1-2 या सभी विगई का त्याग करना, उसे विगई प्रत्याख्यान कहते हैं।

छह विगई के 30 नीवियाते का यथाशक्य त्याग करना, उसे नीवि प्रत्याख्यान कहते हैं।

मद्य, मांस, शहद और मक्खन ये चार अभक्ष्य महाविगई कहलाते हैं। इन चारों का सर्वथा त्याग होना चाहिए।

उग्गए सूरे अ नमो, पोरिसी पच्चक्ख उग्गए सूरे।
सूरे उग्गए पुरिमं, अभत्तट्ठं पच्चक्खाइ त्ति ॥4॥

शब्दार्थ

उग्गए=उद्गते उगने पर, **सूरे**=सूर्य, **अ**=तथा, **नमो**=नवकार,

पोरिसी=पौरुषी, **पच्चक्ख**=पच्चक्खाण, **पुरिमं**=पुरिमड्ढ, **अभत्तट्ठं**=उपवास, **पच्चक्खाइ**=प्रत्याख्यान ।

भावार्थ

नवकार सहित के पच्चक्खाण में 'उग्गए सूरे', पोरिसी के पच्चक्खाण में **'उग्गए सूरे'**, पुरिमड्ढ तथा उपवास के पच्चक्खाण में **'सूरे उग्गए'** बोलना चाहिए ।

विवेचन

पच्चक्खाण का पाठ चार प्रकार से उच्चराया जाता है, इसका निर्देश इस गाथा में किया है ।

1) पहली उच्चारविधि, **'उग्गए सूरे नमुक्कारसहिअं पच्चक्खाइ'** यह पहली उच्चार विधि है ।

2) दूसरी उच्चारविधि **उग्गए सूरे पोरिसिं पच्चक्खामि,** यह दूसरी उच्चार विधि है । यह उच्चारविधि पोरिसि और सार्द्ध पोरिसि दोनों में चलती है ।

3) तीसरी उच्चार विधि **'सूरे उग्गए पुरिमड्ढं पच्चक्खामि'** यह उच्चारविधि पुरिमड्ढ और अवड्ढ दोनों में चलती है ।

4) चौथी उच्चारविधि **'सूरे उग्गए अभत्तट्ठं पच्चक्खामि'** यह उच्चारविधि उपवास के लिए समझनी चाहिए ।

जिन दो उच्चार विधि में **'उग्गएसूरे'** पाठ आता है, उन सभी पच्चक्खाणों अर्थात् नवकारसी, पोरिसी और साढ पोरिसी के पच्चक्खाणों की सूर्योदय के पहले धारणा कर लेनी चाहिए और जिन पच्चक्खाणों में **'सूरे उग्गए'** पाठ आता है, उन पच्चक्खाणों की धारणा सूर्योदय के बाद भी की जा सकती है ।

'उग्गए सूरे' और **'सूरे उग्गए'** दोनों का अर्थ तो एक ही होता है अर्थात् सूर्योदय से लेकर ।'

भणइ गुरु सीसो पुण, पच्चक्खामित्ति एव वोसिरइ ।
उवओगित्थ पमाणं, न पमाणं वंजणच्छलणा ॥5॥

शब्दार्थ

भणइ=कहते हैं, **गुरु**=गुरु भगवंत, **सीसो**=शिष्य, **पुण**=पुनः, **पच्चक्खामित्ति**=पच्चक्खामि इस प्रकार, **एव**=इस प्रकार, **पमाणं**=प्रमाण, **न पमाणं**=प्रमाण नहीं है, **वंजण**=व्यंजन, **छलणा**=स्खलना ।

भावार्थ

पच्चक्खाण देते समय गुरु जब **'पच्चक्खाइ'** बोले, तब शिष्य को **'पच्चक्खामि'** कहना चाहिए और गुरु जब **'वोसिरइ'** बोले तब शिष्य **'वोसिरामि'** बोले । यहाँ उपयोग प्रमाणभूत है । अक्षर की भूल प्रमाण नहीं है ।

विवेचन

जिस प्रकार एक सद्गृहस्थ सामायिक की प्रतिज्ञा का स्वीकार करता है, परंतु वह पाठ गुरु भगवंत उच्चराते हैं, उसी प्रकार एक सद्गृहस्थ या शिष्य दिन या रात्रि संबंधी आहार-पानी संबंधी पच्चक्खाण स्वीकार करता है, परंतु उस पच्चक्खाण का पाठ गुरु भगवंत बोलते हैं । गुरु से पच्चक्खाण ग्रहण करते समय जब गुरुदेव **'पच्चक्खाइ'** बोलें, तब शिष्य को **'पच्चक्खामि'** बोलना चाहिए और जब गुरुदेव **'वोसिरइ'** बोलें तब शिष्य को **'वोसिरामि'** बोलना चाहिए ।

'पच्चक्खामि' अर्थात् मैं पच्चक्खाण करता हूँ । **'वोसिरामि'** अर्थात् 'मैं त्याग करता हूँ ।'

पच्चक्खाण देते समय पच्चक्खाण के आलावे में कहीं भूल हो जाय, अक्षर कम-ज्यादा बोल दिया जाय तो भी उसे प्रमाणभूत न मानकर, स्वयं ने जिस पच्चक्खाण की धारणा की हो, उसी को प्रमाणभूत मानना चाहिए ।

जैसे तिविहार का पच्चक्खाण हो और भूल से 'चोविहार' बोल दिया हो । एकासने का पच्चक्खाण किया हो और भूल से पच्चक्खाण देते समय बियासना बोल दिया गया हो तो भी वास्तव में जो पच्चक्खाण धारा हो, वही प्रमाणभूत माना जाता है, न कि बोला हुआ ।

पढमे ठाणे तेरस, बीए तिन्निउ तिगाइ तइयंमि ।
पाणस्स चउत्थंमि, देसवगासाइ पंचमए ।।6।।

शब्दार्थ

पढमे=पहले, **ठाणे**=स्थान में, **तेरस**=तेरह, **बीए**=दूसरे, **तिन्नि**=तीन, **तिगाइ**=तीन आदि, **तइयंमि**=तीसरे में, **पाणस्स**=पानी का, **चउत्थंमी**=चौथे में, **देसवगासाइ**=देशावगासिक, **पंचमए**=पाँचवें में ।

भावार्थ

प्रथम स्थान में तेरह, दूसरे स्थान में तीन, तीसरे स्थान में तीन, चौथे स्थान में पाणस्स के और पाँचवें स्थान में देशावगासिक आदि का उच्चार होता है ।

विवेचन

एकासना आदि बड़े पच्चक्खाणों में जो अलग-अलग प्रकार के पच्चक्खाण उच्चराए जाते हैं, वे पाँच स्थान कहलाते हैं अर्थात् पाँच पच्चक्खाण के अलग-अलग प्रकार के आलावे, वे पाँच प्रकार के उच्चार स्थान कहलाते हैं ।

एकासने में पाँच उच्चार स्थान—

1) पहला उच्चार स्थान :- एकासने में सर्व प्रथम **'नमुक्कारसहियं पोरिसि'** आदि एक अद्धा पच्चक्खाण और दूसरा **'मुट्ठि सहियं'** आदि एक संकेत पच्चक्खाण उच्चराया जाता है-ये दोनों मिलकर पहला उच्चार स्थान कहते हैं ।

2) दूसरा उच्चार स्थान :- दूसरे उच्चारस्थान में विगई का पच्चक्खाण किया जाता है । एकासना, बियासना में किसी एक भी विगई का त्याग नहीं किया हो तो अभक्ष्य ऐसी चार महाविगई का त्याग तो अवश्य होता ही है, अतः एकासने आदि में दूसरे उच्चार स्थान में विगई त्याग का पच्चक्खाण किया जाता है ।

3) तीसरा उच्चार स्थान :- इसमें एकासने का आलावा बोला जाता है ।

4) चौथा उच्चार स्थान :- इसमें पाणस्स (पानी संबंधी) का आलावा बोला जाता है । इस प्रकार ये चार आलावे प्रभात में एक साथ बोले जाते हैं ।

5. पाँचवाँ उच्चार स्थान :- सुबह और शाम देशावगासिक अथवा

शाम को दिवस चरिम या पाणाहार का आलावा बोला जाता है, यह पाँचवाँ उच्चार स्थान है।

इस प्रकार एक एकासने के पच्चक्खाण में पाँच आलावे, ये पाँच उच्चार स्थान कहलाते हैं।

नमु पोरिसि सड्ढा पुरिमवड्ढ अंगुट्ठमाइ अड तेर।
निवि विगइं बिल तिय तिय, दु इगासण एगठाणाइं ॥7॥

शब्दार्थ : नमु=नवकारसी, **पोरिसि**=पोरिसी, **सड्ढा**=सार्धपोरिसि, **पुरिमवड्ढ**=पुरिमार्ध अवड्ढ, **अंगुट्ठमाइ**=अंगुठ सहियं आदि, **अड**=आठ, **तेर**=तेरह, **निवि**=नीवि, **विगइं**=विगइ, **बिल**=आयंबिल, **तिय तिय**=तीन तीन, **दु**=बियासना, **इगासण**=एकासना, **एगठाणाइ**=एकलठाणा।

भावार्थ

नवकारसी, पोरिसी, साढ पोरिसी, पुरिमड्ढ और अवड्ढ तथा अंगुठ सहियं आदि आठ मिलकर कुल 13 प्रकार का पहला उच्चार स्थान है।

निवी, विगइ और आयंबिल इन तीन का दूसरा उच्चार स्थान है। बियासना, एकासना और एकल ठाणा इन तीन का तीसरा उच्चार स्थान है।

विवेचन

एकासना आदि पच्चक्खाण के पाँच उच्चार स्थानों में कुल 21 प्रकार हैं।

पहला उच्चार स्थान :- पहले उच्चार स्थान में अद्धा पच्चक्खाण और संकेत पच्चक्खाण का एक साथ में एक आलावा उच्चराया जाता है।

अद्धा पच्चक्खाण के पांच भेद हैं-नवकारसी, पोरिसी, सार्ध पोरिसी, पुरिमड्ढ और अवड्ढ। संकेत पच्चक्खाण के आठ भेद हैं-`अंगुठसहियं, मुट्ठिसहियं, गंठिसहियं, घर सहियं, स्वेद सहियं, उच्छ्वास सहियं, स्तिबुकसहियं और दीप सहियं।

इस प्रकार अद्धा पच्चक्खाण के पाँच और संकेत पच्चक्खाण के आठ=13 भेद हुए।

अद्धा पच्चक्खाण और संकेत पच्चक्खाण दोनों का एक ही आलावा बोला जाता है, यह पहला उच्चार स्थान है।

2. दूसरा उच्चार स्थान :- इसमें विगइ का पच्चक्खाण होता है । आयंबिल में विगइ का सर्वथा त्याग होता है, निवी में कच्ची विगइ का त्याग होता है और एकासने आदि में छह में से एक-दो विगइ अथवा अभक्ष्य ऐसी चार महाविगई का त्याग होता है । दूसरे उच्चार स्थान के कुल तीन प्रकार हुए विगइ, निव्विगइ और आयंबिल ।

3. तीसरा उच्चार स्थान :- इस उच्चार स्थान में आहार एक बार या दो बार लिया जाएगा, उसका पच्चक्खाण लिया जाता है । इसके तीन भेद हैं-एकासना हो तो **'एगासणं'**, बियासना हो तो **बिआसणं** और एकलठाणा हो तो **'एकलठाणं'** का उच्चारण किया जाता है ।

4-5. चौथा और पाँचवाँ उच्चार स्थान :- चौथा उच्चार स्थान पानी संबंधी और पाँचवाँ उच्चार स्थान देशावगासिक अथवा दिवस चरिम संबंधी एक-एक आलावा होने से उपर्युक्त गाथा में स्पष्ट निर्देश नहीं किया है, फिर भी अध्याहार से समझ लेना चाहिए ।

विविध तप में उच्चार स्थान

u एकासने में 5 उच्चार स्थान
u बियासने में 5 उच्चार स्थान
u एकलठाणे में 5 उच्चार स्थान

1. संकेत सहित अद्धा पच्चक्खाण
2. विगइ संबंधी
3. एकासना-बियासना और अथवा एकलठाणे का
4. पाणस्स का
5. देशावगासिक अथवा दिवस चरिम का

आयंबिल में 5 उच्चार स्थान

एकाशने की तरह सिर्फ दूसरे उच्चार स्थान में विगइ के बदले आयंबिल का पच्चक्खाण होता है ।

नीवि में 5 उच्चार स्थान

एकासने की तरह सिर्फ दूसरे उच्चार स्थान में विगइ के बदले निव्विगइ का पच्चक्खाण होता है ।

तिविहार उपवास में 5 उच्चार स्थान

आगे की गाथा में बताएंगे ।

चोविहार उपवास में 2 उच्चार स्थान

उपवास और देशावगासिक का होता है ।

उपवास में 5 उच्चार स्थान

पढमंमि चउत्थाइ, तेरस बीयंमि तइय पाणस्स ।
देसवगासं तुरीए, चरिमे जह संभवं नेयं ।।8।।

शब्दार्थ

पढमंमि=पहले उच्चार स्थान में, **चउत्थाइ**=चतुर्थ आदि, **तेरस**=तेरह, **बीयंमि**=दूसरे में, **तइय**=तीसरे में, **पाणस्स**=पानी का, **देसवगासं**=देशावगासिक का, **तुरीए**=चौथे में, **चरिमे**=अंतिम (पाँचवें) स्थान में, **जहसंभवं**=यथासंभव, **नेयं**=जानना चाहिए ।

भावार्थ

उपवास के पहले उच्चार स्थान में चतुर्थभक्त से लेकर चौंतीस भक्त का पच्चक्खाण, दूसरे उच्चार स्थान में नवकारसी आदि 13 पच्चक्खाण, तीसरे उच्चार स्थान में पानी का, चौथे उच्चार स्थान में देशावगासिक का और पाँचवें उच्चार स्थान में शाम को यथासंभव पाणाहार अर्थात् चोविहार का पच्चक्खाण होता है ।

विवेचन

चौविहार उपवास में दो ही उच्चार स्थान हैं-उपवास का उच्चार और देशावगासिक का उच्चार ।

तिविहार उपवास में पाँच उच्चार स्थान हैं- **1. पहला उच्चार स्थान :** उपवास के पहले दिन एकासना और उपवास के पारणे में एकासना हो तो उसे चउत्थ भत्त (चतुर्थभक्त) कहते हैं और आगे-पीछे कोई भी विशेष तप न हो उसे अभत्तट्ठं कहते हैं ।

पहले तीर्थंकर ऋषभदेव प्रभु के शासन में एक साथ में बारह मास के उपवास का पच्चक्खाण दिया जा सकता था ।

◆ बाईस तीर्थंकरों के शासन में उत्कृष्ट से आठ मास के उपवास का पच्चक्खाण था ।

महावीर प्रभु के शासन में उत्कृष्ट से छह मास के उपवास का पच्चक्खाण था, परंतु वर्तमान समय में संघयण बल आदि की हानि के कारण अधिकतम 16 उपवास अर्थात् चौंतीसभक्त का पच्चक्खाण दिया-लिया जा सकता है, इससे अधिक नहीं ।

आगे-पीछे एकासना न हो तो भी दो उपवास को छट्ठ, तीन उपवास को अट्ठम, चार उपवास को दशम भक्त आदि कहा जाता है और पच्चक्खाण लेते देते समय भी **'सूरे उग्गए छट्ठ भत्तं, अट्ठमभत्तं'** इत्यादि बोला जाता है ।

वर्तमान समय में एक उपवास से लेकर 16 उपवास तक एक साथ पच्चक्खाण दिये जा सकते हैं, अतः पहले उच्चार स्थान के 16 प्रकार हुए ।

2. दूसरा उच्चार स्थान :- इस उच्चार स्थान में नवकारसी आदि पाँच अद्धा पच्चक्खाण में से कोई एक और अंगुठसहियं आदि आठ संकेत पच्चक्खाणों में से कोई एक इन दोनों के मिश्रवाले इस दूसरे उच्चार स्थान के कुल 13 प्रकार हैं ।

3. तीसरा उच्चार स्थान :- तिविहार उपवास में तीसरा उच्चार स्थान पानी संबंधी है । इसका उच्चार स्थान एक ही प्रकार का है ।

ये तीनों उच्चार स्थान एक साथ में उच्चराए जाते हैं ।

उसके बाद चौदह नियम के संक्षेप रूप देशावगासिक का चौथा उच्चार स्थान है ।

शाम के समय में दिवस चरिम (चोविहार) का उच्चार स्थान वह पाँचवाँ उच्चार स्थान है । अथवा जिसे अपना आयुष्य अल्प प्रतीत हो रहा हो, वह अपने आत्मकल्याण के लिए जीवन पर्यंत के लिए चारों प्रकार के आहार का भी त्याग कर सकता है । उस समय **'भवचरिमं पच्चक्खामि चउव्विहंपि आहारं'** इत्यादि पद बोलना चाहिए ।

तह मज्झपच्चक्खाणेसु, न पिहु सुरुग्गयाइ वोसिरइ ।
करणविहि उ न भन्नइ, जहावसीआइ बियछंदे ।।9।।

शब्दार्थ

तह=तथा, **मज्झ**=मध्य, **पच्चक्खाणेसु**=प्रत्याख्यानों में, **न पिहु**=पृथक् नहीं, **सुरुग्गयाइ**=सूरे उग्गए आदि, **वोसिरइ**=त्याग करता है, **करणविहि**=क्रियाविधि, **उ**=तथा, **न भन्नइ**=नहीं कहते हैं, **जहा**=जिस प्रकार, **आवसीआइ**=आवस्सिआए आदि, **बियछंदे**=दूसरे वांदणा में ।

भावार्थ

तथा मध्य के पच्चक्खाणों में सूरे उग्गए व वोसिरइ आदि शब्द अलग से नहीं कहे जाते हैं। जिस प्रकार दूसरी बार के वांदणे में **'आवस्सियाए'** पद नहीं बोला जाता है, उसी प्रकार सूरे उग्गए व वोसिरइ पद बारबार नहीं कहे जाते हैं, यह पच्चक्खाण उच्चारने की विधि है ।

विवेचन

जिस प्रकार द्वादशावर्त वंदन करते समय दूसरी बार के वांदणे में **'आवस्सियाए'** पद नहीं बोला जाता है उसी प्रकार पच्चक्खाण के उच्चा-रण में भी यही विधि है कि एकासने आदि के पच्चक्खाण में **'उग्गए सूरे'** एवं **'वोसिरइ'** पद एक ही बार बोला जाता है, परंतु एकासने आदि बड़े पच्चक्खाण के मध्य में आनेवाले विगइ, पाणस्स, एकासन आदि सभी के साथ `उग्गए सूरे' और `वोसिरइ' पद नहीं बोला जाता है, यद्यपि उनका सबका `उग्गए सूरे' व `वोसिरइ' पद के साथ संबंध है। परंतु पच्चक्खाण उच्चरने की विधि इस प्रकार होने से ये दोनों पद एक ही बार बोले जाते हैं, बार-बार नहीं बोले जाते हैं ।

तह तिविह पच्चक्खाणे, भन्नंति य पाणगस्स आगारा ।
दुविहाहारे अच्चित्त-भोइणो तह य फासुजले ॥10॥

शब्दार्थ

तह=तथा, **तिविह**=तिविहार, **पच्चक्खाणे**=पच्चक्खाण में, **भन्नंति**=कहा जाता है, **पाणगस्स**=पानी का, **आगारा**=अपवाद, **दुविहाहारे**=दुविहारवाले में, **अच्चित्त**=अचित्त, **भोइणो**=भोजी को, **तह**=तथा, **य**=और, **फासुजले**=प्रासुकजल में ।

भावार्थ

तिविहार के पच्चक्खाण में पाणस्स के आगार उच्चरने चाहिए । एकासना आदि दुविहारवाला हो तो भी अचित्तभोजी को पाणस्स के आगार उच्चराने चाहिए । विशेषव्रत बिना के छूटे श्रावक को भी उष्ण जल पीने का नियम हो तो उसे भी पाणस्स का आगार उच्चराना चाहिए ।

विवेचन

एकासना आदि जिन-जिन व्रतों में तिविहार हो सकता है । उन व्रतों के तिविहार में सचित्त आहार-पानी का त्याग होना चाहिए अर्थात् उनमें पानी अचित्त ही पीना चाहिए । अचित्तजल के पच्चक्खाण में पानी संबंधी आगार अवश्य उच्चरने चाहिए ।

एकासना दुविहारवाला हो तो अचित्तभोजी को पानी का आगार उच्चराना चाहिए ।

व्रत बिना के छूटा श्रावक भी उष्ण जल पीने के नियमवाला हो तो उसे पानी संबंधी आगार बोलने चाहिए ।

सचित्त भोजन और सचित्त जलवाले को पानी संबंधी आगार नहीं होता है ।

अचित्त भोजन और सचित्त जल, तो भी पानी के आगार नहीं होते हैं ।

अचित्त भोजन और अचित्त जल में पानी का आगार होता है, परंतु श्रावक ने तिविहार एकासना किया हो तो उसे सचित्त आहार-पानी का त्याग करना चाहिए, उसे पानी संबंधी आगार उच्चराने चाहिए ।

परंतु एकासना आदि दुविहार किया हो और सचित्त का त्याग न किया हो तो पानी के आगार नहीं उच्चराए जाते हैं ।

इत्तुच्चिय खवणंबिल-निविआइसु फासुयं चियजलंतु ।
सड्ढा वि पियंति तहा, पच्चक्खंति य तिहाहारं ।।11।।

शब्दार्थ

इत्तुच्चिय=इस हेतु से, **खवणं**=उपवास, **अंबिल**=आयंबिल, **निविआइसु**=निवी आदि में, **फासुयं**=प्रासुक (अचित्त), **सड्ढा**=श्राद्ध, **वि**=भी,

पियंति=पीते हैं, **तहा**=तथा, **पच्चक्खंति**=पच्चक्खाण करते हैं, **तिहाहारं**=त्रिविध आहार का ।

भावार्थ

इस हेतु से उपवास, आयंबिल और नीवि आदि में श्रावक भी अवश्य अचित्त जल पीते हैं और तिविहार का पच्चक्खाण करते हैं ।

विवेचन

श्राद्ध वृत्ति में कहा है कि निरवद्य आहार, निर्जीव आहार और प्रत्येक मिश्र (साधारण वनस्पति को छोड़कर) आहार द्वारा आत्मगुणों को प्राप्त करने में तत्पर, उस प्रकार के आहार द्वारा आजीविका चलाने में तत्पर सुश्रावक होते हैं ।

इससे स्पष्ट है कि श्रावक प्रायः अचित्तभोजी होता है । अतः श्रावकों को भी व्रतों में उष्ण जल ही पीना चाहिए और तिविहार का पच्चक्खाण करना चाहिए । दुविहार का पच्चक्खाण अपवाद स्वरूप है । अतः व्रत में कच्चा पानी नहीं पीना चाहिए । क्योंकि मुख्यतः तो श्रावक को सचित्त का सर्वथा त्याग होता है ।

इस कारण अचित्तभोजी श्रावकों को भी उपवास, आयंबिल और नीवी आदि पच्चक्खाणों में प्रासुक अर्थात् अचित्त जल ही पीना चाहिए ।

सचित्तभोजी श्रावकों को भी उपवास, आयंबिल एवं नीवी ये तीन तो तिविहार या चोविहार होते हैं और उनमें अचित्त पानी ही पीना चाहिए । अचित्तजल पीनेवाले को पानी संबंधी आगार उच्चराए जाते हैं ।

चउहाहारं तु नमो, रत्तिं पि मुणीण सेस तिह चउहा ।
निसि पोरिसि पुरिमेगा, सणाइ सड्ढाण दुति चउहा ।।12।।

शब्दार्थ

चउहाहार=चार प्रकार का आहार, **नमो**=नवकारसी, **रत्तिंपि**=रात्रि में भी, **मुणीण**=मुनियों को, **सेस**=बाकी, **तिह**=तिविहार, **चउहा**=चोविहार, **निसि**=रात्रि में, **पोरिसि**=पोरिसि, **पुरि**=पुरिमड्ढ, **एगासणाइ**=एकासना आदि, **सड्ढाण**=श्रावकों को, **दुति**=दो=तीन, **चउहा**=चार प्रकार ।

भावार्थ

नवकारसी का पच्चक्खाण और साधु भगवंतों को रात्रि का पच्चक्खाण चोविहार ही होता है, शेष पच्चक्खाण तिविहार अथवा चोविहार वाले होते हैं। श्रावकों को रात्रि के पच्चक्खाण, पोरिसी, पुरिमड्ढ तथा एकासना आदि पच्चक्खाण दुविहार, तिविहार और चोविहार तीनों प्रकार के होते हैं।

विवेचन

साधु-साध्वीजी भगवंतों को रात्रि में चोविहार का ही पच्चक्खाण होता है और नवकारसी पच्चक्खाण भी चोविहार ही होता है जबकि पोरिसी आदि पच्चक्खाण चोविहार-तिविहार दोनों होते हैं।

(पंचाशक ग्रंथ में रोग आदि अतिगाढ़ कारण उपस्थित होने पर मुनि को पोरिसी आदि पच्चक्खाण दुविहार कहे हैं। सामान्य से तो मुनि को पोरिसी आदि पच्चक्खाण तिविहार-चोविहार ही कहे हैं।

प्रश्न :- उपवास तो तिविहार चोविहार होता है परंतु एकासना दुविहार तिविहार कैसे ?

उत्तर :- एकासने में भोजन के सिवाय शेष काल में पानी की ही छूट होने से तिविहार एकासना हुआ और गाढ़ कारण में स्वादिम की छूट होने पर दुविहार एकासना हुआ।

श्रावकों को नवकारसी का पच्चक्खाण चोविहार ही कहा है, जबकि पोरिसी आदि व एकासनादि दिन संबंधी और दिवस चरिम संबंधी पच्चक्खाण चोविहार, तिविहार और दुविहार तीनों हो सकते हैं।

परंतु नवकारसी चोविहार ही होती है क्योंकि नवकारसी तो गत रात्रि के चोविहार पच्चक्खाण के तीरण (कुछ अधिक करने स्वरूप) रूप कही है।

पच्चक्खाण भेद

पच्चक्खाण - मुनि व श्रावक

1 नवकारसी - मुनि व श्रावकों को चोविहार

1 पोरिसी, साढपोरिसी, पुरिमड्ढ और अवड्ढ

मुनिको तिविहार, चोविहार (गाढ़ कारण में दुविहार)। श्रावक को दुविहार, तिविहार, चोविहार।

1 एकासना, एकलठाणा, बियासना—

मुनि को तिविहार, चोविहार (गाढ़ कारण में दुविहार) । श्रावक को दुविहार, तिविहार, चोविहार (एकलठाणे में भोजन बाद चोविहार)

1 आयंबिल, नीवी, उपवास, भवचरिम —

श्रावक व मुनि को तिविहार-चोविहार (अपवाद से नीवी में दुविहार)

1 **संकेत पच्चक्खाण :** मुनि को तिविहार-चोविहार, श्रावक को दुविहार, तिविहार, चोविहार, रात्रि पच्चक्खाण (दिवस चरिम) मुनि को चोविहार, श्रावक को दुविहार, तिविहार और चोविहार (एकासन आदि में श्रावक को भी रात्रि में चोविहार)

आहार के लक्षण

खुहपसम खमेगागी, आहारी व एइ देइ वा सायं ।
खुहिओ व खिवइकुट्ठे, जं पंकुवमं तमाहारो ।।13।।

शब्दार्थ

खुह=क्षुधा, **पसम**=शांत करने में, **खम**=समर्थ, **एगागी**=अकेला, **आहारि**=आहार, **व**=अथवा, **एइ**=आता है, **देइ**=देता है, **सायं**=स्वाद, **खुहिओ**=भूखा, **खिवइ**=डालता है, **कुट्ठे**=पेट में, **पंकुवमं**=कीचड़ की उपमावाला, **तं**=उसे, **आहारो**=आहार ।

भावार्थ

जो अकेला हो तो भी क्षुधा को शांत करने में समर्थ हो, आहार में आता हो अथवा आहार में स्वाद देता हो । व्यक्ति कीचड़ जैसे नीरस द्रव्य को भी भूख शांत करने के लिए पेट में डाल देता हो तो उसे आहार कहते हैं ।

विवेचन

इस गाथा में आहार के चार लक्षण बतलाए हैं–

1) दूसरे पदार्थ के मिश्रण बिना जो पदार्थ अकेला भी भूख मिटाने में समर्थ हो उसे आहार कहते हैं । इस लक्षण में आहार के चार प्रकार आते हैं–

1) अशन :- पकाए हुए चावल आदि ।

2) पान :- छाश की आछ, आदि

3) खादिम :- गन्ना आदि फल

4) स्वादिम :- सूंठ आदि

2) जो पदार्थ स्वतंत्र रूप से भूख को शांत करने में समर्थ न हो, परंतु अशन आदि में मिश्र करने पर उसके गुण व रस में वृद्धि करता हो, उसे भी आहार कहते हैं । जैसे-नमक, शक्कर, मिर्च आदि ।

(3) अशन आदि के स्वाद में वृद्धि करनेवाला पदार्थ आहार के साथ में मिश्र हो या स्वतंत्र हो, तो भी आहार कहलाता है ।

उदा. अशन में नमक, हींग, जीरा आदि ।

पानी में कपूर आदि ।

खादिम में नमक आदि ।

स्वादिम में काथा आदि ।

4) भूखा व्यक्ति अपनी भूख शांत करने के लिए कीचड़ जैसे नीरस आहार को भी खा लेता है, उसे भी आहार कहते हैं ।

औषधियों में कुछ औषधियाँ आहार कहलाती हैं और कुछ औषधियाँ अणाहारी भी होती हैं ।

असणे मुग्गोअण सत्तु मंड पय खज्ज रब्बकंदाई ।
पाणे कंजिय जव कयर-कक्कडोदग सुराइ जलं ॥14॥

शब्दार्थ

असणे=अशन में, **मुग्गो**=मूंग, **ओअण**=चावल, **सत्तु**=साथा, **मंड**=मांडा, **पय**=दूध, **खज्ज**=खाजा, **रब्ब**=घेंस, **कंदाइ**=कंद आदि, **पाणे**=पानी में, **कंजिय**=कांजी का, **जव**=यव, **कयर**=केर, **कक्कड**=काकड़ी, **उदग**=पानी, **सुराइ**=मदिरा आदि, **जलं**=जल ।

भावार्थ

अशन में मूंग, चावल, सक्तु, मांडा, दूध, खाजा, राब आदि खाद्य तथा कंद आदि आते हैं ।

छाश की आश, जौ का पानी, केर का पानी, ककड़ी आदि फलों के भीतर रहा हुआ तथा उन फलों को धोने से तैयार हुआ पानी तथा मदिरा आदि का पानी, पान आहार में गिना जाता है ।

विवेचन

पूर्व गाथा में आहार का लक्षण बतलाया, इस गाथा में अशन और पान के स्वरूप का वर्णन किया है–

1) अशन :- जो शीघ्र ही भूख को शांत करे, उसे अशन कहते हैं । यह अशन शब्द का निर्युक्ति अर्थ है । जो-जो आहार के रूप में लिया जाता है, उसे अशन कहते हैं, यह अशन शब्द का व्युत्पत्ति अर्थ है । इस अपेक्षा से फल आदि भी खाए जाते हैं, अतः उनका भी समावेश अशन में हो जाएगा । परंतु रूढ़ि से अशन में आठ प्रकार के पदार्थों का समावेश किया जाता है–

1) भात :- भात शब्द से चावल आदि सभी प्रकार के अनाज लिये जाते हैं ।

2) सक्तु :- सक्तु शब्द से भुंजे हुए और सेके हुए जौ आदि के चूर्ण का समावेश होता है ।

3) मूंग :- मूंग शब्द से सभी प्रकार के दलहन का समावेश होता है ।

4) मंड :- पतली रोटी, जाडी रोडी, पूडी आदि ।

5) पय :- दूध शब्द से दही, घी, छाछ, कढ़ी आदि

6) खज्ज :- खाज्जा, लड्डू, घेबर, लापसी, सीरा आदि सभी प्रकार के पक्वान्न का समावेश खाजे में होता है ।

7) राब :- सभी प्रकार की घेंस का समावेश होता है ।

8) कंद :- सभी प्रकार की वनस्पति, कंद, मूल, फल, पकाए हुए शाक आदि का समावेश होता है ।

2. पान :- छाश की आश, जौ, गेहूँ, कोदरी आदि का धोवण, अनेक प्रकार की मदिरा 'तालाब-नदी' आदि का पानी, ककड़ी, तरबूज, खजूर, द्राक्ष, इमली आदि का पानी, इक्षुरस आदि का समावेश पान में होता है ।

तिविहार के पच्चक्खाण में ये सभी पानी कल्पते नहीं हैं परंतु कपूर आदि अन्य पदार्थों के मिश्रण से रहित नदी, तालाब आदि का पानी ही कल्पता है ।

कपूर आदि से मिश्र पानी दुविहार में कल्पता है ।

खादिम-स्वादिम एवं अणाहारी

खाइमि भत्तोस फलाइ, साइमे सुंठि जीर अजमाई ।
महु गुड तंबोलाई, अणहारे मोअ-निंबाई ।।15।।

शब्दार्थ

खाइमि=खादिम में, **भत्तोस**=सेके हुए धान्य, **फलाइ**=फल आदि, **सुंठि**=सूंठ, **जीर**=जीरा, **अजमाइ**=अजमा आदि, **महु**=मधु-शहद, **गुड़**=गुड़, **तंबोलाइ**=तंबोल आदि, **अणहारे**=अणाहारी में, **मोअ**=मूत्र, **निंबाइ**=नीम आदि ।

भावार्थ

खादिम में सेके हुए धान्य और फल आदि तथा स्वादिम में सूंठ, जीरा, मधु, गुड़, पान, सुपारी आदि आते हैं, अणाहारी वस्तुओं में मूत्र तथा नीम आदि का समावेश होता है ।

विवेचन

जिन वस्तुओं को खाने से भूख पूर्ण रूप से शांत नहीं होती है, परंतु कुछ समय के लिए आंशिक रूप से शांत होती है, उसे खादिम कहते हैं ।

3. खादिम :- भूंजे हुए चने, गेहूँ आदि । दाँतों को व्यायाम देनेवाले गूंद, चने, फूली, चिरौंजीदाने, गंडेरी, मिश्री, खजूर, नारियल, द्राक्ष, अखरोट, बादाम आदि सूखे मेवे (Dry Fruits) ककड़ी, आम, केले, अमरूद आदि फल ।

4. स्वादिम :- इसमें सूंठ, हरड़े, पीपर, काली मिर्च, जीरा, अजमा, जायफल, दाँतों को स्वच्छ बनानेवाला दातून, पान, सुपारी, इलायची, तुलसीपत्र, पिंडालु, शहद, पीपल, गुड़, अजमोद, हरडे-बहेडा-आंवला, केसर, नागकेसर, लौंग, पीपरामूल, तज, संचय, हींग, जवासामूल, वरियाली, सुवा आदि का समावेश होता है-दुविहार के पच्चक्खाण में ये वस्तुएँ कल्पती हैं ।

'शहद, गुड़, शक्कर आदि का भी स्वादिम में समावेश होता है परंतु क्षुधा की तृप्ति करनेवाले होने से दुविहार में नहीं कल्पते हैं ।

अणाहारी वस्तुएँ :- जो वस्तुएँ अत्यंत अरुचिकर स्वादवाली हों और स्वयं को रुचिकर न हों एवं रोगादि शामक हों और विशेष कारण उपस्थित होने पर ही लेने में आती हों, वे अणाहारी कहलाती हैं अर्थात् उन वस्तुओं का अशन आदि चार में समावेश नहीं होता है ।

तंबाकू व चूना खानेवाले को रुचिकर हो तो वे वस्तुएँ उसके लिए अणाहारी नहीं हैं । स्वाद की रुचि से त्रिफला आदि गोली ले तो भी वह अणाहारी नहीं है ।

नीम के पत्ते, छाल, काष्ठ, फल, फूल आदि, गोमूत्र आदि मूत्र, गलोसत्त्व, कडुकरियाता, अतिविष की कली, राख, हल्दी, जवहरड़े, बबूल की छाल, फिटकरी, त्रिफला आदि वस्तुएँ अनाहारी हैं ।

प्रश्न :- अणाहारी वस्तुएँ भी मुख में डाली जाती हैं, अतः कवलाहार रूप होने से चार प्रकार के आहार में उनका समावेश क्यों नहीं ?

उत्तर :- आहार का कार्य क्षुधानाश, तृषानाश, मुख स्वादिष्ट करना आदि हैं जबकि अणाहारी वस्तुएँ न तृप्तिकारक हैं, न तृषानाशक हैं और न ही आहार संज्ञा पोषक हैं, बल्कि अनिष्ट स्वादवाली हैं, अतः आहार का मुख्यकार्य नहीं करती हैं, सिर्फ रोगनाशक या उपशामक होने से उसका उपयोग किया जाता है ।

पच्चक्खाणों में आगार संख्या

दो नवकारि छ पोरिसि, सग पुरिमड्ढे इगासणे अट्ठ ।
सत्तेगठाणि अंबिलि, अट्ठ पण चउत्थि छप्पाणे ।।16।।

शब्दार्थ

दो=दो, **नवकारि**=नवकारसी में, **छ**=छह, **पोरिसि**=पोरिसी में, **सग**=सात, **पुरिमड्ढे**=पुरिमड्ढ में, **इगासणे**=एकासने में, **अट्ठ**=आठ, **सत्त**=सात, **एगठाणि**=एकलठाणे में, **अंबिलि**=आयंबिल में, **अट्ठ**=आठ, **पण**=पाँच, **चउत्थि**=चतुर्थभक्त में, **छ**=छह, **पाणे**=पानी में ।

भावार्थ

नवकारसी में दो, पोरिसी में छह, पुरिमड्ढ में सात, एकासने में आठ, एकलठाणे में सात. आयंबिल में आठ, उपवास में पाँच व पाणस्स के छह आगार हैं ।

विवेचन

नवकारसी आदि विविध तपों में कितनी संख्या में आगार-अपवाद रहे हुए हैं, उनकी संख्या का निर्देश इस गाथा में किया गया है ।

पोरिसी और साढ पोरिसी के समान आगार हैं ।

पुरिमड्ढ और अवड्ढ के समान आगार हैं ।

एकासने और बियासने में समान आगार हैं ।

चउ चरिमे चउभिग्गहि, पण पावरणे नवट्ठ निव्वीए ।
आगारुक्खित्त विवेग-मुत्तु दवविगइ नियमिट्ठ ।।17।।

शब्दार्थ

चउ=चार, **चरिम**=दिवस चरिम और भव चरिम, **चउभिग्गहि**=अभिग्रह में चार, **पण**=पाँच, **पावरणे**=वस्त्र के पच्चक्खाण में, **नवट्ठ**=नौ या आठ, **निव्वीए**=नीवि में, **आगार**=अपवाद, **उक्खित्त विवेग**=उत्क्षिप्त, **मुत्तु**=छोड़कर, **दवविगइ**=द्रव विगइ, **नियमिट्ठ**=नियम में आठ ।

भावार्थ :- दिवसचरिम और भवचरिम में चार आगार हैं, अभिग्रह में चार आगार हैं, वस्त्र के पच्चक्खाण में पाँच आगार हैं, नीवि में नौ अथवा आठ आगार हैं, वहाँ द्रवविगइ के त्याग में 'उक्खित्तविवेगेणं' आगार को छोड़कर शेष आठ आगार हैं ।

विवेचन

दिवस चरिम, भव चरिम और अभिग्रह के पच्चक्खाण में अन्नत्थणाभोगेणं, सहसागारेणं, महत्तरागारेणं और सव्व समाहिवत्तियागा-रेणं-ये चार आगार होते हैं ।

अभिग्रह पच्चक्खाण में आठ प्रकार के संकेत पच्चक्खाण तो आते ही

हैं, परंतु उसके साथ द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव से चारों प्रकार के अभिग्रहों का समावेश होता है ।

जितेन्द्रिय मुनि जो चोलपट्टा भी नहीं पहिनने का अभिग्रह करते हैं, उन्हें 5 आगार होते हैं ।

`अन्नत्थणाभोगेणं, सहसागारेणं, महत्तरागारेणं, सव्वसमाहिवत्तियागारेणं और चोलपट्टागारेणं ।'

चोलपट्टा नहीं पहिनने का अभिग्रह किया हुआ होने पर भी गृहस्थ आदि के आगमन पर चोलपट्टा पहिनने पर इस आगार के कारण पच्चक्खाण का भंग नहीं होता है ।

अन्न सह दु नमुक्कारे, अन्न सह प्पच्छ दिस य साहु सव्व ।
पोरिसि छ सड्ढपोरिसि, पुरिमड्ढे सत्त समहत्तरा ।।18।।

शब्दार्थ

नमुक्कारे=नवकारसी में, **अन्न**=अन्नत्थणाभोगेणं, **सह**=सहसागारेणं, **पच्छ**=पच्छन्नकालेणं, **दिस**=दिसामोहेणं, **साहु**=साहुवयणेणं, **सव्व**=सव्वसमाहिवत्तियागारेणं, **पोरिसि**=पोरिसी, **सड्ढपोरिसि**=सार्ध पोरिसि, **पुरिमड्ढे**=पुरिमड्ढ में, **सत्त**=सात, **समहत्तरा**=महत्तरागारेणं सहित ।

भावार्थ

नवकारसी के पच्चक्खाण में अन्नत्थणाभोगेणं और सहसागारेणं ये दो आगार हैं ।

पोरिसी और साढ पोरिसी के पच्चक्खाण में अन्नत्थणाभोगेणं, सहसागारेणं, पच्छन्नकालेणं, दिसामोहेणं, साहुवयणेणं तथा सव्वसमाहिवत्तिया-गारेणं ये छह आगार हैं । पुरिमड्ढ के पच्चक्खाण उपर्युक्त छह के साथ सातवाँ महत्तरागारेणं आगार है ।

विवेचन

प्रश्न :- नवकारसी में दो आगार बतलाए हैं, परंतु नवकारसी के पच्चक्खाण में `उग्गए सूरे नमुक्कारसहियं मुट्ठिसहियं पच्चक्खाइ ! चउविहंपि आहारं असणं पाणं खाइमं साइमं । अन्नत्थणाभोगेणं, सहसागारेणं, महत्तरागारेणं

सव्वसमाहिवत्तियागारेणं वोसिरइ ।' चार आगार आते हैं, ऐसा क्यों ?

उत्तर :- यह पच्चक्खाण सिर्फ नवकारसी का ही नहीं है, बल्कि नवकारसी के साथ मुट्ठिसहियं का भी पच्चक्खाण है ।

`मुट्ठिसहियं' यह संकेत पच्चक्खाण कहलाता है, इस संकेत पच्चक्खाण के चार आगार बतलाए गए हैं ।

नवकारसी के साथ संकेत पच्चक्खाण साथ में होने से उसके कुल चार आगार बतलाए हैं । नवकारसी के तो सिर्फ दो ही आगार हैं । नवकारसी में चार आहार का त्याग सिर्फ 48 मिनिट के लिए अर्थात् बहुत अल्प काल के लिए है, अतः इसमें मात्र दो ही आगार बतलाए हैं । ये दो आगार भी अशक्य परिहारवाले हैं अर्थात् इनसे बचना बहुत मुश्किल है इसलिए हर पच्चक्खाण के साथ ये दो आगार अवश्य होते हैं ।

अन्न सहस्सागारि अ, आउंटण गुरु अ पारि मह सव्व ।
एग बियासणि अट्ठ उ, सग इगठाणे अउंट विणा ।।19।।

शब्दार्थ

अन्न=अन्नत्थणाभोगेणं, **सह**=सहसागारेणं, **सागारी**=सागारिआगारेणं, **आउंटण**=आउंटण पसारेण, **गुरु**=गुरु अब्भुट्ठाणेणं, **पारि**=पारिट्ठावणियागारेण, **मह**=महत्तरागारेणं, **सव्व**=सव्वसमाहिवत्तियागारेणं, **एग**=एकासने में, **बियासणि**=बियासने में, **अट्ठ**=आठ, **सग**=सात, **इगठाणे**=एकलठाणे में, **अउंट**=आउंटणपसारेण, **विणा**=बिना ।

भावार्थ

एकासने तथा बियासने में अन्नत्थणाभोगेणं, सहसागारेणं, सागारिआगारेणं आउंटणपसारेणं, गुरु अब्भुट्ठाणेणं, पारिट्ठावणियागारेणं, महत्तरागारेणं और सव्व समाहि वत्तियागारेणं ये आठ आगार (अपवाद) होते हैं तथा एकलठाणे में आउंटणपसारेणं बिना 7 आगार होते हैं ।

विवेचन

एकासने तथा बियासने में अंग-उपांग के संकोच व प्रसारण की छूट

होती है, जबकि एकलठाणे में अंगोपांग के संकोच-प्रसार की छूट नहीं होती है अतः एकलठाणे में 7 ही आगार अपवाद बतलाए हैं; जबकि एकासने बीयासने में उसकी छूट होने के कारण एकासने बीयासने में आठ आगार बतलाए हैं ।

अन्नस्सह लेवा गिह, उक्खित्त पडुच्च-पारि-मह-सव्व ।
विगई निव्विगए नव, पडुच्चविणु अंबिले अट्ठ ।।20।।

शब्दार्थ

अन्न=अन्नत्थणाभोगेणं, **सह**=सहसागारेणं, **लेवा**=लेवालेवेणं, **गिह**=गिहत्थसंसट्ठेणं, **उक्खित्त**=उक्खित्त विवेगेणं, **पडुच्च**=पडुच्चमक्खिएणं, **पारि**=पारिट्ठावणियागारेणं, **मह**=महत्तरागारेणं, **सव्व**=सव्व समाहिवत्तियागारेणं, **विगइ**=विकृति, **निव्विगए**=नीवि में, **नव**=नौ, **पडुच्च**=पडुच्चमक्खिएणं, **विणु**=बिना, **अंबिले**=आयंबिल में, **अट्ठ**=आठ ।

भावार्थ

विगइ और नीवि के पच्चक्खाण में अन्नत्थणाभोगेणं, सहसागारेणं, लेवालेवेणं, गिहत्थसंसट्ठेणं, उक्खित्तविवेगेणं, पडुच्चमक्खिएणं, पारिट्ठावणियागारेणं, महत्तरागारेणं और सव्वसमाहिवत्तियागारेणं ये नौ आगार होते हैं, आयंबिल के पच्चक्खाण में पडुच्चमक्खिएणं को छोड़कर शेष आठ आगार होते हैं ।

विवेचन

आयंबिल में घी आदि स्निग्ध द्रव्य कल्पता नहीं है । पडुच्चमक्खिएणं आगार में नाम मात्र घी से चुपड़ी रोटी आदि की छूट होती है, अतः आयंबिल में यह आगार नहीं होता है ।

यहाँ नीवी और विगइ में 9 आगार कहे हैं, फिरभी 17 वीं गाथा के भावार्थ के अनुसार नीवी में 9 तथा 8 आगार भी होते हैं ।

पिंड विगई और द्रव विगई इन दोनों संबंधी नीवी में 9 आगार तथा सिर्फ द्रव विगइ संबंधी नीवी में `उक्खित्तविवेगेणं' छोड़कर शेष 8 आगार समझने चाहिए ।

उपवास-पानी-चरिम और संकेतादि अभिग्रह के आगार

अन्न सह पारि मह सव्व, पंच खमणे छ पाणिलेवाई ।
चउ चरिमंगुट्ठाइ-भिग्गहि अन्न सह मह सव्व ।।21।।

शब्दार्थ

अन्न=अन्नत्थणाभोगेणं, **सह**=सहसागारेणं, **पारि**=पारिट्ठावणियागारेणं, **मह**=महत्तरागारेणं, **सव्व**=सव्व समाहिवत्तियागारेणं, **पंच**=पाँच, **खवणे**=उपवास में, **छ**=छह, **पाणि**=पानी, **लेवाइ**=लेवालेवेणं आदि, **चउ**=चार, **चरिमं**=चरिम पच्चक्खाण, **अंगुट्ठाइ**=अंगुठसहियं आदि, **भिग्गहि**=अभिग्रह में, **अन्न**=अन्नत्थणाभोगेणं, **सह**=सहसागारेणं, **मह**=महत्तरागारेणं, **सव्व**=सव्वसमाहिवत्तियागारेणं ।

भावार्थ

उपवास के पच्चक्खाण में अन्नत्थणाभोगेणं, सहसागारेणं पारिट्ठावणियागारेणं, महत्तरागारेणं, सव्वसमाहिवत्तियागारेणं आदि पाँच आगार है ।

पानी के पच्चक्खाण में लेवेण वा आदि छह आगार हैं । चरिम पच्चक्खाण और अंगुठसहियं आदि अभिग्रह पच्चक्खाण में अन्नत्थणाभोगेणं, सहसागारेणं, महत्तरागारेणं और सव्वसमाहिवत्तियागारेणं ये चार आगार हैं ।

विवेचन

उपवास के पच्चक्खाण में अन्नत्थणाभोगेणं आदि पाँच आगार बतलाए हैं ।

पाणस्स अर्थात् अचित्तजलपान के पच्चक्खाण में लेवेण वा अलेवेण वा अच्छेण वा बहुलेवेण वा ससित्थेण वा असित्थेण वा इत्यादि छह आगार रहे हुए हैं ।

चरिम पच्चक्खाण दो प्रकार के हैं–

1) दिवसचरिम, जो दिवस के अंतिम समय में लिया जाता है ।

2) भवचरिम, जो इस भव के अंत में अर्थात् मृत्यु के पूर्व लिया जाता है।

इन दोनों पच्चक्खाणों में चार-चार आगार रहे हुए हैं, परंतु कोई अत्यंत समर्थ दृढ़ मनोबली आत्मा निरागार पच्चक्खाण करना चाहती है तो उसे महत्तरागारेणं और सव्व समाहिवत्तियागारेणं का कोई प्रयोजन नहीं होने से उसे सिर्फ अन्नत्थणाभोगेणं और सहसागारेणं ये दो ही आगार होते हैं।

पच्चक्खाणों में विविध आगार

क्र.	तप	आगार संख्या	आगार
1.	नवकारसी	2	अन्नत्थणाभोगेणं, सहसागारेणं
2.	पोरिसी एवं साढ पोरिसी	6	अन्नत्थणाभोगेणं, सहसागारेणं, पच्छन्नकालेणं, दिसामोहेणं, साहुवयणेणं, सव्वसमाहिवत्तियागारेणं।
3.	पुरिमड्ढ अवड्ढ	7	अन्नत्थणाभोगेणं, सहसागारेणं, पच्छन्नकालेणं, दिसामोहेणं, साहुवयणेणं, महत्तरागारेणं, सव्व समाहिवत्तियागारेणं
4.	एकासना बियासना	8	अन्नत्थणाभोगेणं, सहसागारेणं, सागारिआगारेणं, आउंटण पसारेणं, गुरु अब्भुट्ठाणेणं, पारिट्ठावणि-यागारेणं, महत्तरागारेणं, सव्वसमाहिवत्तियागारेणं।
5.	एकलठाणा	7	अन्नत्थणाभोगेणं, सहसागारेणं, सागारिआगारेणं, गुरु अब्भुट्ठाणेणं, पारिट्ठावणियागारेणं, महत्तरागारेणं, सव्व समाहिवत्तियागारेणं।
6.	विगइ-नीवि (पिंडविगइ संबंधी)	9	अन्नत्थणाभोगेणं, सहसागारेणं, लेवालेवेणं, गिह-त्थसंसट्ठेणं, उक्खित्तविवेगेणं पडुच्चमक्खिएणं, पारिट्ठवणियागारेणं महत्तरागारेणं, सव्व समाहिवत्तियागारेणं।
7.	विगइ-नीवि द्रवविगइ संबंधी	8	अन्नत्थणाभोगेणं, सहसागारेणं, लेवालेवेणं, गिह-त्थसंसट्ठेणं, पडुच्चमक्खिएणं, पारिट्ठावणियागारेणं, महत्तरागारेणं, सव्व समाहिवत्तियागारेणं।

8.	आयंबिल	8	अन्नत्थणाभोगेणं, सहसागारेणं, लेवालेवेणं, गिहत्थसंसट्ठेणं, उक्खित्तविवेगेणं, पारिट्ठवणियागारेणं, महत्तरागारेणं, सव्व समाहिवत्तियागारेणं ।
9.	उपवास	5	अन्नत्थणाभोगेणं, सहसागारेणं, पारिठावणिया-गारेणं, महत्तरागारेणं, सव्वसमाहिवत्तियागारेणं ।
10.	पाणाहार	6	लेवेण वा अलेवेणवा अच्छेण वा बहुलेवेण वा ससित्थेण वा असित्थेण वा
11.	अभिग्रह (संकेतसह)	4	अन्नत्थणाभोगेणं, सहसागारेणं महत्तरागारेणं, सव्व-समाहिवत्तियागारेणं
12.	प्रावरण	5	अन्नत्थणाभोगेणं, सहसागारेणं, चोल-पट्टागारेणं महत्तरागारेणं, सव्वसमाहिवत्तियागारेणं
13.	दिवस चरिम, भवचरिम, देसावगासिक	4	अन्नत्थणाभोगेणं, सहसागारेणं महत्तरागारेणं, सव्वसमाहिवत्तियागारेणं

दुद्ध महु मज्ज तिल्लं, चउरो दव विगइ चउर पिंडदवा ।
घय गुल दहियं पिसियं, मक्खण पक्कन्न दो पिंडा ।।22।।

शब्दार्थ

दुद्ध=दूध, **महु**=मधु, **मज्ज**=मद्य, **तिल्लं**=तैल, **चउरो**=चार, **दव विगइ**=द्रव विकृति, **चउर**=चार, **पिंडदवा**=मिश्र, **घय**=घी, **गुल**=गुड़, **दहियं**=दही, **पिसियं**=मांस, **मक्खण**=मक्खन, **पक्कन्न**=पक्वान्न, **दो**=दो, **पिंडा**=पिंड ।

भावार्थ

दूध, शहद, शराब और तैल ये चार द्रव विगइ हैं । घी, गुड़, दही और मांस ये चार पिंडद्रव (मिश्र) विगई हैं तथा मक्खन और पक्वान्न ये दो पिंडविगइ हैं ।

विवेचन

दूध आदि छह भक्ष्य विगइ और शहद आदि चार अभक्ष्य महाविगइ, इन 10 विगइयों के द्रव अर्थात् प्रवाही, ठोस अर्थात् कठिन और मिश्र आदि की अपेक्षा से तीन भेद बतलाते हैं।

1) द्रव विगइ :- जो विगइ पानी की तरह प्रवाही Liquid हो, उसे द्रव विगइ कहते हैं। दूध, मधु, शराब और तैल द्रव विगई हैं।

2) पिंड विगइ :- जिसके अंश परस्पर जुड़े हुए हों, उसे पिंडविगइ कहते हैं। मक्खन और पक्वान्न ये दो पिंडविगइ हैं।

3) द्रवपिंड विगइ :- जो विगइ द्रव और पिंड दोनों स्वभाववाली हों, उसे द्रव पिंड विगइ कहते हैं। अग्नि आदि के संपर्क से जो प्रवाहरूप बन जाय और अग्नि आदि के अभाव में पुनः पिंड रूप बन जाय, उसे द्रवपिंड विगइ कहते हैं। घी, गुड़, दही और मांस ये चार द्रवपिंड विगइ हैं।

समान आगारवाले पच्चक्खाण

पोरिसि-सड्ढ-अवड्ढं, दुभत्त निव्विगइ पोरिसाइ समा।
अंगुठ-मुट्ठि-गंठी-सचित्त-दव्वाइ भिग्गहियं ॥23॥

शब्दार्थ

पोरिसि=पोरसी, **सड्ढ**=सार्ध, **अवड्ढं**=अवड्ढ, **दुभत्त**=बियासना, **निव्विगइ**=नीवी, **पोरिसाइ**=पोरिसी आदि, **समा**=समान, **अंगुट्ठ**=अंगुट्ठसहियं, **मुट्ठि**=मुट्ठिसहियं, **गंठी**=गंठी सहियं, **सचित्त दव्वाइ**=सचित्त द्रव्य आदि, **भिग्गहियं**=अभिग्रह में।

भावार्थ

पोरिसी और सार्ध पोरिसी इन दो में अवड्ढ और पुरिमड्ढ इन दो में, बियासना और एकासना इन दो में, नीवी और विगइ इन दो में, अंगुठ-सहियं आदि आठ संकेत पच्चक्खाण और सचित्त द्रव्य आदि अभिग्रह में परस्पर समान आगार है।

विवेचन

पोरिसी अर्थात् सूर्योदय से एक प्रहर और साढपोरिसी अर्थात् डेढ़ प्रहर ! इन दोनों पच्चक्खाणों की आगार संख्या एक समान है ।

पुरिमड्ढ अर्थात् सूर्योदय से दो प्रहर, दिन का आधा भाग और अवड्ढ अर्थात् सूर्योदय से तीन प्रहर । इन दोनों के आगार एक समान हैं ।

बियासने और एकासने के आगार समान हैं, क्योंकि उनमें सिर्फ आहार कितनी बार लेने का है, यही भेद है । अंगुठ सहियं आदि आठ संकेत पच्चक्खाण और द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव का अभिग्रह पच्चक्खाण इन दोनों के आगार समान हैं अर्थात् उनके आगारों की संख्या भी उतनी ही है और वे ही आगार हैं ।

आगार का अर्थ

विस्सरणमणाभोगो, सहसागारो सयं मुहपवेसो ।
पच्छन्नकाल मेहाइ, दिसिविवज्जासु दिसिमोहो ॥24॥

शब्दार्थ

विस्सरणं=विस्मरण, **अणाभोगो**=अनाभोग, **सहसागारो**=सहसात्कार, **सयं**=स्वयं, **मुहपवेसो**=मुख में प्रवेश, **पच्छन्नकाल**=प्रच्छन्नकाल, **मेहाइ**=मेघ आदि, **दिसि**=दिसा, **विवज्जासु**=विपर्यास में, **दिसिमोहो**=दिशा का भ्रम ।

भावार्थ

भूल जाना उसे अनाभोग कहते हैं । अचानक मुँह में आ जाना उसे सहसात्कार कहते हैं । बादल आदि से ढका हो, उसे प्रच्छन्न काल कहते हैं तथा दिशा, सही दिशा को भूल जाना, उसे दिग्मोह कहते हैं ।

विवेचन

नवकारसी आदि विविध पच्चक्खाणों में कुल 22 प्रकार के आगार बतलाए हैं । आगार अर्थात् अपवाद !

जिस प्रकार कायोत्सर्ग करते समय श्वास लेने आदि की क्रिया की छूट रखी जाती है, उसी प्रकार नवकारसी आदि विविध प्रकार के तप करते

समय भी कुछ अपवादों की छूट रखी जाती है । तात्पर्य यह है कि यद्यपि जानबूझकर इन अपवादों का सेवन नहीं करना चाहिए परंतु संयोगवश या परिस्थितिवश इन आगारों का सेवन हो गया हो तो भी ग्रहण किए गए पच्चक्खाण का भंग नहीं होता है । पच्चक्खाण संबंधी 22 आगारों के स्पष्ट स्वरूप का वर्णन इस गाथा से आगे की गाथाओं में किया जाएगा ।

इस गाथा में चार आगारों का स्वरूप बतलाया है–

1) अनाभोगेण :- आभोग अर्थात् उपयोग । ग्रहण किए हुए पच्चक्खाण को याद रखना, उसे आभोग कहते हैं और ग्रहण किए हुए पच्चक्खाण का ख्याल नहीं रहना, उसे अनाभोग कहते हैं ।

जो भी पच्चक्खाण ग्रहण किया हो, उसका सतत ख्याल रखना चाहिए, परंतु कभी कभार ख्याल न रहे और उससे विपरीत प्रवृत्ति हो जाय तो भी यह आगार-अपवाद रखने के कारण ग्रहण किए पच्चक्खाण का भंग नहीं होता है ।

जैसे-आयंबिल का पच्चक्खाण किया हो और भूल से शक्कर के दाने मुँह में डाल दिए । ऐसी स्थिति में पच्चक्खाण का भंग नहीं होता है । परंतु मुँह में शक्कर के दाने डालने के बाद तत्काल ख्याल आ जाय तो आगे खाने की क्रिया बंद कर देनी चाहिए और मुँह में रहे कौर को भी बाहर निकाल देना चाहिए । और अपने मन के परिणाम दूषित न हों, इसके लिए गुरु-भगवंत के पास जाकर अपने पाप का प्रायश्चित्त कर लेना चाहिए ।

2. सहसागारेण :- सहसा अर्थात् अचानक ! कुछ सोचा-विचारा भी न हो और कुछ घटना बन जाय तो उसे सहसात्कार कहते हैं ।

हर पच्चक्खाण में यह अपवाद अवश्य रखा जाता है ।

दृष्टांत-उपवास का पच्चक्खाण हो और अचानक छाश का बिलौना करते समय कुछ छींटे मुँह में आ जाँय तो यह सहसात्कार कहलाता है । अचानक बरसात हो जाय और मुँह में पानी चला जाए तो उसे भी सहसात्कार कहते हैं । यह आगार रखने से ग्रहण किए पच्चक्खाण का भंग नहीं होता है ।

3) पच्छन्नकालेण :- आकाश में बादल छाए हों, आकाश में धूल

उड़ रही हो अथवा सूर्य पर्वत की आड़ में आ जाने से पता ही न चले कि आकाश में सूर्य कहाँ तक चढ़ गया है। ऐसी परिस्थिति में सिर्फ अनुमान से समय का निश्चय कर पोरिसी आदि का पच्चक्खाण, पोरिसी आदि आने के पहले ही पार लिया जाय तो भी पच्चक्खाण का भंग नहीं होता है।

अनुमान से पच्चक्खाण पार कर भोजन के लिए बैठे हों और बाद में स्पष्ट ख्याल आ जाय कि पच्चक्खाण आने में 10 मिनिट की देरी है तो उसी समय आगे खाना बंद कर देना चाहिए और बाकी का समय पूरा होने के बाद ही भोजन करना चाहिए। ख्याल आ जाने के बाद भी आहार की क्रिया चालू रखे तो पच्चक्खाण का भंग ही कहलाता है।

4) दिसामोहेण :- पूर्व दिशा को पश्चिम दिशा और पश्चिम दिशा को पूर्व दिशा मानकर पच्चक्खाण का समय पूरा होने के पहले ही 'पच्चक्खाण आ गया' मानकर पच्चक्खाण पार ले तो भी पच्चक्खाण का भंग नहीं होता है। हाँ ! ख्याल आ जाने के बाद तुरंत ही आहार की क्रिया छोड़ देनी चाहिए। यह दिशा मोह, मतिदोष से होता है, परंतु जानबूझकर नहीं, इसलिए पच्चक्खाण में यह आगार रखा गया है।

साहुवयण उग्घाडा, पोरिसि तणुसुत्थया समाहित्ति।
संघाइकज्ज महत्तर, गिहत्थबंदाइ सागारी ॥25॥

शब्दार्थ

साहुवयण=साधु के वचन, **उग्घाडा-पोरिसी**=पादोन पोरिसी, **तणु**=शरीर, **सुत्थया**=स्वस्थता से, **समाहि**=समाधि, **त्ति**=वह, **संघाइकज्ज**=संघ आदि के कार्य, **महत्तर**=बड़ा, **गिहत्थ**=गृहस्थ, **बंदाइ**=बंदी आदि, **सागारी**=गृहस्थ।

भावार्थ

उग्घाडा पोरिसी यह साहुवयणेणं आगार है। शरीर की स्वस्थता यह समाहिवत्तियागारेणं है। संघ आदि का कार्य महत्तरागारेणं है और गृहस्थबंदी आदि सागारियागारेणं है।

विवेचन

पूर्व गाथा में चार आगारों का वर्णन किया । इस गाथा में आगे के चार आगारों का स्वरूप स्पष्ट कर रहे हैं ।

5) साहुवयणेण :- साधु-साध्वी भगवंत प्रतिदिन अपने पात्र की प्रतिलेखना के लिए सुबह पोरिसी पढ़ाते हैं । सूर्योदय से छह घड़ी बाद यह पोरिसी पढ़ाई जाती है ।

पोरिसी पढ़ाने के पहले किसी साधु ने कहा, `पोरिसी आ गई है ।' यह सुनकर कोई गृहस्थ पोरिसी का पच्चक्खाण आ गया है, ऐसा मानकर पोरिसी का पच्चक्खाण पार ले तो भी उसके पच्चक्खाण का भंग नहीं होता है । परंतु भोजन करते समय ख्याल में आ जाय तो तुरंत ही भोजन बंद कर देना चाहिए और शेष रहे समय के लिए प्रतीक्षा करनी चाहिए ।

6) सव्व समाहिवत्तियागारेणं :- पोरिसी आदि का पच्चक्खाण किया हो परंतु शरीर में कोई भयंकर पीड़ा उत्पन्न हो जाय तो उस कारण भयंकर आर्तध्यान हो सकता है । आर्तध्यान से आत्मा की दुर्गति हो जाती है, अतः अपने भावी अनर्थ से बचने के लिए पच्चक्खाण आने के पहले ही पच्चक्खाण पार ले और औषध आदि ले ले तो भी इस आगार से पच्चक्खाण का भंग नहीं होता है ।

तप से भी समाधि की कीमत ज्यादा है अतः तप को गौण करके भी समाधि का रक्षण करना जरूरी है । अतः अपनी समाधि के रक्षण के लिए पच्चक्खाण का भंग करें तो भी वह भंग नहीं गिना जाता है ।

पोरिसी आदि का पच्चक्खाण करनेवाला वैद्य हो और उसे ग्लान साधु आदि की चिकित्सा के लिए जल्दी जाना पड़े तो वह पोरिसी के पच्चक्खाण के पहले भी पच्चक्खाण पार ले तो उसका पच्चक्खाण इस आगार के कारण भंग नहीं गिना जाता है ।

7) महत्तरागारेणं :- पच्चक्खाण से होनेवाली कर्मनिर्जरा की अपेक्षा ज्यादा निर्जरा हो सकती है ऐसा संघ, शासन या चैत्य का कोई काम आ पडे और वह कार्य अन्य किसी पुरुष के द्वारा शक्य न हो तो विशेष लाभ को पाने के लिए पच्चक्खाण आने के पहले ही पोरिसी का पच्चक्खाण पार ले तो भी पच्चक्खाण का भंग नहीं होता है ।

नवकारसी के पच्चक्खाण में यह आगार नहीं है, क्योंकि नवकारसी का समय का प्रमाण बहुत थोड़ा है । पुरिमड्ड आदि के पच्चक्खाण में यह आगार होता है ।

8) सागारियागारेणं :- साधु-साध्वी किसी भी गृहस्थ की उपस्थिति में आहार नहीं लेते हैं । साधु-साध्वी एकासना कर रहे हों और उस समय अचानक कोई गृहस्थ आ जाय, यदि वह गृहस्थ थोड़े ही समय में चले जाने वाला हो, तब तो ठीक, थोड़ी देर के लिए आहार लेना बंद कर देना चाहिए, परंतु वह गृहस्थ ज्यादा देर रुकता हो तो साधु-साध्वी अपने स्थान से उठकर अन्य स्थान में जाकर भी शेष आहार वापरें तो भी इस आगार से उनके पच्चक्खाण का भंग नहीं होता है ।

कोई गृहस्थ एकासनादि कर रहा हो, उस समय कोई ऐसा व्यक्ति आ जाय, जिसकी नजर बराबर न हो अथवा जिसकी नजर से भोजन पचता न हो तो वह उस स्थान से उठकर अन्य स्थान में जाकर बाकी रहा भोजन करे तो भी उसके पच्चक्खाण का भंग नहीं होता है ।

गृहस्थ के उपलक्षण से साँप, आग, बाढ़, घर का गिर जाना आदि भय उपस्थित होने पर भी अपने स्थान से उठकर अन्य स्थान में जा सकते है ।

साधु की अच्छी-बुरी गोचरी को देखकर गृहस्थ को दुर्भाव पैदा हो सकता है । अच्छी गोचरी देखकर गृहस्थ यह सोचे कि अच्छा-अच्छा खाना यही साधु जीवन है क्या ? अथवा रूखा-सूखा देखकर उसका संयम लेने का भाव ही उतर जाय । अतः साधु को गृहस्थ की उपस्थिति में आहार नहीं लेना चाहिए ।

आउंटणमंगाणं, गुरु पाहुण साहु गुरु अब्भुट्ठाणं ।
परिठावण विहिगहिए, जइण पावरणि कडिपट्टो ।।26।।

शब्दार्थ

आउंटण=आकुंचन, **अंगाणं**=अंगों को लंबाँ-चौड़ा करना, **अंगाणं**=हाथ पैर आदि, **गुरु**=सद्‌गुरु, **पाहुण**=प्राघूर्णिक, **साहुगुरु**=साधु गुरु, **अब्भुट्ठाणं**=अभ्युत्थान, **परिठावण**=परठना, **विहिगहिए**=विधिपूर्वक ग्रहण किया हुआ, **जईण**=साधु को, **पावरणि**=प्रावरण, **कडिपट्टो**=चोलपट्टा ।

भावार्थ

शरीर के अंगों को फैलाना उसे **आउंटण पसारेणं** कहते हैं । गुरु अथवा पाहुने मुनि के आगमन पर खड़ा होना उसे **गुरु अब्भुट्ठाणेणं** कहते हैं । विधिपूर्वक ग्रहण करने के बाद बढ़ा हुआ आहार गुर्वाज्ञा से उपयोग करना, उसे **पारिट्ठावणियागारेणं** कहते हैं और वस्त्र के पच्चक्खाण में **चोलपट्टागारेणं** आगार भी साधु को होता है ।

विवेचन

प्रस्तुत गाथा में प्रत्याख्यान संबंधी चार आगारों के अर्थ का निर्देश किया है ।

9) आउंटण पसारेणं :- एकासने आदि के पच्चक्खाण में हाथ-पैर आदि के अवयवों को लंबे समय तक स्थिर रखकर न बैठ सके तो हाथ-पैर आदि को संकुचित तथा लंबा करने पर भी इस आगार को रखने से पच्चक्खाण का भंग नहीं होता है ।

10) गुरु अब्भुट्ठाणेणं :- एकासना आदि करते समय अचानक गुरु महाराज आ जायें अथवा कोई ज्येष्ठ साधु पाहुने के रूप में आ जाय तो उस समय उनके प्रति विनयभाव बताने के लिए अपने आसन पर से खड़े हो जायें तो भी इस आगार के कारण पच्चक्खाण का भंग नहीं होता है ।

11) पारिट्ठावणियागारेणं :- साधु-साध्वीजी भगवंतों को उतनी ही गोचरी (आहार-पानी) वहोरने का अधिकार है, जितना वे वापर सकते हैं । आहार बढ़ जाय तो उसे दूसरे दिन के लिए रखने की छूट नहीं है । अतः साधु-साध्वीजी को गोचरी वहोरते समय खूब ध्यान रखना पड़ता है । परंतु कभी-कभार ध्यान नहीं रहा और गोचरी ज्यादा आ गई हो तो उसे न तो दूसरे दिन के लिए रख सकते हैं और न ही उसे गृहस्थ को वापस दे सकते हैं ।

बढ़ी हुई गोचरी को परठा जाय तो ज्यादा दोष लगता है, अतः गुरु की आज्ञा से एकासना आदि कर लेने के बाद भी इस आगार के अनुसार बढ़ी हुई गोचरी वापर ले तो भी पच्चक्खाण का भंग नहीं होता है ।

गुर्वाज्ञा से बढ़ा हुआ आहार उपवास व आयंबिल में भी वापर ले तो भी इस आगार से पच्चक्खाण का भंग नहीं माना जाता है ।

बढ़ी हुई गोचरी में आहार और पानी दोनों हों तो चोविहार उपवास-वाले भी वापर सकते हैं, परंतु पानी नहीं बढ़ा हो तो चोविहार उपवासवाले नहीं वापर सकते हैं ।

यह आगार एकासने से लेकर अट्ठम तक के पच्चक्खाण में होता है, उससे आगे नहीं होता है । परठने योग्य आहार वापरा हो तो भी उसकी अनुमोदना नहीं करनी चाहिए अथवा खुश नहीं होना चाहिए । जैसे-गुर्वाज्ञा से यह आहार वापरने को मिला तो अच्छा हुआ, नहीं तो आज मुझे भूख सहन नहीं होती ।'

इसके संबंध में विशेष विधि गुरुगम से समझने योग्य है ।

12) चोलपट्टागारेणं :- वस्त्र नहीं पहिनने पर भी अविकारी रहने-वाले जितेन्द्रिय महामुनि कभी-कभी कटिवस्त्र का भी अभिग्रह पच्चक्खाण करते है । ऐसे वस्त्र के त्यागी मुनि वस्त्र रहित बैठे हों और अचानक कोई गृहस्थ आ जाय तो उठकर तुरंत ही चोलपट्टा पहिन लेते हैं, इस प्रकार चोलपट्टा पहिनने पर भी उनके अभिग्रह पच्चक्खाण का भंग नहीं होता है ।

यह आगार सिर्फ मुनियों को होता है । वर्तमान समय में वस्त्र के पच्चक्खाण का अभाव होने से पच्चक्खाण में यह आगार नहीं बोला जाता है और साध्वीजी भी हमेशा वस्त्रधारी होने से उनके लिए भी इस आगार का निषेध है ।

खरडिय लूहिय डोवाइ, लेव संसट्ठ डुच्च मंडाइ ।
उक्खित्त पिंड विगईण, मक्खियं अंगुलीहिं मणा ॥27॥

शब्दार्थ : खरडिय=बिगड़ा हुआ, **लूहिय**=पूछा हुआ, **डोव आइ**=कड़छी, **लेव**=लेवालेवेण आगार, **संसट्ठ**=मिश्र किया हुआ, **डुच्च**=शाक, **मंडाइ**=पूड़ा आदि, **उक्खित्त**=उठाया हुआ, **पिंडविगइण**=पिंड विगइ को, **मक्खिएण**=म्रक्षित, **अंगुलीहिं**=अंगुलियों द्वारा, **मणा**=किंचित् ।

भावार्थ

अकल्पनीय द्रव्य से युक्त चम्मच आदि को कपडे आदि से पोंछा हो, वह लेवालेवेणं आगार, शाक तथा मांडा आदि को गृहस्थ ने विगइ से मिश्र किया हो, वह गिहत्थ संसट्ठेणं आगार, पिंड विगई को उठा लिया हो वह

उक्खित्त विवेगेणं आगार तथा रोटी आदि को थोडीसी विगई से मिश्रित किया गया हो वह **पडुच्चमक्खिएणं** आगार है ।

विवेचन

इस गाथा में चार आगारों का वर्णन किया गया है । ये आगार आयंबिल व नीवि संबंधी हैं ।

13) लेवालेवेणं :- आयंबिल और नीवि में न कल्पे ऐसी विगइ व कांजी के द्वारा लिप्त पात्र को लेप कहते हैं । हाथ आदि द्वारा साफ किए पात्र को अलेप कहते हैं अर्थात् पहले जिस पात्र में विगय, कांजी आदि रखी हो और बाद में उसे खाली कर निर्लेप कर दिया हो, फिर भी उसमें विगय के कण रह गए हों, ऐसे पात्र में आयंबिल का भोजन डालकर गृहस्थ, साधु को देवे तो भी साधु इस आगार के कारण उस आहार को ग्रहण कर सकता है । भोजन में विगय के अवयव आने पर भी पच्चक्खाण का भंग नहीं होता है ।

14) गिहत्थसंसट्ठेणं :- गृहस्थ एक वस्तु बहोराकर दूसरी वस्तु बहोराता है तब हाथ में लगे पहली वस्तु के कुछ अंश दूसरी वस्तु को भी लगते हैं । पहली वस्तु का त्याग किया हो, फिर भी इस आगार से दूसरी वस्तु कल्पती है ।

जैसे-पहले चुपड़ी हुई रोटी बहोराई हो और फिर लूखी रोटी बहोराते हों तो पहली रोटी पर का थोड़ा घी हाथ को लगेगा, फिर भी इस आगार के कारण आयंबिल में वह लूखी रोटी कल्पती है ।

बहोराते समय त्याज्य वस्तु का लेप, हाथ या भोजन को लगा हो, फिर भी दी जा रही अत्यक्त वस्तु इस आगार का विषय बनती है ।

15) उक्खित्तविवेगेण :- उत्क्षिप्त-अलग करने योग्य विगय । रोटी आदि के ऊपर गुड़ आदि पिंडविगइ रखी हो और बाद में उसको उठा दिया हो, फिर भी पिंडविगइ का कुछ अंश रह गया हो तो कुछ स्पर्शवाली वह लूखी रोटी साधु-साध्वीजी आयंबिल के पच्चक्खाण में भी बहोरें तो भी इस आगार के कारण उनके पच्चक्खाण का भंग नहीं होता है ।

यह आगार सिर्फ साधु-साध्वीजी को ही होता है, गृहस्थों को नहीं होता है।

रुक्ष रोटी पर रहे अग्राह्य द्रव्य के कण यदि अलग किए जा सकते हों तो उन्हें अवश्य दूर करना चाहिए, अन्यथा पच्चक्खाण का भंग होता है।

16) पडुच्चमक्खिएणं :- रोटी को कोमल बनाते समय नीवि में न कल्पे ऐसे घी आदि विगइ का हाथ लगने में आए तो एसी अल्प लेपवाली रोटी आदि नीवि के पच्चक्खाण में लेने पर भी इस आगार के कारण पच्चक्खाण का भंग नहीं होता है।

यह आगार सिर्फ नीवि के पच्चक्खाण में सिर्फ साधु-साध्वी को होता है।

सिर्फ निर्दोष गोचरी के लक्ष्यपूर्वक अशक्य परिहार के रूप में अल्प मोणवाले खाखरे व रोटी, अपवाद से आयंबिल के पच्चक्खाण में कल्पते हैं।

पानी के छह आगार

लेवाडं आयामाइ, इयर सोवीरमच्छमुसिणजलं ।
धोयण बहुल ससित्थं, उस्सेइम इयर सित्थविणा ।।28।।

शब्दार्थ

लेवाडं=लेपकृत, **आयामाइ**=आचाम्ल, ओसामण, **इयर**=दूसरा अलेपकृत, **सोवीर**=सोवीर=कांजी, **अच्छ**=निर्मल, **उसिणजलं**=उष्णजल, **धोयण**=चावल आदि का धोवण, **बहुल**=बहुल, **ससित्थं**=दाने सहित, **उस्सेइम**=आटे से लगा हुआ, **इयर**=दूसरा, **सित्थविणा**=आटे के मिश्रण बिना।

भावार्थ

ओसामण आदि लेपकृत, कांजी आदि अलेपकृत, उष्णजल, धोवण का पानी, सिक्थ सहित पानी, आटा आदि सहित पानी, तथा आटे आदि से रहित पानी असिक्थ ये पानी के छह आगार हैं।

विवेचन

तिविहार के पच्चक्खाण में तीन प्रकार के आहार का त्याग होता है,

सिर्फ पानी की छूट होती है । साधु को भिक्षा में निर्दोष पानी मिलना दुर्लभ होता है, अतः निर्दोष पानी के अभाव में पानी की प्राप्ति के लिए कुछ आगार अपवाद रखे गए हैं ।

1) लेवेण वा :- अनाज पकाने के बाद अनाज के कण से रहित स्वच्छ पानी को ओसामण कहते हैं ।

इमली, खजूर और अंगूर को धोने के बाद नितरा हुआ स्वच्छ पानी, जिसमें खजूर आदि के चबाने का भाग न हो तो वह इस आगार के कारण अचित्त-भोजी को चलता है ।

अशन, खादिम या स्वादिम पदार्थों के रजकण से मिश्र हो तो भी वह लेपकृत पानी तिविहार के पच्चक्खाण में इस आगार के कारण चलता है । द्राक्षा आदि का पानी जिस भाजन में रहता है, वह पानी उस भाजन को लेपवाला अर्थात् चिकना करता है, अतः इस पानी को लेपकृत कहते हैं ।

2) अलेवेण वा :- शुद्ध निर्दोष जल की प्राप्ति के अभाव में सोवीर-कांजी (छाश की आछ) का अलेपकृत पानी मिले तो उपवास आदि में उस पानी का उपयोग करने पर भी पच्चक्खाण का भंग नहीं होता है । यह पानी जिस भाजन में रहता है, उस भाजन को चिकना नहीं करता है, अतः कांजी आदि के पानी को अलेपकृत कहा जाता है ।

3) अच्छेण वा :- अच्छ अर्थात् निर्मल जल तीन बार उफान आया पानी सर्वथा अचित्त होता है । वह पानी पीने से तिविहार उपवास का भंग नहीं होता है । सामान्यतया गृहस्थ को तो 'पाणस्स' के पच्चक्खाण में उष्ण जल ही पीना चाहिए । शेष पाँच आगार गृहस्थ के लिए नहीं, बल्कि साधु-साध्वी के लिए ही होते हैं । फल आदि धोवण जल भी इसी आगार में आता है ।

4) बहुलेवेण वा :- तिल का धोवण या चावल का धोवण आदि भी गडुलजल या बहुलजल कहलाता है । यह पानी पीने से भी इस आगार के कारण पच्चक्खाण का भंग नहीं होता है ।

5. ससित्थेण वा :- सित्थ अर्थात् अनाज का दाना, दाने सहित जल को ससित्थ कहते हैं । ओसामण आदि पानी में पकाया हुआ दाना रह

गया हो अथवा पकाए हुए दाने का कुछ अंश रह गया हो तो वह पानी पीने से इस आगार के कारण पच्चक्खाण का भंग नहीं होता है। उसी प्रकार तिल के धोवण व तांदुल के धोवण में तिल आदि का कच्चा दाना रह गया हो तो भी पच्चक्खाण का भंग नहीं होता है।

उत्स्वेदिम का तात्पर्य इस प्रकार है-पिष्ट जल और पिष्ट धोवण, दोनों प्रकार का उत्स्वेदिम जल ससित्थ कहलाता है।

मदिरादि बनाने के लिए आटे को भिगोया हो वह पिष्ट जल कहलाता है।

आटे से बिगड़े हाथ से भाजन आदि धोए हों वह पिष्ट धोवण कहलाता है। दोनों प्रकार के पानी में आटे के रजकण आते हैं। `ससित्थेण आगार के कारण वह पानी पीने से भी पच्चक्खाण का भंग नहीं होता है।'

6) असित्थेण वा :- ससित्थजल को छानने के बाद वह जल असित्थ कहलाता है। इस आगार के कारण उस जल को पीने से भी पच्चक्खाण का भंग नहीं होता है।

यहाँ हर आगार के बाद `वा' शब्द का प्रयोग किया है, वह छह आगारों में प्रतिपक्षी दो-दो आगारों की समानता बताने के लिए है।

1) अलेवेण वा :- अर्थात् लेप रहित जल से पच्चक्खाण का भंग नहीं होता है, उसी प्रकार लेपवाले जल से भी पच्चक्खाण का भंग नहीं होता है।

2) अच्छेण वा :- निर्मल उष्ण जल से पच्चक्खाण का भंग नहीं होता है, उसी प्रकार बहुल जल से भी पच्चक्खाण का भंग नहीं होता है।

3) ससित्थ जल :- से पच्चक्खाण का भंग नहीं होता है, उसी प्रकार असित्थ जल से भी पच्चक्खाण का भंग नहीं होता है।

दश विगइ के भेद

पण चउ चउ चउ दु दुविह, छ भक्ख दुद्धाइ विगइ इग वीसं।
ति दु ति चउविह अभक्खा, चउ महुमाइ विगइ बार ॥29॥

शब्दार्थ

पण=पाँच, **चउ**=चार, **दु**=दुविह, **दो**=दो प्रकार, **छ**=छह, **भक्ख**=भक्ष्य, **दुद्धाइ**=दूध आदि, **इगवीसं**=इक्कीस, **ति**=तीन, **दु**=दो, **चउविह**=चार प्रकार, **अभक्खा**=अभक्ष्य, **चउ**=चार, **महुमाइ**=मधु आदि, **विगइ**=विगइ, **बार**=बारह।

भावार्थ

दूध आदि छह भक्ष्य विगइ के 5-4-4-4-2 और 2 इस प्रकार कुल 21 भेद हैं तथा मधु आदि चार अभक्ष्य विगइ के 3-2-3 और 4 इस प्रकार कुल 12 भेद हैं।

विवेचन

मन में विषय-वासना और विकार भाव पैदा करे, उसे विगइ कहते हैं। विगइ के कुल 10 भेद हैं, इनमें छह भक्ष्य विगइ हैं और चार अभक्ष्य विगइ हैं।

जो छह भक्ष्य विगइ हैं, उनके भी कुल 21 प्रभेद हैं और चार अभक्ष्य महाविगइ के 12 प्रभेद हैं। इस प्रकार 10 विगइ के कुल 33 भेद हैं।

जैसे- दूध विगइ के 5 भेद
दही विगइ के 4 भेद
घी विगइ के 4 भेद
तैल विगइ के 4 भेद
गुड विगइ के 2 भेद
पक्वान्न विगइ के 2 भेद = 21 भेद
शहद विगइ के 3 भेद
शराब विगइ के 2 भेद
मांस विगइ के 3 भेद
मक्खण विगइ के 4 भेद = 12 भेद हुए

भक्ष्य विगइ के 27 भेद

खीय घय दहिय तिल्लं गुल पक्वन्नं छ भक्ख विगईओ।
गो महिसि उट्टि अय एलगाण पण दुद्ध अह चउरो ॥30॥

घय दहिया उट्टि विणा, तिल सरिसव अयसि लट्ट तिल्लचऊ ।
दव गुड पिंडगुडा दो, पक्वन्नं तिल्ल घयतलियं ।।31।।

शब्दार्थ

खीर=दूध, **घय**=घी, **दहिय**=दही, **तिल्लं**=तैल, **गुल**=गुड़, **पक्वन्नं**=पक्वान्न, **छ**=छ, **भक्ख**=भक्ष्य, **विगइओ**=विगइयाँ, **गो**=गाय, **महिसि**=भैंस, **उट्टि**=ऊँट, **अय**=बकरी, **एलगाण**=भेड़, **पण**=पाँच, **दुद्ध**=दूध, **अह**=अब, **चउरो**=चार, **घय**=घी, **दहिया**=दही, **उट्टि**=ऊँट, **विणा**=बिना, **तिल**=तिल, **सरिसव**=सरसों, **अयसि**=अलसी, **लट्ट**=कुसुंभा, **तिल्ल**=तैल, **चउ**=चार, **दव**=द्रव, **गुड़**=गुड़, **पिंडगुडा**=पिंडीभूत गुड़, **दो**=दो, **पक्वन्नं**=पक्वान्न, **तिल्ल**=तैल, **घय**=घी, **तलियं**=तला हुआ ।

भावार्थ

दूध, घी, दही, तैल, गुड़ और पक्वान्न ये छह भक्ष्य विगइयाँ हैं। गाय, भैंस, ऊँटनी, बकरी और भेड़ की अपेक्षा दूध के पाँच प्रकार हैं। ऊँटनी को छोड़कर शेष चार का दही व घी भी चार प्रकार का है । तैल तिल, सरसों, अलसी और कुसुंभा की अपेक्षा चार प्रकार का है। गुड़ द्रवगुड़ व पिंडगुड़ की अपेक्षा दो प्रकार का है। पक्वान्न दो प्रकार का है-घी और तैल में तला हुआ ।

विवेचन

गाय, भैंस, ऊँटनी, बकरी व भेड़ का दूध विगइ में आता है। स्त्री का दूध विगइ नहीं कहलाता है। दूध में से दही और घी बनता है, परंतु ऊँटनी के दूध में से दही और घी नहीं बनता है अतः दही और घी के चार ही भेद हैं ।

तैल के बहुत प्रकार हैं, परंतु तिल, सरसों, अलसी और कुसुंभा का तैल विगई में आता है। इसके सिवाय कपास, मूंगफली, खसखस, नारियल, एरंडी व सीसम का तैल विगइ में नहीं आता है फिर भी ये लेपकृत तो कहलाते ही हैं, अतः आयंबिल में इनका अवश्य त्याग होता है ।

दूध के 5 नीवियाते

पयसाडि खीर पेया, वलेहि दुद्धट्टि दुद्धविगइ गया ।
दक्ख बहु अप्पतंदुल, तच्चुनंबिलसहियदुद्धे ।।32।।

शब्दार्थ

पयसाडि=पय:शाटी, **खीर**=खीर, **पेया**=पेय, **अवलेहिका**=अवलेह, **दुद्धट्टि**=दुग्घाटि, **दुद्धविगइगया**=दूध के नीवियाते, **दक्ख**=द्राक्ष, **बहु**=ज्यादा, **अप्पतंदुल**=कम चावल, **तच्चुन्न**=उसका चूर्ण, **अंबिल**=खटाई, **सहिय**=सहित, **दुद्धे**=दूध में ।

भावार्थ

द्राक्ष सहित उबाला हुआ दूध (प्राय: बासुंदी) उसे पय:शाटी कहते हैं। चावल सहित पकाए हुए दूध को खीर कहते हैं। थोड़े चावल से युक्त पकाये हुए दूध को पेया कहते हैं। चावल के आटे के साथ पकाए हुए दूध को अवलेहिका कहते हैं। खट्टे पदार्थ के साथ पकाए दूध को दुग्धाटी कहते हैं। इस तरह पाँच प्रकार से पकाए हुए दूध को **नीवियाता** कहते हैं ।

विवेचन

साधु-साध्वीजी भगवंतों को दशवैकालिक आदि आगम शास्त्रों के अधिकारी बनने के लिए ज्ञानाचार के चौथे आचार रूप योगोद्वहन करने होते हैं। उसी प्रकार गृहस्थ श्रावक-श्राविकाओं को भी नवकार महामंत्र आदि के अधिकारी बनने के लिए उपधान तप करना होता है ।

साधु-साध्वी भगवंतों के योगोद्वहन एवं श्रावक-श्राविकाओं के उपधान की नीवी में कच्ची विगई का सर्वथा त्याग होता है। सिर्फ शरीर को थोड़ा आधार देने के लिए नीवियाते की छूट होती है ।

अन्य द्रव्यों का संयोग होने पर विगई के पदार्थों में रही विकार-शक्ति नष्ट हो जाती है ।

दूध विगई के पाँच नीवियाते हैं -

1) पय:शाटी :- द्राक्षा सहित पकाए दूध को पय:शाटी कहते हैं। हाल में द्राक्षा रहित सिर्फ दूध को उबालकर बासुंदी बनाई जाती है और उसे नीवियाते में गिनने का व्यवहार है।

2) खीर :- बहुत से चावल के साथ दूध को पकाकर खीर बनाई जाती है। पकाए हुए चावल डालकर भी खीर बनाते हैं।

3) पेया :- थोड़े से चावल डालकर दूध को उबालकर पेया बनाते हैं, उसे दूधपाक कहते हैं।

'प्रवचन सारोद्धार' की टीका में दूध की कांजी को पेया कहा है जिसमें चावल थोड़े आते हैं (1 लीटर दूध में 10 ग्राम चावल, ऐसे दूध को उबालकर गाढ़ा किया जाता है।)

4) अवलेहिका :- चावल के आटे के साथ उबाला हुआ दूध।

5) दुग्धाटी :- दूध में खट्टी वस्तु डालकर दूध को फाड़कर बनाये गये पनीर को दुघट्टी कहते हैं। खट्टेपन के कारण दूध फटकर रुपांतरित होता है, अतः नीवियाता होता है। दूध की अत्यंत रूपांतर अवस्थारूप मावा, बरफी, पेड़ा आदि भी उपलक्षण से नीवियाते हैं।

घी और दही के नीवियाते

निब्भंजण वीसंदण, पक्कोसहितरिय किट्टि पक्कघयं।
दहिए करंब सिहरिणि, सलवण दहि घोल-घोलवडा ।।33।।

शब्दार्थ

निब्भंजण=निर्भंजन घी, **वीसंदण**=विस्पंदन घी, **पक्क**=उबाला हुआ, **ओसही**=औषधि, **तरिय**=तरी, **पक्कघयं**=पकाया हुआ घी, **दहिए**=दही में, **सिहरिणि**=श्रीखंड, **घोल**=छना हुआ दही।

भावार्थ

1. निर्भंजन :- पक्वान्न तलने के बाद कढ़ाई में बचे हुए जले हुए घी को निर्भंजन कहते हैं।

2. विस्पंदन :- दही की तर और आटे को मिलाकर जो कुलेर तैयार करते हैं, उसे विस्पंदन कहते हैं अथवा आधे जले घी में चावल

डालकर जो भोजन तैयार किया जाता है, उसे विस्पंदन कहते हैं ।

3. पक्वौषधितरित :- औषधि डालकर उबले हुए घी की तरी को पक्वौषधितरित कहते हैं ।

4. किट्टी :- घी को उबालने पर जो घी का मैल ऊपर आता है उस मैल को किट्टी कहते हैं ।

5. पक्व घी :- आँवले आदि औषधि डालकर घी को उबाला जाता है, उसे पक्वघृत कहते हैं ।

ये पाँच घी के नीवियाते हैं ।

दही के पाँच नीवियाते

1) करंब :- दही में चावल डालकर जो तैयार किया जाता है, उसे करंब कहते हैं ।

2) श्रीखंड :- दही में से पानी निकाल देने के बाद शक्कर मिलाने पर श्रीखंड तैयार होता है अथवा पानीवाले दही में शक्कर डालने के बाद कपडे से छान लिया जाता है, उसे श्रीखंड कहते हैं ।

3) सलवण :- नमक डालकर मंथन किए हुए दही को सलवण कहते हैं ।

4) घोल :- वस्त्र से छने हुए दही को घोल कहते हैं ।

5) घोलवडा :- अर्थात् दहीबड़े, बड़े डालने हों तो उस दही को अंगुली जले, उतना गर्म करना चाहिए । सामान्य गर्म नहीं चलता है ।

उपलक्षण से किसी भी अनाज की वस्तु दही में डालने से नीवियाता होता है ।

चावल (भात) डाले हुए दही-छाश, कढ़ी, थेपले, चावल की घेंस आदि भी दही के नीवियाते हैं ।

तेल और गुड़ के पाँच नीवियाते

तिलकुट्टी निब्भंजण, पक तिल पक्कुसहितरिया तिल्लमली ।
सक्कर गुलवाणय, पाय खंड अद्धकढि इक्खुरसो ।।34।।

शब्दार्थ

तिलकुट्टी=तिलकुट्टी, **निब्भंजन**=निर्भंजन, **पकतिल**=पक्वतिल, **पक्कुसहितरिय**=पक्वौषधितरित, **तिल्लमली**=तैल की मली, **सक्कर**=शक्कर, **गुलवाणय**=गुलवाणी, **पाय**=पक्का गुड़, **खंड**=खांड, **अद्धकढि**=आधा उबाला, **इक्खुरसो**=इक्षुरस ।

भावार्थ

तैल और घी के चार नीवियाते समान नामवाले और समान अर्थवाले हैं । तैल में तिलकुट्टी और घी में विस्पंदन ये दोनों अलग-अलग हैं ।

तैल के पाँच नीवियाते

1) तिलकुट्टी :- तिल और कठिन गुड़ को मिलाकर खंडनी में कूटकर एकरस बनाते हैं, उसे तिलकुट्टी कहते हैं ।

(तिल को कूटकर, ऊपर से कच्चा गुड़ मिलाया जाता है, उसे तिल की साणी कहते हैं । अखंड तिल में कच्चा गुड़ मिलाकर जो तिलपापड़ी बनाई जाती है, ये दोनों वस्तुएँ नीवी के पच्चक्खाण में नहीं कल्पती हैं, क्योंकि उसमें कच्चा गुड़ होता है ।)

परंतु गुड़ को उबालकर उसका रस बनाकर उस गुड़ को तिल में मिश्र किया जाय तो वह तलसांकली नीवी के पच्चक्खाण में कल्पती है ।

2. निर्भंजन :- पक्वान्न तलने के बाद कढ़ाई में बचे हुए तैल को निर्भंजन कहते हैं ।

3. पक्वतैल :- औषधि डालकर पकाए हुए तैल को पक्वतैल कहते हैं ।

4. पक्वौषधितरित :- औषधि डालकर पकाए हुए तैल के ऊपर जो तरी आती है, उसे पक्वौषधितरित कहते हैं ।

5) किट्टी :- उबाले हुए तैल के मैल को किट्टी कहते हैं ।

गुड़ के पाँच नीवियाते —

1) शक्कर :- जो बारीक रेती या कंकड़ जैसी होती है, वह गुड़ विगई का नीवियाता है ।

2) खांड :- चीनी के छोटे छोटे दानों को खांड कहते हैं ।

3) गुलपानक :- इमली, मसाला आदि अन्य वस्तु डालकर बनाया हुआ गुड़ का पानी । सिर्फ गुड़ का पानी नीवियाता नहीं कहलाता है ।

4) अर्ध क्वथित इक्षुरस :- बिना उबाला हुआ इक्षु रस वनस्पति रूप है, वह रस दो प्रहर बाद अभक्ष्य हो जाता है। गुड़ विगई का कारण होने पर भी उसे गुड़ विगई में गिना नहीं है, परंतु आधा उबला हुआ इक्षु रस, गुड़ की पूर्व अवस्थारूप होने पर भी गुड़ के नीवियाता रूप है। इसी रस को ज्यादा उबालने से घन गुड़ बन जाता है और वह विगई रूप है ।

5) पाय :- गुड़ की चासनी ।

पक्वान्न विगइ के 5 नीवियाते

पूरिय तव पूआ बी, अपूअ तन्नेह तुरिय घाणाई ।
गुल हाणी जल लप्पसि, अ पंचमो पुत्तिकयपूओ ।।35।।

शब्दार्थ

पूरिय=भरा हुआ, **तव**=कढ़ाही, **पूआ**=पूड़ी, **बीअपूअ**=दूसरी पूड़ी, **तन्नेह**=उसी तैल में, **तुरिय**=चौथा, **घाणाइ**=घाण आदि, **गुलहाणी**=गुड़धानी, **जललप्पसि**=जल लापसी, **पंचमो**=पाँचवाँ, **पुत्तिकय**=पोतकृत, **पूओ**=पूड़ला ।

भावार्थ

कढ़ाही या तवा घी-तेल से भरा हो, उसमें कढ़ाही या तवे प्रमाण के पहले पुड़ले के बाद जो पुड़ला तला जाता है, वह पहला निवियाता है। घी-तेल में तला हुआ चौथा आदि घाण दूसरा नीवियाता है। गुड़धानी, जललापसी तीसरा व चौथा नीवियाता है तथा घी-तेल में पोता दिया पुड़ला पाँचवाँ नीवियाता है ।

विवेचन

कड़ाह अर्थात् कढ़ाही अथवा तवी में घी या तेल में जो वस्तु तैयार होती है, वह कड़ाह विगइ कहलाती है ।

मात्र खाजे, सूतरफणी, घेवर, जलेबी, अमरती आदि ही पक्वान्न हैं, ऐसा नहीं है, बल्कि भजीए, कचोरी, सेव, पूड़ी आदि भी कड़ाह में तलकर तैयार किए जाते हैं, अतः वे भी कड़ाह विगई कहलाते हैं । इस प्रकार घी और तेल में तली हुई सभी वस्तुएँ (मिष्टान्न और नमकीन) कड़ाह विगई में आती हैं ।

1) दूसरा पुड़ला :- घी या तेल से भरी हुई कढाई में, पूरी कढ़ाई में समा सके, इतना बड़ा एक पुड़ला तला जाय तो वह पहला पुड़ला विगई रूप कहलाता है, जबकि उसके बाद के दूसरे आदि पुड़ले नीवियाते कहलाते हैं । शर्त यह है कि पहले पुड़ले के बाद पुनः कढ़ाई में नया घी न डाला हो । यदि बीच में पुनः घी डाला हो तो पुनः एक कढ़ाई प्रमाण का बड़ा पुड़ला तलना चाहिए और उसके बाद के पुड़ले नीवियाते गिनने चाहिए ।

2) चौथा घाण :- घी या तेल से भरी हुई कढ़ाई में छोटी-छोटी पूड़ियों के तीन घाण उतारने के बाद चौथे आदि घाण से जो पूड़ी उतारी जाती है, वे सब नीवियाते में आती हैं । यदि बीच में घी या तेल न डाला हो तो ।

3) गुड़ धाणी :- ज्वार, मक्की आदि को सेककर धाणी बनाई जाती है । उस धाणी को कच्चे गुड़ के साथ मिलाएँ तो वह नीवियाता नहीं बनता है, परंतु गुड़ को उबालकर, उसका रस बनाकर धाणी के साथ मिलाएँ तो वह गुड़धाणी नीवियाता कहलाती है, गुड़धाणी के लड्डू बनाए जाते हैं ।

4) जल लापसी :- थोडे घी में आटे को सेकने के बाद गुड़ के पानी में पकाने से लापसी बनती है, उसके बाद ऊपर से घी शक्कर लेते हैं । यहाँ आटे को घी में सेकने के कारण कड़ाविगई है ।

5) पोतकृत :- रोटी बनाते समय तवी पर चारों ओर चमची से थोड़ा-थोड़ा घी डालकर पोता किया जाता है । इस प्रकार घी में सेकने से अथवा पोता करने से भी नीवियाता होता है ।

दुद्ध दही चउरंगुल, दवगुल घय तिल्ल एग भत्तुवरिं ।
पिंडगुड मक्खणाणं, अद्दामलयं च संसट्ठं ।।36।।

शब्दार्थ

दुद्ध=दूध, **दही**=दही, **चउरंगुल**=चार अंगुल, **दवगुल**=द्रव गुड़, **घय**=घी, **तिल्ल**=तैल, **एग**=एक, **भत्तुवरिं**=भोजन ऊपर, **पिंड**=कठिन, **गुड**=गुड़, **मक्खणाणं**=मक्खण, **अद्द**=आर्द्र, **आमलयं**=आँवला, **च**=और, **संसट्ठं**=मिश्र ।

भावार्थ

खाने की वस्तु के ऊपर दूध और दही चार अंगुल प्रमाण हो, ढीला गुड़, घी और तैल एक अंगुल प्रमाण हो । गुड़ और मक्खन पीलु जितने प्रमाणवाला हो, तब तक संसृष्ट कहलाता है । उतने प्रमाण में हो तो नीवी में कल्पता है, परंतु उससे अधिक हो तो नहीं ।

विवेचन

विविध प्रकार के तपों में जो पहले 22 प्रकार के आगार बतलाए, उसमें एक आगार का नाम हैं-`गिहत्थसंसट्ठेणं ।' यह आगार आयंबिल, नीवी और विगई के पच्चक्खाण में होता है ।

पूर्व गाथा में `गिहत्थसंसट्ठेणं' आगार द्वारा आयंबिल में कल्पे, ऐसी वस्तुओं का निर्देश किया, अब इस गाथा द्वारा नीवी और विगई के पच्च-क्खाण में कौनसी वस्तुएँ कल्पती है, उसका निर्देश कर रहे हैं ।

गृहस्थ ने अपने लिए दूध-चावल या दही-चावल मिश्रित किये हों वे `गृहस्थ संसृष्ट' कहलाते हैं 1) चावल में डाले हुए दूध-दही चार अंगुल ऊपर तक पहुँचे, तब तक वे निर्विगय हैं । उस दूध और दही को संसृष्ट द्रव्य कहते हैं । यह द्रव्य मुनि भगवंतों को नीवी और विगई के पच्चक्खाण में कल्पता है । चार अंगुल से ऊपर दूध-दही हो तो वह विगइ कहलाता है, अतः नीवी और विगइ के पच्चक्खाण में नहीं कल्पता है ।

2) चावल आदि के ऊपर गुड़ आदि का रस (द्रवगुड़), घी और तैल एक अंगुल ऊपर चढ़ा हो तो वे तीनों संसृष्ट द्रव्य नीवियाते कहलाते हैं, नीवि के पच्चक्खाण में चलते हैं ।

3) कठिन गुड़ को चूरमे आदि में मिश्र किया हो और सर्वथा-संपूर्ण एकरस नहीं हुआ हो और गुड़ के पीलु जितने शण वृक्ष की कली जितने कण, चूरमे अथवा भात में थोड़े बहुत रह गए हों तो भी वह गुड़ संसृष्ट द्रव्य

कहलाता है और वह नीवि में कल्पता है। परंतु उससे बड़ा गुड़ का कण रहा हो तो वह विगई ही कहलाता है।

4) कठिन मक्खण को चावल में मिश्र किया हो, उस समय शण वृक्ष की कली अथवा पीलु प्रमाण कुछ कण रह गए हों तो भी वह संसृष्ट द्रव्य होने से नीवियाता कहलाता है, परंतु मक्खण विगई तो अभक्ष्य ही होने से नीवियाता होने पर भी उसे नीवि में लेना कल्पता नहीं है।

दव्वहया विगई विगइ गय पुणो तेण तं हयं दव्वं ।
उद्धरिए तत्तंमि य उक्किट्ठदव्वं इयं चन्ने ॥37॥

शब्दार्थ

दव्व=द्रव्य, **हया**=नष्ट हुई, **विगई**=विगइ, **विगइ गय**=विकृतिगत अर्थात् नीवियाता, **पुणो**=पुनः, **तेण**=उस कारण से, **तं**=वह, **हयंदव्वं**=हत द्रव्य, **उद्धरिए**=तलने के बाद, **तत्**=उधृत घी आदि, **तंमि**=उसके विषय में, **य**=और, **उक्किट्ठ**=उत्कृष्ट, **दव्वं**=द्रव्य, **इमं**=नीवियाते को, **चन्ने**=अन्य आचार्य।

भावार्थ

अन्य द्रव्यों के संयोग आदि से नष्ट हुई विगई को नीवियाता कहते हैं। इस कारण उसे हतद्रव्य कहते हैं।

पक्वान्न को तलकर बाहर निकालने के बाद चूल्हे से उतारकर ठंडा करने के बाद उसमें कोई वस्तु मिलाकर जो द्रव्य बनाया जाता है, वह भी नीवियाता कहलाता है। अन्य आचार्य इस नीवियाते को 'उत्कृष्ट द्रव्य' भी कहते हैं।

विवेचन

चावल आदि द्रव्यों के मिश्रण से (एकमेक होने से) दूध आदि विगई नीवियाता (विकृतिगत) बन जाती है। इस कारण नीवी के पच्चक्खाणवालों को कल्पती है।

कढ़ाई आदि में से सुखड़ी आदि निकाल देने के बाद जो बचा हुआ घी हो, उसे चूल्हे पर से उतारने के बाद ठंडा किया जाय और कणिक्क

आदि का मिश्रण करने से जो द्रव्य बनता है, वह नीवियाता बनता है। कुछ आचार्य उसे उत्कृष्ट द्रव्य भी कहते हैं।

तिलसक्कुलि वरसोला इ रायणं बाइ दक्खवाणाई।
डोली तिल्लाइ इय, सरसुत्तमदव्व लेवकडा ॥38॥

शब्दार्थ

तिलसक्कुलि=तिलपापड़ी, **वरसोलाइ**=वरसोला आदि, **रायणंबाइ**=रायण और आम आदि, **दक्खवाणाई**=द्राक्षपान आदि, **डोली तिल्लाइ**=तैल आदि, **इय सरसुत्तम**=सरसोत्तम, **दव्व**=द्रव्य, **लेवकडा**=लेपकृत।

भावार्थ

इस गाथा में सरस (रसवाले पौष्टिक पदार्थ) उत्तम द्रव्यों का निर्देश किया है। यद्यपि ये द्रव्य विगई रूप नहीं हैं, फिर भी रोग, अशक्ति आदि कारण उत्पन्न होने पर नीवी में कल्पते हैं। प्रबल कारण बिना उन द्रव्यों के सेवन का निषेध है।

1) तिल तथा गुड़ की चासनी के मिश्रण से बनाई गई तल सांकली (कच्चे गुड़ के साथ तिल मिलाकर बनाए, वो नहीं)

2) छेद करके धागा पिरोकर हारड़ा के रूप में किया गया खोपरा, खारेक और सिंगोड़े आदि को वरसोला कहते हैं।

3) शक्कर के द्रव्य-साकरिया चने, साकरिया काजू आदि, अखरोट, बादाम आदि सभी प्रकार के सूखे मेवा।

4) अचित्त किए हुए और खांड से मिश्र रायण आदि फल।

5) द्राक्षा का पानी, नारियल का पानी, ककड़ी आदि के अंदर रहा हुआ अचित्त पानी।

6) महुड़े के बीज का तैल, अरंडे का तैल, कुसुंभ का तैल आदि तैल जो विगई में नहीं गिने जाते हैं, वे सभी सरसोत्तम अर्थात् उत्तम द्रव्य कहलाते हैं और वे लेपकृत भी हैं। (अर्थात् लेवालेवेणं आगार के विषयवाले द्रव्य हैं।)

ये सभी द्रव्य नीवि के पच्चक्खाण में कारण उपस्थित होने पर मुनि को कल्पते हैं।

विगइ गया संसट्ठा, उत्तम दव्वा य निव्विगइयंमि ।
कारणजायं मुत्तुं, कप्पंति न भुत्तुं जं वुत्तं ।।39।।

शब्दार्थ

विगइगया=विकृतिगत (नीवियाता), **संसट्ठा**=संसृष्ट, **उत्तम दव्वा**=उत्तम द्रव्य, **य**=और, **निव्विगइयंमि**=नीवी में, **कारणजायं**=कारण पैदा होने पर, **मुत्तुं**=छोड़कर, **कप्पंति**=कल्पते हैं, **न भुत्तुं**=नहीं खाने के लिए, **वुत्तं**=कहा है कि ।

भावार्थ

पहले कहे गए नीवियाता द्रव्य तथा (36 वीं गाथा में कहे गए) संसृष्ट द्रव्य तथा उत्तम द्रव्य ये तीन प्रकार के द्रव्य विकृति रहित हैं फिर भी नीवी के पच्चक्खाण में सकारण ही कल्प्य हैं। सिद्धांत में भी कहा है कि (वह गाथा आगे कहते हैं)

विवेचन

रसप्रद भोजन संयम की साधना में बाधक है। रसयुक्त भोजन राग भाव पैदा करने में प्रबल निमित्त बनता है, अतः साधु के लिए विगई का सेवन लगभग निषिद्ध है, परंतु अपवाद मार्ग से उसकी छूट दी गई है ।

कोई साधु शारीरिक-दृष्टि से कमजोर हो, दीर्घकाल तक तपश्चर्या करने से शरीर में कृशता आ गई हो । जीवन पर्यंत विगई का त्याग हो । योगोद्वहन आदि के साथ गुरु अथवा अन्य ग्लान आदि मुनियों की वैयावच्च करने की जवाबदारी हो, सर्वथा नीरस द्रव्यों के उपभोग के कारण शरीर में अशक्ति आने से वैयावच्च आदि में तकलीफ पड़ती हो तो ऐसे साधु को गुरु की आज्ञानुसार नीवी में उपर्युक्त नीवियाते द्रव्य, संसृष्ट द्रव्य और सरसोत्तम द्रव्य आहार के रूप में लेने में कल्पते हैं, परंतु यदि शरीर सशक्त हो और एक मात्र आहार की लोलुपता के कारण उन द्रव्यों के उपभोग की प्रवृत्ति होती हो तो उन द्रव्यों का उपभोग मुनियों के लिए अकल्प्य है ।

मुनि के लिए भोजन शरीर को टिकाने के लिए है न कि रसनेन्द्रिय की आसक्ति के पोषण के लिए है ।

स्वादिष्ट व सरस आहार लेना यह तप का लक्षण नहीं है। तपस्वी तो स्वादिष्ट आहार का त्यागी होता है ।

ठीक ही कहा है- **भोजन सरस तो भजन नीरस ।**
भोजन नीरस तो भजन सरस ।

जिसका भोजन रसप्रद होगा, उसका भजन नीरस होगा, अतः रसनेन्द्रिय का पोषण न हो और एक मात्र शरीर को आधार मिल सके, इसी भावना से अपवाद के रूप में नीवियाते द्रव्य आदि का अनासक्त भाव से सेवन करना चाहिए ।

विगइं विगईभीओ विगइगयं जो उ भुंजए साहू ।
विगई विगइसहावा, विगई विगइं बला नेइ ।।40।।

शब्दार्थ

विगइं=विगइ को, **विगईभीओ**=दुर्गति से भयभीत, **विगइगयं**=नीवियाते, **जो**=जो, **उ**=तथा, **भुंजए**=खाता है, **साहू**=साधु, **विगई**=विगइ, **विगइसहावा**=विकृति के स्वभाववाली, **विगई**=विगइ, **विगइं**=दुर्गति में, **बला**=बलात्कार से, **नेइ**=ले जाती है ।

भावार्थ

दुर्गति से भयभीत बना हुआ साधु यदि विगइ और नीवियाते का आहार लेता है तो ये विगइ विकृति की स्वभाववाली होने से बलात्कार से भी दुर्गति में ले जाती है ।

विवेचन

दूध, दही, घी, तैल, गुड़ एवं पक्वान्न ये छह भक्ष्य विगइयाँ हैं अर्थात् इन विगइयों के सेवन में जीवहिंसा नहीं है, इसी प्रकार इन विगइयों से बने नीवियाते के भक्षण में जीवहिंसा तो नहीं है, फिर भी साधु जीवन में विगइ या नीवियाते के सेवन की एकदम छूट नहीं है । शक्य हो तो साधु को इनका सेवन टालना चाहिए, परंतु विशिष्ट तप या अशक्ति के कारण इनका सेवन करना पड़े तो भी इनका सेवन अल्प प्रमाण में करना चाहिए । क्योंकि ये विगइयाँ विकृति अर्थात् विकार भाव की पोषक हैं, अधिक प्रमाण में इनका सेवन करने से मन में कामवासना, विकार भाव उत्पन्न हुए बिना नहीं रहता है ।

मन यदि कामवासना से ग्रस्त हो गया तो आत्मा की दुर्गति हुए बिना नहीं रहती है । इसका तात्पर्य यही हुआ कि अधिक प्रमाण में किया गया विगइयों का सेवन आत्मा को दुर्गति के गर्त में धकेले बिना नहीं रहता है ।

अतः अपनी आत्मा को दुर्गति के गर्त से बचाना हो तो कामवासना, विकार भाव से दूर रहना चाहिए ।

ये विगइयाँ बलात्कार से भी आत्मा को दुर्गति में ले जाने के स्वभाववाली हैं ।

साधु-साध्वी भगवंतों को दशवैकालिक, उत्तराध्ययन, आचारांग आदि सूत्रों के योगोद्वहन करते समय कच्ची विगइ के सर्वथा त्याग का विधान है । इसके पीछे भी यही रहस्य रहा हुआ है । ये विगइयाँ विकार भाव को पैदा करानेवाली हैं । आत्मा के अंतरंग छह शत्रुओं में सबसे पहला व भयंकर शत्रु काम ही है ।

बड़े-बड़े तपस्वी मुनि भी काम के आगे हार खा जाते हैं । सिंहगुफा-वासी मुनि चार-चार मास के उपवास कर पाए परंतु कामशत्रु को जीत न सके । कामशत्रु ने उनकी आत्मा पर हमलाकर उन्हें पतन के गर्त में डुबो दिया था ।

तपस्वी साधकों के लिए भी काम को जीतना दुष्कर है, अतः कामविजेता बनने के लिए विगइयों का त्याग बहुत जरूरी है ।

तामसी आहार व्यक्ति को क्रोधी बनाता है तो राजसी आहार व्यक्ति को कामी बनाता है ।

ब्रह्मचर्य-पालन के लिए जो नौ गुप्तियाँ बतलाई हैं, उनमें दो गुप्ति आहार संबंधी हैं अर्थात् ब्रह्मचर्य के इच्छुक साधक को रसप्रद आहार ग्रहण नहीं करना चाहिए ।

कुत्तिय मच्छिय भामर, महुं तिहा कट्ठ पिट्ठ मज्ज दुहा ।
जल-थल-खग मंस तिहा, घयव्व मक्खण चउ अभक्खा ।।41।।

शब्दार्थ

कुत्तिय=कुंती का, **मच्छिय**=मक्खी का, **भामर**=भ्रमर का, **महुं**=मधु (शहद), **तिहा**=तीन प्रकार का, **कट्ठ**=काष्ट, **पिट्ठ**=पिष्ट, **मज्ज**=मद्य, **दुहा**=दो प्रकार का, **जल**=जलचर संबंधी, **थल**=स्थलचर संबंधी, **खग**=पक्षी संबंधी, **मंस**=मांस, **तिहा**=तीन प्रकार का, **घयव्व**=घी की तरह, **मक्खण**=मक्खण, **चउ**=चार प्रकार का, **अभक्ख**=अभक्ष्य ।

भावार्थ

शहद तीन प्रकार का होता है-कुंती संबंधी, मक्खी संबंधी और भ्रमर

संबंधी । शराब दो प्रकार की होती है काष्ठ संबंधी और आटे संबंधी । मांस तीन प्रकार का होता है-जलचर, स्थलचर और खेचर संबंधी तथा घी की तरह मक्खन चार प्रकार का होता है । ये चारों अभक्ष्य महाविगइ हैं ।

विवेचन

प्रस्तुत गाथा में चार अभक्ष्य महाविगइ के स्वरूप का वर्णन किया है ।

दूध, दही आदि छह भक्ष्य विगइ हैं, जबकि शहद, शराब, मांस और मक्खन ये चार अभक्ष्य महाविगइ हैं, ये चार अभक्ष्य हैं, क्योंकि इनकी उत्पत्ति में भयंकर हिंसा होती है, अतः उनके भक्षण में हिंसा का भयंकर पाप लगता है । मुक्ति के अभिलाषी व्यक्ति को इन चार महाविगइयों का सर्वथा त्याग करना चाहिए । ये चार महाविगई मन और इन्द्रियों में भयंकर काम-विकार उत्पन्न करती हैं, अतः महाविगई कहलाती हैं ।

1. शहद :- तीन प्रकार का है -

1) कुंती का शहद 2) मधु मक्खी का शहद और 3) भ्रमरी का शहद ।

2. मदिरा :- मदिरा अर्थात् शराब ! यह दो प्रकार की होती है 1) काष्ठ मदिरा-वनस्पति के अवयव स्कंध, पुष्प तथा फल आदि को सड़ा-कर उसमें से उन्मादक आसव सत्त्व खींचकर जो मदिरा तैयार की जाती है, उसे काष्ठ मदिरा कहते हैं ।

गन्ने के स्कंध महुड़े के पुष्प और अंगूर के फल में से मदिरा तैयार की जाती है ।

2) पिष्ट मदिरा-ज्वार आदि के आटे को सड़ाकर उसमें से मादक सत्त्व खींचकर जो मदिरा तैयार की जाती है, उसे पिष्ट मदिरा कहते हैं ।

इस मदिरा के पान से आदमी को नशा चढ़ता है । वह अपने दिमाग का नियंत्रण खो देता है । इस कारण महामोह, क्लेश, निद्रा तथा क्रोध आदि दोष उत्पन्न होते हैं । शराबी सर्वत्र हँसी-मजाक और निंदा का पात्र बनता है । मदिरापान से तीव्र कामविकार भी पैदा होता है । इसके फलस्वरूप लज्जा, लक्ष्मी, बुद्धि और धर्म का भी नाश होता है और व्यक्ति मरकर दुर्गति के गर्त में डूब जाता है । मदिरा में उसी वर्ण Colour के असंख्य त्रस जीव पैदा होते रहते हैं, अतः मदिरापान से उन सब जीवों की हिंसा का भी भयंकर पाप लगता है ।

3. मांस :- जलचर, स्थलचर और खेचर प्राणियों के भेद से मांस के तीन भेद हैं। मछली आदि का मांस जलचर प्राणी का मांस कहलाता है। गाय, भैंस आदि का मांस स्थलचर प्राणी का मांस कहलाता है और मुर्गे, कबूतर आदि पक्षियों का मांस खेचर प्राणी का मांस कहलाता है।

कच्चे मांस अथवा पकाए जा रहे मांस में अथवा पकाए हुए मांस की पेशियों में निरंतर उसी वर्ण के जीवों की उत्पत्ति होती रहती है।

पंचेन्द्रिय प्राणी की हत्या बिना मांस उपलब्ध नहीं होता है। निर्दोष व निरपराध प्राणियों की हत्या करने से भयंकर पापकर्म का बंध होता है, जिससे जीव नरकगामी बनता है। जैन-अजैन सभी ग्रंथों में मांसभक्षण का निषेध किया गया है।

4) मक्खण :- छाश में से मक्खण को बाहर निकालने के साथ ही मक्खण में उसी वर्ण के असंख्य बेइन्द्रिय जीव पैदा हो जाते हैं। मक्खण खाने से उन सभी जीवों की हिंसा का पाप लगता है, अतः आराधक आत्मा को उसका अवश्य त्याग करना चाहिए।

दही की तरह मक्खण के चार भेद बतलाए हैं। ऊँटनी के दूध में से दही नहीं बनता है। अतः ऊँटनी के दही का मक्खण नहीं बनता है, अतः गाय, भैंस, बकरी व भेड़ के अनुसार मक्खण भी चार प्रकार का होता है।

मक्खण का भक्षण भी कामवासना को उत्तेजित करता है, अतः आराधक आत्मा को उसका अवश्य त्याग करना चाहिए।

मण वयण काय-मणवय, मणतणु वयतणु तिजोगी सग सत्त।
कर कारणुमइ दुति जुइ, तिकाली सीयाल भंग सयं ॥42॥

शब्दार्थ

मण=मन, **वयण**=वचन, **काय**=काया, **मणवय**=मन वचन, **मणतणु**=मन काया, **वय तणु**=वचन काया, **तिजोगी**=त्रियोगी, **सग**=सात, **सत्त**=सप्तक, **कर**=करना, **कार**=कराना, **अणुमइ**=अनुमति अनुमोदना, **दु ति जुइ**=द्वियोगी त्रियोगी, **तिकाली**=तीन काल के गिनने पर, **सीयाल**=47, **भंगसय**=100 भंग।

भावार्थ

मन से, वचन से, काया से, मन-वचन से, मन-काया से, वचन काया से और मन-वचन-काया से इस प्रकार तीन योग के सात भांगे होते हैं।

इसी प्रकार करण के करना, कराना, अनुमोदन करना, करना-कराना, कराना-अनुमोदन करना, करना-अनुमोदन करना, करना-कराना और अनुमोदन करना-इस प्रकार सात भंग होते हैं।

तीन योग और तीन करण के 7-7 भंगों को गुणने से 49 भंग होते हैं और उन्हें तीन काल से गुनने से 49 x 3 = 147 भंग होते हैं।

विवेचन

इस गाथा में पच्चक्खाण के शक्य भंगों का वर्णन किया है। पच्चक्खाण के 49 अथवा 147 भंग हो सकते हैं। अर्थात् इतने प्रकार से पच्चक्खाण ले सकते हैं। मन, वचन और काया रूप तीन योगों के कुल 7 भंग होते हैं और करण, करावण और अनुमोदन रूप तीन करण के 7 भंग होते हैं। इन दोनों को परस्पर गुणने से 49 भंग होते हैं।

पहला सप्तक

ये 49 भंग इस प्रकार हैं।

1) मन से नहीं करना।

2) वचन से नहीं करना।

3) काया से नहीं करना।

4) मन-वचन से नहीं करना।

5) मन-काया से नहीं करना।

6) वचन काया से नहीं करना।

7) मन-वचन-काया से नहीं करना।

दूसरा सप्तक

8) मन से नहीं कराना।

9) वचन से नहीं कराना

10) काया से नहीं कराना।

11) मन-वचन से नहीं कराना।

12) मन काया से नहीं कराना।

13) वचन काया से नहीं कराना।

14) मन-वचन-काया से नहीं कराना।

तीसरा सप्तक

15) मन से अनुमोदन नहीं करना।

16) वचन से अनुमोदन नहीं करना ।
17) काया से अनुमोदन नहीं करना ।
18) मन-वचन से अनुमोदन नहीं करना ।
19) मन-काया से अनुमोदन नहीं करना ।
20) वचन-काया से अनुमोदन नहीं करना ।
21) मन-वचन-काया से अनुमोदन नहीं करना ।

चौथा सप्तक

22) मन से करना नहीं, कराना नहीं ।
23) वचन से करना नहीं, कराना नहीं ।
24) काया से करना नहीं, कराना नहीं ।
25) मन वचन से करना नहीं, कराना नहीं ।
26) मन काया से करना नहीं, कराना नहीं ।
27) वचन काया से करना नहीं, कराना नहीं ।
28) मन वचय काया से करना नहीं, कराना नहीं ।

पाँचवाँ सप्तक

29) मन से करना नहीं, अनुमोदन नहीं करना ।
30) वचन से करना नहीं, अनुमोदन नहीं करना ।
31) काया से करना नहीं, अनुमोदन नहीं करना ।
32) मन वचन से करना नहीं, अनुमोदन नहीं करना ।
33) मन काया से करना नहीं, अनुमोदन नहीं करना ।
34) वचन काया से करना नहीं, अनुमोदन नहीं करना ।
35) मन वचन काया से करना नहीं, अनुमोदन नहीं करना ।

छठा सप्तक

36) मन से कराना नहीं, अनुमोदन नहीं करना ।
37) वचन से कराना नहीं, अनुमोदन नहीं करना ।
38) काया से कराना नहीं, अनुमोदन नहीं करना ।
39) मन वचन से कराना नहीं, अनुमोदन नहीं करना ।
40) मन काया से कराना नहीं, अनुमोदन नहीं करना ।
41) वचन काया से कराना नहीं, अनुमोदन नहीं करना ।
42) मन वचन काया से कराना नहीं, अनुमोदन नहीं करना ।

सातवाँ सप्तक

43) मन से करना नहीं, कराना नहीं, अनुमोदन भी नहीं करना ।

44) वचन से करना नहीं, कराना नहीं, अनुमोदन भी नहीं करना ।

45) काया से करना नहीं, कराना नहीं, अनुमोदन भी नहीं करना ।

46) मन वचन से करना नहीं, कराना नहीं, अनुमोदन भी नहीं करना ।

47) मन काया से करना नहीं, कराना नहीं, अनुमोदन भी नहीं करना ।

48) वचन काया से करना नहीं, कराना नहीं, अनुमोदन भी नहीं करना ।

49) मन वचन काया से करना नहीं, कराना नहीं, अनुमोदन भी नहीं करना ।

इन 49 भंग को भूत, भविष्य और वर्तमान काल से गुणने पर कुल 147 भंग हो जाते हैं ।

प्रश्न :- पच्चक्खाण तो भविष्य संबंधी होता है तो उसमें तीन काल के भंग कैसे होते हैं ? भूतकाल में हुए अनुचित आचरण का त्याग, पच्चक्खाण से कैसे होता है ?

उत्तर :- भूतकाल में जो अनुचित आचरण हो गया हो, उसकी निंदा और गर्हा की जाती है । वर्तमान के अनुचित आचरण का संवर किया जाता है और भविष्य के अनुचित आचरण की प्रतिज्ञा की जाती है । इस प्रकार अतीत काल में हुए पापों की निंदा, वर्तमान में हो रहे पापों का संवर और भविष्य काल के पापों का संवर किया जाता है ।

एयं च उत्त काले, सयं च मण वयण तणूहिं पालणियं ।
जाणग जाणग पासत्ति, भंग चउगे तिसु अणुन्ना ।।43।।

शब्दार्थ

एयं=ये (पोरिसी आदि पच्चक्खाण), **उत्तकाले**=कहे हुए समय में, **सयं**=स्वयं, **मण**=मन से, **वयण**=वचन से, **तणूहिं**=शरीर से, **पालणियं**=पालन करना चाहिए, **जाणग**=जाननेवाला, **अजाणग**=नहीं जाननेवाला, **त्ति**=इस प्रकार, **भंग चउगे**=चार भंग में, **तिसु**=तीन भंग में, **अणुन्ना**=अनुज्ञा ।

भावार्थ

शास्त्रों में कही हुई काल मर्यादा के अनुसार इन पच्चक्खाणों का

मन, वचन और काया से स्वयं को पालन करना चाहिए । ज्ञात-और अज्ञात इस प्रकार के चार भंगों में तीन भंगों में अनुज्ञा है ।

विवेचन

शास्त्रों में पोरिसी आदि पच्चक्खाणों की कालमर्यादा बताई गई है । जैसे नवकारसी का पच्चक्खाण सूर्योदय से 48 मिनिट बाद आता है ।

पोरिसी का पच्चक्खाण सूर्योदय से एक प्रहर बाद आता है । साढ पोरिसी का पच्चक्खाण सूर्योदय से डेढ़ प्रहर बाद आता है ।

आत्मकल्याण की कामना से स्वयं ने जो भी पच्चक्खाण लिया हो, उस पच्चक्खाण की काल-मर्यादा का अवश्य पालन करना चाहिए । परंतु अपने निजी व तुच्छ स्वार्थ के लिए पच्चक्खाण की काल-मर्यादा का भंग नहीं करना चाहिए ।

सांसारिक व्यवहार में भी व्यक्ति ली हुई प्रतिज्ञा का पालन करता है तो अध्यात्मजगत् में भी ली हुई प्रतिज्ञा का बिल्कुल भंग नहीं करना चाहिए ।

पच्चक्खाण संबंधी चार भंग

1) पच्चक्खाण करनेवाला ज्ञाता हो, पच्चक्खाण करानेवाला ज्ञाता हो ।

2) पच्चक्खाण करनेवाला ज्ञाता हो परंतु पच्चक्खाण करानेवाला ज्ञाता न हो ।

3) पच्चक्खाण करनेवाला ज्ञाता न हो परंतु पच्चक्खाण करानेवाला ज्ञाता हो ।

4) पच्चक्खाण करनेवाला ज्ञाता न हो और पच्चक्खाण करानेवाला भी ज्ञाता न हो ।

इन चार भंगों में पहले तीन भंग शुद्ध हैं परंतु चौथा भंग अशुद्ध है ।

1) पच्चक्खाण करनेवाला पच्चक्खाण की कालमर्यादा और पच्चक्खाण के स्वरूप को अच्छी तरह से जानता हो और पच्चक्खाण करानेवाले गुरु भी पच्चक्खाण के स्वरूप को अच्छी तरह से जानते हों तो वह पच्चक्खाण अत्यंत शुद्ध कहलाता है ।

पच्चक्खाण लेने व देनेवाले ज्ञाता हों तो वह पच्चक्खाण भाव पच्चक्खाण का भी कारण बन सकता है ।

2) संयोगवश पच्चक्खाण करानेवाले गुरु पच्चक्खाण के स्वरूप के

ज्ञाता न हो, परंतु पच्चक्खाण करनेवाला शिष्य या श्रावक, पच्चक्खाण के स्वरूप का अच्छी तरह से जानकार हो तो वह भी पच्चक्खाण शुद्ध कहलाता है ।

3) पच्चक्खाण करनेवाला धर्म के स्वरूप से अज्ञात हो, पच्चक्खाण के बारे में उसे कोई विशेष जानकारी न हो, परंतु पच्चक्खाण करानेवाले गुरु पच्चक्खाण के स्वरूप को अच्छी तरह से जानते हों तो वे गुरु अपने शिष्य या श्रावक को पच्चक्खाण का स्वरूप अच्छी तरह से समझा सकते हैं, इस प्रकार गुरु के उपदेश से सोच समझकर पच्चक्खाण करनेवाले का पच्चक्खाण शुद्ध कहलाता है ।

4) पच्चक्खाण करनेवाले को पच्चक्खाण संबंधी कोई जानकारी न हो और न ही पच्चक्खाण देनेवाले गुरु को पच्चक्खाण संबंधी जानकारी हो, ऐसी परिस्थिति में किया गया पच्चक्खाण अशुद्ध ही कहलाता है ।

इस प्रकार पच्चक्खाण संबंधी चतुर्भंगी को जानकर पच्चक्खाण के स्वरूप को जानने का प्रयत्न करना चाहिए ।

प्रश्न : साधु ने स्वयं उपवास किया हो तो वह दूसरों के लिए गोचरी आदि लाकर साधर्मिक भक्ति कर सकता है ? वहाँ करावण व अनुमोदन का पच्चक्खाण क्यों नहीं ?

उत्तर : किसी भी प्रकार के पच्चक्खाण का मुख्य उद्देश्य ज्ञान, दर्शन और चारित्र की आराधना करना है । जिससे ज्ञान आदि की आराधना होती हो, उस क्रिया का त्याग नहीं किया जाता है, अतः दूसरे साधु उपवास आदि करने में अशक्त हों तो उनके ज्ञान आदि की आराधना के पोषण के लिए गोचरी आदि लाकर उनकी भक्ति करने में तो एकांत लाभ है ।

आठवाँ द्वार :- छह प्रकार की शुद्धि

फासिय पालिय सोहिय, तीरिय किट्टिय आराहिय छ सुद्धं ।
पच्चक्खाणं फासिय, विहिणोचियकालि जं पत्तं ।।44।।

शब्दार्थ

फासिय=स्पर्श किया हुआ, **पालिय**=पालन किया हुआ, **सोहिय**=शुद्ध किया हुआ, **तीरिय**=पार को प्राप्त हुआ, **किट्टिय**=कीर्तन किया हुआ,

आराहिय=आराधित, **छ सुद्धं**=छह प्रकार से शुद्ध, **पच्चक्खाणं**=प्रत्याख्यान, **फासिय**=स्पर्शित, **विहिणा**=विधि पूर्वक, **उचियकालि**=उचितकाल में, **जं**=जो, **पत्तं**=प्राप्त हुआ ।

भावार्थ

स्पर्शित, पालित, शोधित, तीरित, कीर्तित और आराधित ये छह प्रकार की शुद्धियाँ हैं । जो पच्चक्खाण योग्य समय में विधिपूर्वक लिया हो वह स्पर्शित कहलाता है ।

विवेचन

आत्मकल्याण के इच्छुक आराधक आत्मा को किसी भी प्रकार का नित्य नवकारसी आदि का पच्चक्खाण करना हो, वह पच्चक्खाण छह प्रकार की शुद्धि से युक्त होना चाहिए ।

कोई भी पच्चक्खाण जैसे-तैसे या अविधिपूर्वक किया जाता है तो उसका वास्तविक फल प्राप्त नहीं होता है, परंतु एक छोटा भी पच्चक्खाण विधि के पालन एवं शुद्धिपूर्वक किया जाता है तो वह महाफलदायी बनता है ।

किसी प्रकार का रोग होने पर उसकी औषधि डॉक्टर के निर्देशानुसार विधिपूर्वक लेवे तो ही रोगनाश का लाभ प्राप्त होता है, उसी प्रकार आत्महितकर ये पच्चक्खाण भी सद्भाव एवं शुद्धिपूर्वक करे तो ही आत्मा के लिए लाभकारी बनते हैं ।

इस गाथा में छह प्रकार की शुद्धियों का नामनिर्देश करके पहली शुद्धि का स्वरूप बतलाया है, उसके बाद आगे की शुद्धियों के स्वरूप का वर्णन आगे की गाथाओं में करेंगे ।

यह पच्चक्खाण स्पर्शित, पालित, शोधित, तीरित, कीर्तित और आराधित होना चाहिए ।

1) स्पर्शित :- प्रत्याख्यान सूत्रों के अर्थ को अच्छी तरह से जाननेवाला साधु या श्रावक सूर्योदय के पहले आत्मसाक्षी से जिनप्रतिमा या स्थापनाचार्य के समक्ष प्रत्याख्यान कर ले । उसके बाद प्रत्याख्यान काल पूर्ण होने के पहले सद्गुरु के पास जाकर राग-द्वेष और नियाणा रहित होकर गुरु के मुख से प्रत्याख्यान लेना चाहिए ।

प्रत्याख्यान ग्रहण कराते समय गुरु भगवंत प्रत्याख्यान के जो आलावे बोलें, वे आलावे प्रत्याख्यान लेनेवाला भी मंदस्वर से अवश्य बोले ।

इस प्रकार ग्रहण किया गया प्रत्याख्यान स्पर्शित कहलाता है ।

इससे तीन बातें फलित होती हैं -

1) सर्व प्रथम जिनप्रतिमा या स्थापनाचार्यजी के सामने आत्मसाक्षी से पच्चक्खाण लेना चाहिए ।

2) पच्चक्खाण का समय पूरा होने के पहले सद्गुरु के पास पच्चक्खाण लेना चाहिए ।

जैसे-नवकारसी का पच्चक्खाण आ जाने के बाद गुरु के पास नवकारसी का पच्चक्खाण नहीं लेना चाहिए, बल्कि नवकारसी का पच्चक्खाण आने के पहले नवकारसी का पच्चक्खाण लेना चाहिए ।

3) गुरु भगवंत के पास पच्चक्खाण लेते समय पच्चक्खाण के सूत्र मन में बोलने चाहिए अर्थात् उन सूत्रों में अपने मन का उपयोग रहना चाहिए ।

पालिय पुणपुण सरियं, सोहिय गुरुदत्त सेस भोयणओ ।
तीरिय समहिय काला, किट्टिय भोयण समय सरणा ।।45।।

शब्दार्थ

पालित=पालित, **पुण पुण**=पुनः पुनः, **सरियं**=याद किया हो, **सोहिय**=शुद्ध किया हुआ, **गुरुदत्त**=गुरु के द्वारा दिया गया, **सेस**=बाकी रहा, **भोयणओ**=भोजन से, **तीरिय**=तीर्ण, **समहिय**=कुछ अधिक, **काला**=काल, **किट्टिय**=कीर्तित, **भोयण**=भोजन, **समयसरणा**=समय का स्मरण ।

भावार्थ

किए हुए पच्चक्खाण को बार-बार याद करना, उसे **पालित** कहते हैं । गुरु के देने के बाद जो शेष बचा हो उससे भोजन करने से **शोधित** या **शोभित** होता है । पच्चक्खाण के काल से कुछ अधिक काल पूरा करना **तीरित** कहलाता है और भोजन करते समय किए हुए पच्चक्खाण को पुनः याद करना, उसे **कीर्तित** कहा जाता है ।

विवेचन

पूर्व गाथा में `फासियं' की व्याख्या की । इस गाथा में पालित आदि चार पदों की व्याख्या करते हैं ।

1. पालिय :- ग्रहण किए हुए पच्चक्खाण को पुनः पुनः याद

रखना, उसे पालित कहते हैं। आज जो भी पच्चक्खाण किया हो, वह सदैव स्मृतिपटल पर अवश्य रहना चाहिए । कई बार कई लोग **'आज मैंने कौनसा पच्चक्खाण किया'** उसे भूल जाते हैं । वास्तव में लिया हुआ पच्चक्खाण सतत याद रहना चाहिए ।

3. सोहिय :- पच्चक्खाण पूर्ण होने के बाद गुरु की भक्ति करने के बाद जो बचा हो, उसे वापर लेना, इससे पच्चक्खाण **शोभित** होता है ।

गुरु की भक्ति करना शिष्य का कर्तव्य है और भक्ति के बाद जो अवशेष बचा हो, उसे वापरकर पच्चक्खाण करना, **शोधित या शोभित** कहलाता है ।

4) तीरिय :- पच्चक्खाण का जो समय हो, उसे पूरा करने के कुछ समय बाद भोजन करना चाहिए । उसे **तीरित** कहते हैं । जैसे-नवकारसी 7.14 पर आती हो तो 2-5 मिनिट देर से आहार लेना चाहिए ।

5) किट्टियं :- पच्चक्खाण का काल पूर्ण होने के बाद भोजन करते समय यह स्मरण में रहना चाहिए कि आज मैंने जो पच्चक्खाण लिया था, वह पूर्ण हो चुका है, अब मैं भोजन करूंगा ।

इअ पडियरियं आराहियं तु, अहवा छ सुद्धि सद्दहणा ।
जाणण-विणयणुभासण अणुपालण भावसुद्धि त्ति ।।46।।

शब्दार्थ

इय=इस प्रकार, **पडियरियं**=आचरित, **आराहियं**=आराधित, **तु**=तथा, **अहवा**=अथवा, **छ सुद्धि**=छह प्रकार की शुद्धि, **सद्दहणा**=श्रद्धा, **जाणण**=जानना, **विणयण**=विनय, **अणुभासण**=अनुभाषण, **अणुपालण**=अनुपालन, **भावसुद्धि**=भावशुद्धि, **त्ति**=इस प्रकार ।

भावार्थ

इस प्रकार बराबर पालन किया हुआ वह **आराधित** कहलाता है अथवा पच्चक्खाण की अन्य छह शुद्धियाँ इस प्रकार हैं-श्रद्धा, ज्ञान, विनय, अनुभाषण, अनुपालन और भावशुद्धि ।

विवेचन

1) आराधित :- प्रत्याख्यान भाष्य में पच्चक्खाण की जो विधि बतलाई है, उस विधि के अनुसार एवं पूर्वोक्त पाँचों प्रकार की शुद्धि के साथ पच्चक्खाण किया हो तो वह आराधित पच्चक्खाण कहलाता है ।

उपर्युक्त छह प्रकार की शुद्धि को छोड़ अन्य छह प्रकार की शुद्धियाँ भी बतलाई गई हैं जो निम्नलिखित हैं–

1) श्रद्धा शुद्धि :- शास्त्र में साधु और श्रावक के लिए जो पच्चक्खाण जिस प्रकार करने का विधान बतलाया है, वह पच्चक्खाण उसी प्रकार से उचित काल में करने योग्य है, ऐसी श्रद्धा रखना, उसे श्रद्धा शुद्धि पच्चक्खाण कहते हैं ।

2) ज्ञान शुद्धि :- अमुक पच्चक्खाण अमुक अवस्था में अमुक काल में अमुक रीति से करने योग्य है, इस प्रकार के ज्ञान को ज्ञानशुद्धि कहते हैं ।

3) विनय शुद्धि :- गुरु को वंदन करके फिर पच्चक्खाण ग्रहण करना उसे विनयशुद्धि कहते हैं ।

4) अणुभाषण शुद्धि :- जिस समय गुरु भगवंत पच्चक्खाण के आलावे बोल रहे हों, तब शिष्य स्वयं उन आलावों का मंद स्वर से मन में उच्चारण करे । गुरु भगवंत **'वोसिरइ'** कहें, तब शिष्य **'वोसिरामि'** और **'पच्चक्खाइ'** कहें, तब **'पच्चक्खामि'** बोले ।

5) अनुपालन शुद्धि :- विकट परिस्थिति आने पर भी पच्चक्खाण का भंग नहीं करना, बल्कि उसका दृढ़तापूर्वक पालन करना, उसे अनुपालन शुद्धि कहते हैं ।

6) भावशुद्धि :- इस लोक में चक्रवर्ती आदि पद की इच्छा और परलोक में इन्द्र आदि के सुख की अभिलाषा रूप नियाणे से रहित होकर तथा अन्य किसी प्रकार के राग-द्वेष से रहित होकर पच्चक्खाण करना ।

1) राग सहित पच्चक्खाण :- गुरु को अपनी ओर आकर्षित करने के लिए पच्चक्खाण करना । लोगों को अपनी ओर आकर्षित करने के लिए पच्चक्खाण करना आदि राग सहित पच्चक्खाण कहलाते हैं ।

2) द्वेष सहित पच्चक्खाण :- कोई वस्तु पसंद नहीं हो तो उसके त्याग का पच्चक्खाण करना । किसी दुश्मन को खत्म करने के लिए तेजोलेश्या आदि लब्धि को पाने के लिए किसी प्रकार का प्रत्याख्यान करना द्वेष सहित प्रत्याख्यान है ।

राग व द्वेष से रहित होकर प्रत्याख्यान करना चाहिए ।

नौवाँ द्वार :- पच्चक्खाण का फल

पच्चक्खाणस्स फलं, इह परलोए य होइ दुविहं तु ।
इह लोए धम्मिलाई, दामन्नगमाइ परलोए ।।47।।

शब्दार्थ

पच्चक्खाणस्स=प्रत्याख्यान का, **फलं**=फल, **इह**=इसलोक में, **परलोए**=परलोक में, **य**=और, **होइ**=होता है, **दुविहं**=दो प्रकार का, **तु**=तथा, **इहलोए**=इसलोक में, **धम्मिलाई**=धम्मिलकुमार आदि, **दामन्नगमाइ**=दामन्नक आदि, **परलोए**=परलोक में ।

भावार्थ

इसलोक और परलोक की अपेक्षा पच्चक्खाण का फल दो प्रकार का होता है । इस लोक में धम्मिल आदि को और परलोक में दामन्नग आदि को पच्चक्खाण के फल की प्राप्ति हुई थी ।

विवेचन

बाल जीवों को फल का आकर्षण होता है । वे फल देखकर आराधना आदि में प्रवृत्त होते हैं । यद्यपि सभी प्रकार के प्रत्याख्यान का वास्तविक और अंतिम फल मोक्षपद की प्राप्ति है, फिर भी बाल जीव इसलोक और परलोक संबंधी फल को देखकर भी आकर्षित होते हैं, अतः उपर्युक्त गाथा में पच्चक्खाण के इस लोक संबंधी फल और परलोक संबंधी फल को बताने के लिए धम्मिल व दामन्नग का नामनिर्देश किया है ।

धम्मिलकुमार

जंबुद्वीप के भरतक्षेत्र में कुशार्त नाम का नगर था । उस नगर में सुरेन्द्रदत्त नाम का श्रेष्ठी रहता था । उस श्रेष्ठी की पत्नी का नाम सुभद्रा था । लग्न जीवन के अनेक वर्ष बीतने पर भी उनके कोई संतान नहीं थी, अतः वे हमेशा चिंतातुर रहते थे ।

'धर्म आराधना के प्रभाव से ही सुख की प्राप्ति होती है ।' सद्गुरु के मुख से इस बात को जानकर वे दोनों धर्म आराधना में अपना समय व्यतीत करने लगे । धर्म के प्रभाव से उन्हें पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई । उस बालक का नाम 'धम्मिलकुमार' रखा गया ।

धीरे-धीरे धम्मिलकुमार बड़ा होने लगा । वह अनेक कलाओं में निपुण बना । उसने धर्म कला का भी अभ्यास किया ।

यौवनवय में प्रवेश करने के बाद उसी नगर में रहनेवाली धनवसु सेठ की पुत्री यशोमती के साथ उसका पाणिग्रहण हो गया । उन दोनों का संसार सुखमय प्रसार हो रहा था ।

कुछ काल व्यतीत होने के बाद धम्मिलकुमार के दिल में संसार का रस घट गया और वह अध्यात्म के अभिमुख हो गया । संसार के भोगसुख उसे नीरस प्रतीत होने लगे ।

यशोमती को यह पसंद नहीं पड़ा । उसने यह बात अपनी सखियों को कही । सखियों ने यह बात धम्मिलकुमार के माता-पिता को कही । धम्मिलकुमार के माता-पिता पुनः शोकसागर में डूब गए ।

धम्मिलकुमार को पुनः संसार-रसिक बनाने के लिए उसकी माता ने अपना पुत्र जुआरी मित्रों को सौंपा । जुआरी मित्रों के संग से धम्मिलकुमार की विचारधारा पुनः बदल गई । वह धर्मरसिक के बजाय भोगरसिक बन गया ।

धम्मिलकुमार वेश्यागामी बन गया । धम्मिलकुमार वसंततिलका नाम की वेश्या के संग में पागल बन गया । धम्मिलकुमार की माता पुत्र की इच्छानुसार धन भेजने लगी ।

कुछ समय के बाद माता ने धम्मिलकुमार को बुलावा भेजा, परंतु धम्मिल घर आने के लिए तैयार नहीं था, वह वेश्या में अत्यंत आसक्त बन गया था ।

पुत्र के वियोग में आखिर धम्मिलकुमार के माता-पिता ने अपने प्राण छोड दिए । ऐसी स्थिति में भी धम्मिलकुमार अपने घर नहीं आया ।

घर की सारी जवाबदारी यशोमती के सिर पर आ गिरी । पति की मांग के अनुसार यशोमती धन भेजने लगी, परंतु आखिर वह भी निर्धन हो गई । इस स्थिति में उसका जीवन दुष्कर हो गया । वह भी ससुराल छोडकर अपने पिता के घर चली गई ।

धम्मिलकुमार की ओर से धन मिलना बंद हो गया, तब धनलालसावाली उस वेश्या ने धम्मिलकुमार का भी अपमान कर उसे अपने घर से बाहर निकाल दिया ।

धम्मिलकुमार की हालत बड़ी खराब हो गई । माता-पिता व पत्नी के वियोग में वह अकेला हो गया ।

जहाँ-तहाँ भटकते हुए, पूर्व के पुण्योदय से धम्मिलकुमार को अगड़दत्त महामुनि का योग प्राप्त हो गया ।

अगड़दत्त मुनि ने धम्मिलकुमार को अपना विस्तृत चरित्र सुनाया जिसे सुनकर धम्मिलकुमार को भी प्रतिबोध हो गया ।

तब धम्मिलकुमार ने कहा, ``हे गुरुदेव ! आपका बताया हुआ मोक्ष मार्ग बहुत ही अच्छा है, परंतु अभी मेरे भीतर संसार की वासनाएँ पड़ी हुई हैं, अतः एक बार आप वह उपाय बताएँ, जिससे मुझे सांसारिक सुख की प्राप्ति हो । उसके बाद आप जैसा कहोगे, वैसा मैं करने के लिए तैयार हो जाऊंगा ।''

यद्यपि गुरुदेव जानते हैं कि सांसारिक सुख का मार्ग बताना उचित नहीं है, परंतु इसका परिणाम अच्छा आनेवाला है, यह जानकर पूज्य गुरुदेव ने धम्मिलकुमार को कहा, ***``तुम छह मास तक ठाम चौविहार आयंबिल का तप करो और उसके साथ द्रव्य से मुनिवेष धारण कर निर्दोष गोचरी द्वारा मुनि धर्म का पालन करो । नौ लाख नवकार मंत्र का जाप करो और षोड़श अक्षरी मंत्र का विधिपूर्वक जाप करो । इस तप-जप से छह मास के भीतर तुम्हारी मनोकामना अवश्य पूर्ण होगी ।''***

गुरुदेव के वचनानुसार धम्मिलकुमार ने छह मास तक यह सब आराधना की । इस आराधना के बाद उसने मुनिवेष छोड़ दिया ।

उसके बाद पूर्व भव में बँधे हुए अशुभ कर्म का क्षय हो जाने से दिव्य प्रभाव से उसे राज्य की प्राप्ति हुई । गुणवती व रूपवती ऐसी राजकुमारियों के साथ उसका पाणिग्रहण हुआ । अनेक पुत्र भी पैदा हुए । दीर्घकाल तक उसने सांसारिक सुख का अनुभव किया ।

अंत में, उसे धर्मरुचि नाम के सद्‌गुरु भगवंत का योग हुआ । सद्‌गुरु के उपदेश को सुनकर उसका हृदय वैराग्य भाव से रंजित हो गया ।

एक शुभ दिन अपने पुत्र को राजगद्दी सौंपकर उसने भागवती दीक्षा अंगीकार कर ली । दीर्घकाल तक चारित्रधर्म का पालनकर अंत में एक मास का अनशन कर अत्यंत समाधिपूर्वक कालधर्म प्राप्त कर धम्मिलमुनि अच्युतदेवलोक में देव के रूप में पैदा हुए ।

देवलोक में अपने दीर्घ आयुष्य को पूर्णकर वे महाविदेह क्षेत्र में मानव जन्म प्राप्तकर शाश्वत अजरामर मोक्षपद प्राप्त करेंगे ।

इस प्रकार व्रत-पच्चक्खाण के प्रभाव से धम्मिलकुमार ने इस जीवन में भी सांसारिक उच्च प्रकार के भोगसुखों को प्राप्त किया तथा परलोक में सद्गति और परंपरा से मोक्षगति प्राप्त की ।

दामन्नक

राजपुर नगर में सुनंद नाम का कुलपुत्र रहता था । जिनदास नाम के श्रावक के साथ उसकी दोस्ती हो गई । जिनदास की प्रेरणा से सुनंद ने मांसाहार के त्याग का पच्चक्खाण किया ।

योगानुयोग देश में भयंकर अकाल पड़ने से सभी लोग मांसाहार करने लगे, परंतु ऐसी परिस्थिति में भी सुनंद ने मांसाहार नहीं किया ।

एक बार परिवारजन के आग्रह से सुनंद नदी तट पर गया, परंतु जाल में मछली के आने पर वह तुरंत उसे छोड़ देता था, इस प्रकार तीन दिन उसने ऐसा ही किया । अंत में उसने अनशन किया, मांसत्याग के पच्चक्खाण के प्रभाव से वह सुनंद मरकर राजगृही नगरी में श्रेष्ठी पुत्र दामन्नक के रूप में पैदा हुआ ।

दामन्नक जब आठ वर्ष का था, तभी मरकी रोग के कारण उसके संपूर्ण परिवार का नाश हो गया । दामन्नक सागरदत्त नाम के सेठ के वहाँ रहने लगा ।

एक बार कोई साधु भगवंत सागरदत्त सेठ के घर पर भिक्षा के लिए पधारे । दामन्नक के सामुद्रिक लक्षणों को देखकर साधु भगवंत ने कहा, 'यह दामन्नक इस घर का मालिक बनेगा ।' सागरदत्त सेठ ने यह बात सुन ली, उसे यह बात पसंद नहीं पड़ी ।

सेठ उस दामन्नक को मार देना चाहता था । दामन्नक को मार डालने के लिए एक बार सेठ ने चांडाल को आदेश दिया । चांडाल ने दामन्नक की मात्र एक अंगुली काट ली और उसे दूर भगा दिया ।

दामन्नक गोकुल गाम में चला गया । गोकुल के मालिक ने उसे पुत्र के रूप में स्वीकार किया ।

कुछ समय बाद जब सागरदत्त को इस बात का पता चला तो वह पुनः दामन्नक को मारने की योजना बनाने लगा ।

सेठ ने एक लेख लिखकर दामन्नक को दिया और उसे अपने घर भेजा । उसने लेख में लिखा था, 'इसे विष दे देना ।'

दामन्नक उस पत्र को लेकर सेठ के घर की ओर आगे बढ़ा, परंतु मार्ग में थकावट लगने से वह नगर के बाहर देवमंदिर में ही सो गया था ।

रात के समय में सागरदत्त सेठ की पुत्री `विषा' वहाँ पर आई । दामन्नक के रूप और लावण्य को देखकर वह उसके प्रति मोहित हो गई । उसने उसके साथ पाणिग्रहण का संकल्प किया । उसने पास में पड़ी चिट्ठी देखी और उसने `विष' के बदले `विषा' कर दिया ।

दामन्नक उस चिट्ठी को लेकर सेठ के घर गया । पत्र को देख परिवारजनों ने विषा का विवाह दामन्नक के साथ करा दिया ।

सेठ अपने घर आया । दामन्नक के साथ अपनी पुत्री के लग्न की बात जानकर उसे बड़ा दु:ख हुआ ।

सेठ ने दामन्नक को मार देने के लिए पुन: षड्यंत्र रचा, परंतु दामन्नक का भाग्य बलवान होने से दामन्नक के बजाय सेठ का पुत्र ही मर गया ।

आखिर **`साधु का वचन मिथ्या नहीं होता है ।'** इस बात को जानकर सेठ ने दामन्नक को घर का मालिक बना दिया । क्रमश: दामन्नक नगरसेठ बना ।

एक बार नगर में गुरु भगवंत का आगमन हुआ, उनकी धर्मदेशना को सुनने से दामन्नक को जातिस्मरण ज्ञान हो आया ।

पूर्व भव में किए गए मांस के पच्चक्खाण के फलस्वरूप दामन्नक को जो लाभ हुआ, उसका उसे स्पष्ट ख्याल आ गया । उसने सम्यक्त्व स्वीकार किया । इस के प्रभाव से मरकर वह देवलोक में देव के रूप में पैदा हुआ । वहाँ से च्यवकर महाविदेह क्षेत्र में मनुष्य के रूप में पैदा होकर शाश्वत अजरामर मोक्षपद प्राप्त करेगा ।

पच्चक्खाणमिणं सेविऊण भावेण जिणवरुद्दिट्ठं ।
पत्ता अणंत जीवा, सासयसुक्खं अणाबाहं ।।48।।

शब्दार्थ

पच्चक्खाणं=प्रत्याख्यान, **इणं**=यह, **सेविऊण**=आचरण करके, **भावेण**=भावपूर्वक, **जिणवर**=जिनेश्वरदेव, **उद्दिट्ठं**=निर्दिष्ट, **पत्ता**=प्राप्त हुए हैं, **अणंतजीवा**=अनंतजीव, **सासय**=शाश्वत, **सुक्खं**=सुख, **अणाबाहं**=बाधारहित ।

भावार्थ

जिनेश्वर परमात्मा द्वारा निर्दिष्ट इस पच्चक्खाण का सेवन करके आज तक अनंत आत्माओं ने शाश्वत अव्याबाध मोक्षसुख को प्राप्त किया है ।

विवेचन

अनंतज्ञानी तारक तीर्थंकर परमात्माओं ने जगत् के जीवों के वास्तविक हित के लिए और आत्मा के अणाहारी स्वरूप को प्राप्त कराने के लिए प्रत्याख्यान का स्वरूप बतलाया है ।

इस प्रत्याख्यान के स्वरूप को जानकर भूतकाल में अनंत आत्माओं ने इस प्रत्याख्यान को स्वीकार किया है और विधिपूर्वक इस प्रत्याख्यान का पालन कर शाश्वत अजरामर मोक्षपद प्राप्त किया है ।

वर्तमान काल में महाविदेह क्षेत्र, भरत क्षेत्र एवं ऐरावत क्षेत्र में अनेक आत्माएँ इस प्रत्याख्यान को स्वीकार कर मोक्षमार्ग में आगे बढ़ रही हैं ।

भविष्य काल में भी अनेक आत्माएँ इस प्रत्याख्यान धर्म का आचरण करेगी, जिसके फलस्वरूप अनंत आत्माएँ शाश्वत अजरामर मोक्षपद प्राप्त करेगी ।

जैन दर्शन को मान्य मोक्षसुख का निर्देश करते हुए कहा है कि मोक्ष में शाश्वत और पीड़ारहित सुख है ।

संसार में नाम मात्र भी सुख नहीं है और जो भी सुख है वह एकदम क्षणिक है ।

संसार में जो भी सुख है, वह क्षणिक तो है ही, साथ में दुःख से मिश्रित है । दुःख के मिश्रण से रहित सुख संसार में कहीं नहीं है । संसार में जो भी सुख है, वह दुःख से जुड़ा हुआ है अर्थात् उस सुख के आगे-पीछे दुःख ही खड़ा है । मोक्ष ही एक ऐसा स्थान है, जहाँ दुःख का नामोनिशान नहीं है ।

संसार में सुख का नाम नहीं और दुःख का पार नहीं है, जबकि मोक्ष में दुःख का नाम नहीं और सुख का पार नहीं है ।

जैन हिन्दी साहित्य दिवाकर मरुधररत्न, पू. आचार्यदेव श्रीमद् विजय रत्नसेनसूरीश्वरजी म.सा.

द्वारा मुख्यतया हिन्दी भाषा में आलेखित 225 पुस्तकों में से उपलब्ध एवं अवश्य पठनीय साहित्य-सूची

Sr. No.	पुस्तक का नाम	मूल्य	Sr. No.	पुस्तक का नाम	मूल्य
1.	चिंतन का अमृत-कुंभ	80/-	34.	अमृत रस का प्याला	300/-
2.	पंच-प्रतिक्रमण (भाग-1)	100/-	35.	श्रावक का गुण सौंदर्य	125/-
3.	पंच-प्रतिक्रमण (भाग-2)	100/-	36.	ध्यान साधना	40/-
4.	पंच-प्रतिक्रमण (भाग-3)	125/-	37.	आग और पानी-भाग-1-2	115/-
5.	पंच-प्रतिक्रमण (भाग-4)	135/-	38.	शांत सुधारस-हिन्दी -भाग-1-2	140/-
6.	आओ ! प्राकृत सीखें भाग-1	125/-	39.	शत्रुंजय यात्रा (तृतीय आवृत्ति)	40/-
7.	आओ ! प्राकृत सीखें भाग-2	85/-	40.	आओ संस्कृत सीखें भाग-1	100/-
8.	विविध-तपमाला	100/-	41.	आओ संस्कृत सीखें भाग-2	220/-
9.	विवेकी बनो	90/-	42.	प्रेरक-प्रवचन	80/-
10.	बीसवी सदी के महान योगी	300/-	43.	दंडक सूत्र	50/-
11.	परम-तत्व की साधना भाग-3	160/-	44.	जीव विचार विवेचन	60/-
12.	श्रमण-क्रिया के मुख्य सूत्र	200/-	45.	नव तत्त्व-विवेचन	60/-
13.	प्रवचन-वर्षा	60/-	46.	लघु संग्रहणी (जैन भूगोल)	100/-
14.	मोक्ष-मार्ग के कदम	120/-	47.	कल्पसूत्र के हिन्दी प्रवचन	240/-
15.	आओ श्रावक बनें !	25/-	48.	पर्युषण अष्टाह्निका प्रवचन	120/-
16.	व्यसन-मुक्ति	100/-	49.	गणधर-संवाद	80/-
17.	श्रावक जीवन दर्शन	250/-	50.	आओ ! उपधान पौषध करें !	55/-
18.	शंका-समाधान (भाग-4)	60/-	51.	नवपद आराधना	80/-
19.	जैन-महाभारत	130/-	52.	पहला कर्मग्रंथ	100/-
20.	महावीर प्रभु की पट्टधर-परंपरा (1 से 9)	300/-	53.	दूसरा-तीसरा कर्मग्रंथ	55/-
21.	महावीर प्रभु की पट्टधर-परंपरा (10 से 40)	275/-	54.	पाँचवाँ कर्मग्रंथ	100/-
22.	महावीर प्रभु की पट्टधर-परंपरा (41 से 57)	275/-	55.	संस्मरण	50/-
23.	महावीर प्रभु की पट्टधर-परंपरा (58 से 80)	280/-	56.	भव आलोचना	10/-
24.	सात वासुदेव-प्रतिवासुदेव बलदेव	50/-	57.	आध्यात्मिक पत्र	60/-
25.	प्रतिक्रमण उपयोगी संग्रह	80/-	58.	आत्म-उत्थान का मार्ग-भाग-1	125/-
26.	सुखी जीवन के Mile-Stone	100/-	59.	आत्म-उत्थान का मार्ग-भाग-2	175/-
27.	समाधि मृत्यु	80/-	60.	आत्म-उत्थान का मार्ग-भाग-3	150/-
28.	The Way of Metaphysical Life	60/-	61.	इन्द्रिय पराजय शतक	50/-
29.	Pearls of Preaching	60/-	62.	अर्हद् दिव्य-संदेश (दीक्षा-विशेषांक)	60/-
30.	New Message for a New Day	600/-	63.	'बेंगलोर' प्रवचन-मोती	140/-
31.	Celibacy	70/-	64.	तीन भाष्य (हिन्दी विवेचन)	150/-
32.	Panch Pratikraman Sootra	60/-	65.	जीव-विचार-विवेचन	100/-
33.	श्रीपाल-रास और जीवन-चरित्र	160/-			

पुस्तक प्राप्ति स्थान : दिव्य सन्देश प्रकाशन C/o. सुरेन्द्र जैन, Office No. 304,
3rd Floor, बे व्यु बिल्डींग, विंग-ईस्ट बे, डॉ. एम.बी. वेलकर स्ट्रीट,
कालबादेवी, मुंबई-400 002. Mobile : 8484848451 (only whatsapp)

Kamal PRINTER'S
M. 9820530299